UGAH-103N

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (320 ई. से 1200 ई.)
Political History of Ancient India (320 A.D. to 1200 A.D.)

पाठयक्रम

इकाई 1 गुप्त साम्राज्य–चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, रामगुप्त की ऐतिहासिकता, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी

इकाई 2 वाकाटक–गुप्त सम्बन्ध, मौखरी एवं परवर्ती गुप्त

इकाई 3 भारत पर हूणों का आक्रमण

इकाई 4 हर्षवर्धन एवं यशोवर्मन

इकाई 5 राजपूतों की उत्पत्ति

इकाई 6 त्रिपक्षीय संघर्ष–प्रतिहार वंश, पाल वंश एवं राष्ट्रकूट वंश

इकाई 7 चन्देल वंश

इकाई 8 परमार वंश

इकाई 9 गाहड़वाल वंश

इकाई 10 कल्चुरि वंश (चेदि वंश)

इकाई 11 चालुक्य वंश

इकाई 12 राष्ट्रकूट वंश

इकाई 13 चोल वंश

इकाई 14 मुस्लिम आक्रमण

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 गुप्त साम्राज्य

1.3 चन्द्रगुप्त प्रथम

1.3.2 उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य–विस्तार

1.4 समुद्रगुप्त

1.4.1 उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य–विस्तार

1.5 चन्द्रगुप्त द्वितीय

1.5.1 उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य–विस्तार

1.6 रामगुप्त की ऐतिहासिकता

1.6.1 रामगुप्त की ऐतिहासिकता की समस्या

1.7 कुमारगुप्त

1.7.1 उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य–विस्तार

1.8 स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकरी

1.9 सारांश

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 प्रस्तावना

कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद भारत में जिस नए युग का आरम्भ हुआ, वह इतिहास में गुप्त वंश के नाम से जाना जाता है। यह वंश चौथी शताब्दी ईस्वी से लेकर छठी शताब्दी ईस्वी के पूर्वाद्ध तक अस्तित्व में रहा। गुप्त राजवंश की स्थापना लगभग 275 ईस्वी के आस–पास हो चुकी थी। गुप्त कालीन अभिलेखों तथा अन्य स्रोतों में गुप्तों के प्रारम्भिक इतिहास तथा गुप्तों की वंशावली के विषय में पर्याप्त जानकारी न मिलने से गुप्तों के प्रारम्भिक इतिहास और गुप्त वंश की वंशावली में अत्यधिक मतभेद है। फिर भी उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर उनके इतिहास का मूल्यांकन किया जाता है।

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह जान सकेंगे कि

- गुप्तों का प्रारंभिक इतिहास किन स्रोतों में वर्णित है।
- गुप्त वंश के आरम्भिक शासकों ने किस प्रकार साम्राज्य स्थापित किया एवं किन नीतियों का अनुसरण किया।
- चंद्रगुप्त प्रथम ने किस प्रकार साम्राज्य विस्तार किया और कितने विजय अभियान किए।
- गुप्त वंश के साम्राज्यवादी शासक समुद्रगुप्त के शासनकाल तथा संबंधित विभिन्न सिद्धांतो को जान सकेंगे।
- समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व का चरित्र का विश्लेषण कर सकेंगे।
- गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय के विषय में जान सकेंगे।
- कुमारगुप्त प्रथम के विषय में परिचित हो सकेंगे।
- स्कंदगुप्त की राजनीतिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिचित हो सकेंगे।

1.2 गुप्त साम्राज्य

कुषाणों साम्राज्य के पतन के बाद विकेन्द्रीकरण का काल प्रारम्भ होता है। भारत के अनेक स्वन्त्रत राज्यों में विभक्त थे। उनमें आपसी संघर्ष चलता रहता था। यह काल अव्यवस्था तथा दुर्बलता का काल माना जाता है। देश में कोई एक शक्तिशाली केन्दीय सत्ता नही थी। ऐसी स्थिति में चौथी शताब्दी ई.में गुप्त साम्राज्य की स्थापना हुई। राजनीतिक एकीकरण का काल प्रारम्भ होता है। विभिन्न स्रोतों के आधार पर इस काल का मूल्यांकन किया जाता है। इस वंश का संस्थापक श्रीगुप्त नामक शासक को माना जाता है।

1.3 चन्द्रगुप्त प्रथम

घटोत्कच के बाद गुप्त वंश का अगला उत्तराधिकारी घटोत्कच का पुत्र चंद्रगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा। इसका शासन काल 319 ईस्वी से 350 ईस्वी तक था। चन्द्रगुप्त प्रथम को गुप्त वंश का वास्तविक

संस्थापक माना जाता हैं। इसके शासनकाल में गुप्तों की शक्ति के साथ ही साथ प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई तथा इतिहासकारों के अनुसार गुप्त वंश का पहला स्वतंत्र शासक चन्द्रगुप्त प्रथम ही था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने गुप्त वंश को एक साम्राज्य के रूप में स्थापित किया तथा यह प्रारंभिक शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था, अपनी इस महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्यारोहण के पश्चात् महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। अभिलेखों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती हैं।

1.4 उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य–विस्तार

चन्द्रगुप्त प्रथम से संबंधित कोई भी ऐसा अभिलेख प्राप्त नहीं होता हैं, जिससे उसके राज्य विस्तार का पता लगाया जा सके अथवा उसके साम्राज्य सीमा का निर्धारण किया जा सके। चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारियों और पुराणों के आधार पर इसका साम्राज्य विस्तार आधुनिक बिहार, बंगाल के कुछ इलाके और पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश भौगोलिक क्षेत्र तक विस्तृत था।

पुराणों में मगध, साकेत व प्रयाग को गुप्तों को क्षेत्र बताया गया हैं। वायु पुराण में कहा गया हैं कि ''गुप्त वंश के लोग गंगा के किनारे प्रयाग तक तथा साकेत और मगध के प्रदेशों पर शासन करेंगे।'' इसमें गुप्त वंश का विस्तार पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में प्रयाग तक बताया गया हैं। यह साम्राज्य सीमा चंद्रगुप्त प्रथम की है, क्योंकि उसके पूर्ववर्ती दोनों शासक साधारण कोटि के थे और उसके बाद का शासक समुद्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार इससे अत्यधिक विस्तृत था जिसकी पुष्टि प्रयाग प्रशस्ति से होती हैं। प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख के अनुसार आर्यावर्त तथा दक्षिणावर्त में समुद्रगुप्त का शासन था किंतु पश्चिम की ओर प्रयाग के पूर्व में गंगा नदी तक के भू–भाग पर विजय का उल्लेख नहीं मिलता हैं।

रायचौधरी के मतानुसार कौशांबी तथा कोशल के मघ राजाओं को चंद्रगुप्त ने जीतकर उन राज्यों पर अपना एक छत्र शासन स्थापित किया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त प्रथम के साम्राज्य का विस्तार बिहार और उत्तर प्रदेश के अधिकतर भागों तक माना जाता हैं।

परमेश्वरी लाल गुप्त के मातनुसार उसके पुत्र समुद्रगुप्त के द्वारा विजित क्षेत्रों पर चंद्रगुप्त प्रथम का राज्य उत्तर में वाराणसी के आगे गंगा के उत्तर में नहीं होगा, लेकिन उसके राज्य में मध्यप्रदेश के बिलासपुर (वर्तमान में छत्तीसगढ़), रायपुर, संभलपुर, और गंजाम जिले के कुछ हिस्से सम्मिलित होंगे। पश्चिम में विदिशा की सीमा तक तथा पूर्व में बिहार और बंगाल का कुछ क्षेत्र चंद्रगुप्त प्रथम के राज्य में शामिल थे।

चन्द्रगुप्त प्रथम को इतिहास में एक नये संवत् के प्रवर्तन का श्रेय दिया जाता हैं। इसने अपने राज्यारोहरण के उपलक्ष्य में गुप्त संवत् का प्रारम्भ किया। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में गुप्त संवत् को गुप्त काल कहा गया हैं। जे. एफ. फ्लीट गुप्त संवत् का प्रचलन 319–320 ईस्वी में मानते हैं तथा अलबरूनी गुप्त संवत् एवम शक संवत् के मध्य में 241 वर्षों का अन्तर बताते हैं।

शाम शास्त्री प्रभृति विद्वान इस संवत् की प्रारंभिक तिथि 272 ईस्वी स्वीकार करते हैं परन्तु प्रमाणों के आधार पर फ्लीट की तिथि अधिक तर्क संगत प्रतीत होती हैं क्योंकि कुमारगुप्त प्रथम की प्रथम ज्ञात तिथि गुप्त संवत् 96 तथा अंतिम तिथि गुप्त संवत् 136 है तथा मन्दसोर अभिलेख की तिथि 436 ई0 है। अब यदि गुप्त संवत् को 319 ई0 से प्रारम्भ माना जाये तो कुमार गुप्त का शासन 414–453 ई0 के मध्य आयेगा जो कि उसके शासन काल का भाग है परन्तु यदि हम गुप्त संवत् का आरम्भ 200 अथवा 272 ई0 माने तो मन्दसोर तिथि में अंकित तिथि उसके शासन काल के बाहर जायेगी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की शासन अवधि गुप्त संवत् के अनुसार 375 ईस्वी से आरंभ होती हैं और शकों की मुद्राओं में शकों की अन्तिम तिथि 304 शक संवत् अंकित है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में शकों की पराजय हुई थी और ऐसा भी सम्भव है जब हम गुप्त संवत् की तिथि 319 ईस्वी मानते हैं।

शशांक के गंजाम लेख में गुप्त संवत् 300 अंकित हैं और यह शासक हर्ष का समकालीन था। गुप्त संवत् की तिथि 319 ईस्वी मानने पर गंजाम लेख की तिथि हर्षवर्धन के समकालीन आती हैं। इन सभी तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता हैं कि गुप्त संवत् का आरंभ 319 ईस्वी में हुआ होगा।

चन्द्रगुप्त ने 319 से लेकर 335 ईस्वी तक राज्य किया। एलन, फ्लीट और स्मिथ मानते हैं कि चंद्रगुप्त प्रथम की मृत्यु 335 ईस्वी में हुई। रमेश चंद्र मजूमदार और परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार 338 ईस्वी से 345 ईस्वी के मध्य चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने पुत्र के लिए राज्य त्याग दिया परन्तु वह कब तक जीवित रहा इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता है।

श्रीगुप्त और घटोत्कच के द्वारा स्थापित गुप्त वंश के चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने वैवाहिक संबंध के द्वारा विस्तारित किया। अपने पितामह और पिता की तरह चन्द्रगुप्त प्रथम ने भी उपाधि धारण की परन्तु इसने महाराज की जगह महाराजाधिराज की उपाधि धारण की तथा इसने अपने राज्यारोहण के बाद गुप्त संवत् का प्रारम्भ किया तथा गुप्त वंश के आरंभिक सिक्के भी चंद्रगुप्त प्रथम द्वारा ही चलवाए गए। निःसंदेह यह एक महान शाासक था कुछ इतिहासकार इसे गुप्त वंश की स्वतंत्रता का जन्मदाता मानते हैं। चंद्रगुप्त प्रथम अपने वंश क वास्तविक संस्थापक था जिसने गुप्त वंश को एक सुदृढ़ और मजबूत नींव प्रदान की।

1.4 समुद्रगुप्त

चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने और कुमार देवी के पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था तथापि राज्यरोहण प्राप्ति के लिए समुद्र उसको अपने संबंधियों से संघर्ष करना पड़ा । वह गुप्त वंश काशक्तिशाली और साम्राज्य के शासक सिद्ध हुआ वरन् एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया तथा गुप्त साम्राज्य को अपनी नीतियों से दृढ़ता प्रदान की मनोनीत किया था। रमेशचंद्र मजूमदार का अनुमान है कि समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक कर चंद्रगुप्त ने संन्यास ग्रहण कर लिया था।

1.2.3. उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार

इसकी राजधानी पद्मावती थी। पद्मावती की पहचान ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में स्थित आधुनिक पद्म–पवाया से की जाती है। इस स्थान से नाग–मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, जिससे लगता है कि यहाँ भी नाग वंश की कोई शाखा शासन कर रही थी । काशीप्रसाद जायसवाल इसे मथुरा का शासक मानते हैं।

अच्युत और नागसेन संभवतः भारशिव के नागवंश से संबंधित थे। यद्यपि भारशिव नागों की शक्ति का पहले ही पतन हो चुका था, किंतु कुछ क्षेत्रों में इनके छोटे–छोटे शासक अब भी शासन कर रहे थे। पराक्रमी समुद्रगुप्त ने श्धरणिबंधश के उच्च– आदर्श को प्राप्त करने के लिए इन नागवंशीय शासकों को पराजित कर उत्तर भारत में अपनी सत्ता को सुदृढ़ आधार प्रदान किया और अपनी राजकीय मुद्राओं के ऊपर गरुड़ के को अंकित करना प्रारंभ किया।

कु–कोलकुल में उत्पन्न इस शासक का नाम प्रयाग प्रशस्ति में मिट गया है और मात्रा श्गश अक्षर शेष है। दिनेशचंद्र सरकार जैसे विद्वानों का अनुमान है कि यह गणपतिनाग हो सकता है, जिसका उल्लेख प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में है।

काशीप्रसाद जायसवाल भ्रमवश कोटकुल की पहचान कौमुदीमहोत्सव में उल्लखित मगधवंश के कल्याणवर्मा से करते हैं। श्कोटश नामांकित कुछ मुद्राएँ पंजाब और दिल्ली से प्राप्त हुई हैं, जिससे लगता है कि इस राजकुल का शासन संभवतः इसी प्रदेश में था । रमेशचंद्र मजूमदार के अनुसार कोतकुल शासक कान्यकुब्ज (पुष्पपुर) का शासक था।

समुद्रगुप्त का दक्षिणापथ अभिमान

समुद्रगुप्तने दक्षिण मे अभियान चलाया अभिमान। वह दक्षिण भारत के 12 राज्यों पर विजय प्राप्त करने में सफल रहा. समुद्रगुप्त ने दक्षिण के राज्यों के प्रति नीति निर्धारित करने में एक कुशल नीतिज्ञ होने का परिचय दिया. वह अपने साधनों और सामर्थ्य भली–भांति जानता था. उसे ये बात अच्छी तरह पता था कि इन राज्यों में स्थाई रूप से राज्य करना असंभव होगा. समुद्रगुप्त के दक्षिणी अभियान का उद्देश्य वहां के राज्यों को गुप्त साम्राज्य में मिलाना नहीं बल्कि वहां के राजाओं को अपनी प्रभुत्व स्वीकार कराना था. अतः समुद्रगुप्त ने सभी राजाओं को बंदी बनाने के पश्चात उनसे कुछ भेंट और राजस्व आदि लेकर संतुष्ट हो गया और उन्हें अपने–अपने राज्य में शासन करने के लिए मुफ्त कर दिया. समुद्रगुप्त के द्वारा दक्षिण में जीते हुए राज्यों में कोशल,महाकान्तार, कोराल, पिष्टपुर, कांची, वेंगी, देवराष्ट्र आदि प्रमुख थे.

1) कौशल का महेन्द्र, महाकौशल नामक मध्य भारत में इस समय एक महाकौशल नामक प्रसिद्ध राज्य था जिसे भी कहते हैं। इस राज्य में वर्तमान मध्यप्रदेश के विलासपुर और रायपुर आदि क्षेत्र सम्मिलित थे सम्भलपुर, विलासपुर, और रामपुर आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं।

2)महाकान्तर का व्याघ्रराज प्रो० राय चौधरी ने महाकन्तर को किसी स्थान विशेष स्थान विशेष का नाम न मानकर उसे मध्यभारत में स्थित कोई वन प्रान्त ही माना है। उनका कथन राज्य में है कि यह वन प्रान्त सम्भवतः जासो रहा होगा। प्रो० रामदास के मतानुसार यह प्रदेश गंजाम और विजिगापटटम को झाड़मन्ड एजेन्सी के वन्य प्रदेश है।

3)कौशल का मन्तराज– कुछ विद्वानों के मतानुसार कौशल और दक्षिण भारत का कराउ एक स्थान है किन्तु अन्य विद्वान लेखकों ने इसे सोनपुर प्रान्त ही बतलाया है। इस प्रान्त की राजधानी ययाति नगरी थी जो महानदी के तट पर स्थित थी

4)पिष्टपुर का महेन्द्र – मद्रास प्रांत में स्थित गोदावरी जिले का नगर पीठपुरम ही पिष्टीपुर है। यहाँ का शासक महेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध था।

5) कोट्टीगरि–यह सम्भवतः गोदावरी जिले के काठूर प्रदेश है। 6.. एरण्डपल्ल–गंजाम जिसे चींकाकोल नामक स्थान के निकट एरण्डपल्ली है, जिसे उस समय एरण्डपल्ल कहते है

7) काण्वी–मद्रास के निकट वर्तमान काजोपरम् उस समय काण्वी के नाम से प्रसिद्ध था

8) अवमुक्र का नलराज–इतिहास कारों में अवमुक्र के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। खारवेल्ल के लेख में आधार हाथी गुड़वाने आव जाति के प्रति किंचित उल्लेख मिलते हैं जिनके पर यह निश्चित किया जा सकता है कि आव प्रान्त की राजधानी गोदावरी के समीप पिवृद्धा थी । यहाँ का राजा नीलराज बताया जाता है। 9.बैंगी का हस्तिर्वमन–एल्लौर में स्थित पेड्डु वेगो को बैंगा कहते थे ।

10) पालक्क–नंलौर जिसे में स्थित पालकक का शासक उग्रसेन था।

11) देव राष्ट्र का कुबेर–बिजगापट्टम जिले में चल्लमी चलो नामक स्थान का नाम देवराष्ट्र था। जहाँ के शासक वुबैर के नाम से प्रसिद्ध थे।

12) कुस्थलपुर का धनंजय उस स्थान का अभिप्राय अरकार जिले के उत्तर में स्थित कुट्टूलर से है।

आर्यावर्त का द्वितीय युद्ध

दक्षिणापथ के अभियान से निवृत्त होने के पश्चात् समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत में पुनः एक युद्ध किया जिसे 'आर्यावर्त्त का द्वितीय युद्धश कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम युद्ध में उसने उत्तर भारत के राजाओं को केवल परास्त ही किया था, उनका उन्मूलन नहीं ।

राजधानी में उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उत्तर के शासकों ने होने की चेष्टा की । अतः दक्षिण की विजय से वापस लौटने के बाद समुद्रगुप्त ने पुनः स्वतन्त्र उन्हें पूर्णतया उखाड़ फेंका ।

यह दक्षिण में अपनाई गयी ग्रहणमोक्षानुग्रह की नीति के प्रतिकूल थी । समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत के राजाओं का विनाश कर उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया । प्रयाग प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में

आर्यावर्त के नौ राजाओं का उल्लेख हुआ है । उल्लेखनीय है कि यहाँ उनके राज्यों के नाम नहीं दिये गये हैं । इस प्रकार हैं।

रुद्रदेव, मत्तिल नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दि, बलवर्मा

उपर्युक्त शासकों में से अनेक के राज्यों की ठीक–ठीक पहचान नहीं की जा सकती । रुद्रदेव सम्भवतः कौशाम्बी का राजा था जहाँ से रुद्र नामांकित कुछ मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। बुलन्दशहर से श्मत्तिलश के नाम की एक मुद्रा मिली है, अतरू वह इसी भाग का शासक रहा होगा ।

नागदत्त के राज्य की पहचान संदिग्ध है। चन्द्रवर्मा पश्चिमी बंगाल के बांकुड़ा जिले का शासक था । वहाँ सुसुनिया पहाड़ी से उसका लेख मिला है। गणपतिनाग तथा नागसेन निश्चयतरू नागवंशी शासक थे जो क्रमशः मथुरा और पद्मावती में शासन करते थे ।

अच्युत, अहिच्छत्र (बरेली) का राजा था। नन्दि तथा बलवर्मा के राज्यों की सही पहचान नहीं की जा सकती । आर्यावर्त्त के द्वितीय युद्ध के परिणामस्वरूप समुद्रगुप्त ने समस्त उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के एक भाग पर अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया ।

आटविक राज्यों की विजय प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में ही आटविक राज्यों की भी चर्चा हुई है । इनके विषय में यह बताया गया है कि समुद्रगुप्त ने सभी आटविक राज्यों को अपना सेवक बना लिया (परिचारकीकृत सर्वाटविकराज्यस्य) । फ्लीट के मतानुसार उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले से लेकर मध्यप्रदेश के पुर– प्रदेश में ये सभी राज्य फैले हुये थे ।

उत्तर तथा दक्षिण भारत के बीच के आवागमन को सुरक्षित रखने के लिये उन्हें नियन्त्रण में रखना आवश्यक था। लगता है कि जब समुद्रगुप्त दक्षिणी अभियान पर जा रहा था, इन राज्यों ने उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न किया । अतः उसने उन्हें जीतकर पूर्णतया अपने नियन्त्रण में कर लिया।

सीमावर्ती राज्य

सीमान्त राज्य – इन विजयों से समुद्र गुप्त की धाक सारे भारत में जम गयी । उत्तरपूर्व के सीमान्त राज्य और पंजाब मालवा तथा मध्यप्रदेश के गणराज्य आंतकित हो गये उन्होंने समार की अधीनता स्वीकार कर उन्हें कर देकर सम्मानित किया। उत्तरी तथा उत्तरी–पूर्वी सीमा पर स्थित राज्यों की संख्या पाँच है और वे सभी राजतन्त्र हैं– समतट, डवाक, कामरूप, कर्त्तृपुर, नेपाल।

इन राज्यों के बाद आदि शब्द लिखा मिलता हैं जो छोटे राज्य रहे होंगे।

मालव, अर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक ।

विजित प्रदेशों के प्रति

समुद्रगुप्त ने विजित राज्यों के प्रति अलग–अलग नीति अपनायी । आर्यावत के राज्यों का उसने पूर्ण उन्मूलन करके उन पर अधिकार कर लिया और अपने साम्राज्य का विस्तार किया। आर्यावर्त के राज्यों के

विपरीत दक्षिणापथ के राज्यों को उसने कृपापूर्वक छोड़ दिया। उसकी दक्षिण विजय की नीति ग्रहण (शत्रु पर अधिकार) मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) और अनुग्रह (राज्य को लौटाकर शत्रु पर दया करना) पर आधारित थी। यह प्रतीत होता है कि सुदूर राज्यों पर नियंत्रण स्थापित करने में व्यवहारिक बाधायें आ सकती हैं, ऐसा सोचकर उसने दक्षिणापथ के राज्यों पर अधिकार नहीं किया। उसके दक्षिणापथ अभियान का उद्देश्य आर्थिक भी हो सकता था। पूर्वी घाट पर स्थित राज्यों के राजाओं का राजकोष सम्पन्न रहा होगा और समुद्रगुप्त उस कोष को प्राप्त करने के लिए ही दक्षिण गया होगा। दक्षिण के पश्चिमी घाट में वाकाटक शासकों के साथ उसने कोई संघर्ष नहीं किया, इससे प्रतीत होता है कि गुप्तों और वाकाटकों के मध्य कोई अनाक्रमण सन्धि रही होगी, जो कालान्तर तक चलती रही थी।

समुद्रगुप्त को युद्ध इन विजयों और उनके शायद ए खाने की चर्चा विदेशों भी फैलने लगी अतः सुमद्रगुप्त की मारी शक्ति से आतंकित अनेक विदेशी राज्यों में स्वेच्छा से आत्मसमर्पण करके उसके संरक्षण में रहती स्वीकार और उसे रहना मरण, सुन्दर कुमारियों तथा अनेक मूल्यवान पर्याय भेंट करके प्रसन्न रखने का प्रयास कियाचा इस प्रकार, के शासकों में पश्चिमी पंजाब में आपक शासन करने वाले देवपुत्र तथा अफगानिस्तान के शाही वंश के भासक थे। ये दोनों उनके अतिरिक्त भक, मुझुण्डु शासक कुषाण वंशीय थे और सिंघल द्वीप के राजा के नाम भी इसी श्रेणी के भासकों में आते हैं। प्रयाग के अशोक स्तम्म पर खुदी हुई समुद्रगुप्त को में इनका उल्लेख किया गया है। सिंघल द्वीप प्रशान्त भासक मेघर्वण समुद्रगुप्त समकालीन था। उसने का एक बार अपने देश के कुछ बौद्ध भिक्षुओं को वोधगया को तीर्थयात्रा के लिए भेजा। उन्हें वर्षा भारी असुविधा हुई। मेघवंश को से समुद्रगुप्त जब बौद्ध भिक्षुओं की कठिनाइ दरवार में केजा ने मेघवर्ण को विहार निर्माण की समुद्र गुफ आकांक्षा प्रदान की––मेघवण ने बोधगया में उपाए अपार धन राशि व्यय करके उसमें कराई भगवान यह एक विशाल बिहार निमित कराया और बुद्ध की रत्नाटिल मूर्ति की प्रति बिहार महावेधि संघाराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

1.5 चंद्रगुप्त द्वितीय

चंद्रगुप्त द्वितीय गुप्त साम्राज्य का एक महानशक्तिशाली शासक एवं कुशल प्रशासक था। गुप्त साम्राज्य की गद्दी पर समुद्रगुप्त के पश्चात उसका पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय बैठा। चंद्रगुप्त द्वितीय समुद्रगुप्त तथा उसकी महिषी दत्त देवी से उत्पन्न हुआ था। गुप्तकालीन लेखों में उसे 'तत्पगृहित' अर्थात उसके द्वारा चुना गया कहा गया है। कुछ विद्वान इसी आधार पर यह मत प्रतिपादित करते हैं कि स्वयं समुद्रगुप्त ने ही चंद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था परंतु हम राम गुप्त के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते । कुछ विद्वान 'तत्पगृहीत' पद का प्रयोग मात्र निष्ठा प्रदर्शित करने के लिए किया गया ऐसा मानते हैं। अभिलेखीय स्रोतों से पता चलता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने 375 ईस्वी से 415 ईस्वी तक अर्थात कुल 40 वर्षों तक शासन किया । उसने अपने इस दीर्घ शासनकाल में गुप्त वंश की ख्याति को उच्च चोटी पर

पहुंचा दिया था। चंद्रगुप्त द्वितीय कुशल कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी सम्राट था जिसने 'विक्रमादित्य' एवं 'परमभागवत' की उपाधि धारण की थी ।

मेहरौली लौह स्तंभ– चंद्रगुप्त द्वितीय के विषय में जानकारी देने वाला यह लेख तिथिविहिन है। लेख में चंद्र की विजयों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसने वंग प्रदेश में शत्रुओं के एक संघ को पराजित किया था और सिंधु (प्राचीन सप्तसैंधव देश की सात नदियों) को पार करके वाह्लीक (बल्ख) देश तक विजय प्राप्त की थी। दक्षिण में भी उसकी ख्याति फैली हुई थी और वह भगवान विष्णु का परम भक्त था।' राजा के स्पष्ट नाम एवं वंशावली की अनुपलब्धता में विद्वानों में चन्द्र के समीकरण को चन्द्रगुप्त से स्थापित करने में मतभेद है, परन्तु इसका समीकरण चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के साथ अधिक तर्कसंगत है।

इन लेखों के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय की स्वर्ण, रजत एवं ताम्र मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा जारी किये गये स्वर्ण मुद्राओं का विवरण इस प्रकार है–

1. धनुर्धार प्रकार के सिक्के अभी तक सर्वाधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं जिनके मुख्य भाग पर 'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' तथा पृष्ठ भाग पर 'श्रीविक्रम' अंकित है। मुखभाग पर धनुष बाण धारण किये हुए नरेश तथा गुरुड़ध्वज एवं पृष्ठभाग पर लक्ष्मी की मूर्ति उत्कीर्ण है।
2. चन्दगुप्त द्वितीय के दो प्रकार के छत्रधारी प्रकार की मुद्राएँ प्राप्त होती हैं जिनके मुख भाग पर दो प्रकार के लेख 'महाराधिराज श्रीचन्द्रगुप्तस्य तथा 'क्षितिमजित्य सुचरितै दिवं जयति विक्रमादित्यः' एवं पृष्ठभाग पर 'विक्रमादितयः' उत्कीर्ण है। मुद्रा के अग्रभाग पर आहुति डालते हुए राजा का अंकन है जिसके पीछे नौकर उसके ऊपर छत्र लिये खड़ा है तथा राजा का बायां हाथ तलवार की मुखिया पर है। मुद्रा के पृष्ठभाग पर कमल के ऊपर खड़ी लक्ष्मी का चित्रांकन है।
3. पर्यंक प्रकार की मुद्राओं के मुख भाग पर वस्त्राभूषण धारण किये हुए राजा अपने दाहिने हाथ में कमल तथा बायें हाथ को पलंग पर टिकाये हुए पलंग पर बैठे हुए चित्रांकित है तथा पृष्ठभाग पर सिंहासनरूढ़ लक्ष्मी की आकृति अंकित है। मुद्रा के मुख भाग पर 'देवश्रमहाराजधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य विक्रमादित्य एवं रूपाकृति तथा पृष्ठभाग पर 'श्रीविक्रमः उत्कीर्ण' है। कुछ मुद्राओं के मुख भाग पर परम्भागवत' उत्कीर्ण प्राप्त होता है।
4. अश्वारोही प्रकार की मुद्राओं के मुख भाग पर अश्वरोही राजा की आकृति तथा पृष्ठभाग बैठी हुई देवी का अंकन है। मुख भाग पर 'महाराजाधिराज–श्री चन्द्रगुप्तस्य; तथा पृष्ठभाग पर 'अजितविक्रमः' उत्कीर्ण है।
5. सिंह निहन्ता प्रकार के सिक्कें उसके शक विजय की सूचना देते हैं। इन मुद्राओं पर विभिन्न लेख उत्कीर्ण हैं। कुछ मुद्राओं पर 'महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' तथा 'देवश्री महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'

अंकित है। इन मुद्राओं के पृष्ठभाग पर सिंहारूढ़ देवी दुर्गा तथा मुख भाग पर राजा द्वारा सिंह का शिकार करते दिखाया गया है।

इन स्वर्ण मुद्राओं के अलावा चंद्रगुप्त द्वितीय की रजत मुद्राएँ पश्चिम भारत से प्राप्त हुई है । यह मुद्राएँ गुजरात, कठियावाड़ तथा मालवा विजय के उपरांत प्रचलित करवाई गयी थी। इनके मुख भाग पर राजा की तथा पृष्ठ भाग पर गरुड़ की आकृति प्राप्त होती है। पृष्ठ भाग पर अलग–अलग लेख उत्कीर्ण प्राप्त होते हैं यथा–'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तविक्रमादित्य'तथा'श्रीगुप्तकुलस्य–महाराजाधिराजश्रीगुप्तविक्रमादित्य'

गुप्त शासकों की ताम्र मुद्राएं अत्यंत दुर्लभ है इसका कारण यह था कि छोटे स्तर के क्रय–विक्रय या तो वस्तु विनिमय द्वारा होते थे याकौड़ियों के माध्यम से विनमयहोताथा,फाहियान अपनी यात्रा विवरण में इसका उल्लेख करता है। अल्टेकर महोदय कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त शासकों ने ताम्र मुद्राओं का प्रचलन आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं वरन केवल मुद्रा शास्त्री प्रयोग के लिए किया था। प्राप्त मुद्राओं के अग्रभाग पर श्रीविक्रम या श्रीचन्द्र उत्कीर्ण मिलता है तथा पृष्ठभाग पर गरुड़ की आकृति एवं श्रीचन्द्गुप्त या चंद्रगुप्त उत्कीर्ण प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में मिट्टी तथा धातु के मुहर भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त गुप्त कालीन कलाकृतियां भी अनेक स्थलों से प्राप्त हुई है।

इस प्रकार, साहित्यिक तथा पुरातात्विक स्रोत के माध्यम से हमें चंद्रगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्त्रोत प्राप्त होते हैं।

1.5.1चंद्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य–विस्तार

गुप्त राजाओं ने विदेश नीति के अंतर्गत वैवाहिक संबंधों को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पिता समुद्रगुप्त एवं पितामह चंद्रगुप्त प्रथम की भांति ही अपनी आंतरिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अन्य राजवंशों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए। राय चौधरी महोदय का मत है कि वैवाहिक सम्बन्ध बनाना गुप्तो की विदेश नीति का महत्वपूर्ण अंग बन गया था, अतः वैवाहिक संबंध की यह नीति चंद्रगुप्त द्वितीय ने भी जारी रखी। चंद्रगुप्त द्वारा बनाये गए वैवाहिक संबंधों का विवरण इस प्रकार है : **नाग वंश के साथ सम्बन्धः–**प्रयाग प्रशस्ति मे उल्लेख मिलता है कि समुद्रगुप्त ने कई नाग राजाओं को जीता था। यह नागराजा मथुरा, अहिच्छत्र, पद्मावती आदि में शासन कर रहे थे। चंद्रगुप्त द्वितीयके समय नाग वंश की शक्ति प्रभावशाली बन गयी थी। नाग वंश का सहयोग प्राप्त करने के लिये चंद्रगुप्त द्वितीय ने नाग राजकुमारी कुबेरनागा से विवाह किया जिससे उन्हें एक पुत्री प्रभावती गुप्ता उत्पन्न हुई। आर. सी. मजूमदार अपनी पुस्तक वकाटक गुप्त एज में लिखते हैं कि– नाग वंश मे वैवाहिक संबंध स्थापित कर चंद्रगुप्त द्वितीय ने उनका समर्थन प्राप्त कर लिया जो गुप्तों की स्थापित चक्रवर्ती स्थिति के दृढ़ीकरणमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ ।

वाकाटक वंश के साथ सम्बन्ध–नागराजकुमारी कुबेरनागा से उत्पन्न पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह चंद्रगुप्त द्वितीय ने वकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। वाकाटको की गणना दक्षिण की प्रतिष्ठित शक्ति के रूप में की जाती है। गुप्ततथा वाकाटक का वैवाहिक संबंध दोनों के लिए ही हितकारी साबित हुआ, वाकाटको तथा गुप्तो के सम्मिलित शक्ति ने शकों का उन्मूलन कर दिया। लगभग चौथी सदी के अंत मेंरूद्रसेन द्वितीय की मृत्यु हो गयी तब 13 वर्ष तक प्रभावती ने अपने अल्प वयस्क पुत्रों की संरक्षिका के रूप में शासन किया। वकाटक – गुप्त एज पुस्तक में मजूमदार महोदय लिखते हैं कि– प्रभावती गुप्त के शासनकाल में चंद्र ने गुजरात काठियावाड़ की विजय की तथा विधवा रानी ने अपने पिता को हर संभव सहायता प्रदान की।

कदम्ब वंश के साथ सम्बन्ध–तालगुंड अभिलेख में उल्लेख मिलता कि काकुत्सवर्मन् ने अपनी पुत्री का विवाह किसी गुप्त राजकुमार से किया था। कदंबों का शासन कुंतल मे था एवं यह शासक चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन था। माना जाता है कि कुमारगुप्त प्रथम का विवाह कदंब वंश की राजकुमारी के साथ हुआ था। भोजकृत श्रृंगार प्रकाश एवं क्षेमेंद्र कृत औचित्यविचारचर्चा से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त ने कालिदास को दूत बनाकर कुंतल भेजा था जहा से वापस लौट कर कालिदास ने यह सूचना दी थी कि वहां का राजा भोग विलास में लिप्त है। डी.सी. सरकार का विचार है कि कदंब राजा ने अपनी एक पुत्री का विवाह नरेंद्र सेन वकाटक के साथ तथा दूसरे का चंद्रगुप्त के पुत्र या पोते के साथ किया था। कदंब के साथ संबंध स्थापित कर चंद्र की ख्याति सुदूर दक्षिण तक फैल गई थी तथा इस मित्रता ने गुप्त साम्राज्य को ठोस सुरक्षा प्रदान की थी।

चंद्रगुप्त द्वितीय अपने पिता के समान हीएक कुशल योद्धा था। विरासत में उसे एक बहुत बड़ा साम्राज्य मिला था जिस कारण उसे साम्राज्य निर्माण की आवश्यकता नहीं थी ।

वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के पश्चात चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपना विजय अभियान प्रारंभ किया। उदयगिरी गुफा अभिलेख में उल्लेख मिलता है चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने संधिविग्रहिक मंत्री वीरसेन के साथ समस्त पृथ्वी को जीतने के विचार से निकला था। चंद्रगुप्त की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विजय पश्चिम तथा उत्तर प्रदेश की विजय है। वासुदेव उपाध्याय अपनी पुस्तक गुप्त सम्राज्य के इतिहास में प्रयाग प्रशस्ति का संदर्भ लेते हुए लिखते है कि इसमें संदेह नहीं है कि चंद्रगुप्त के पिता ने समस्त दक्षिणा पथ के राजाओं को परास्त कर उन्हें विनीत होने का पाठ पढ़ाया था। उनकी श्री का हरण कर उन्हें श्रीहत बनाकर अपना सामंत बनाया था परंतु ऐसे राजा की तलवार की तीक्ष्णता से उत्तरी तथा पश्चिमी भारत के राजा परिचित नहीं हुए थे। उन्हें समुद्रगुप्त की कृपाण की कठोरता का परिचय नहीं मिला था पर चंद्रगुप्त द्वितीय की इस उदयीमान विक्रमादित्य की प्रखर किरणों से वे अछूते ना बच सके तथा कुछ ही काल के बाद उनके प्रबल बाहुओ के बल का उन्हें अंदाजा मिल गया। चंद्रगुप्त द्वितीय ने न केवल उत्तरी तथा पश्चिमी

राजाओं को ही परास्त किया बल्कि उसकी विश्वविजयिनी बाहुओ ने बलख तक साम्राज्य की सीमा को विस्तृत कर दिया तथा उस सुदूर प्रदेश में भी इसकी विजय वैजयंती को स्थापित किया ।

चंद्रगुप्त द्वितीय द्वारा शक–विजय

चंद्रगुप्त द्वितीय ने विजय प्रक्रिया में पश्चिम भारत के शको की शक्ति का उन्मूलन किया था । यह शक गुजरात के काठियावाड़ में शासन कर रहे थे। प्रयाग प्रशस्ति में शक मुरुण्ड जाति का उल्लेख किया है जिन्होंने समुद्रगुप्त की प्रभुता मान ली थी लेकिन समुद्रगुप्त ने इन्हें अपने राज्य में नही मिलाया था । इन्हीं जातियों को चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पराक्रम से पराजित किया था ।

विशाखदत्त कृत देव चंद्रगुप्तम् नामक नाटक में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य से पूर्व राम गुप्त का गुप्त शासक के रूप में वर्णन किया गया है, जिनके शासनकाल में शक आक्रमणकारियों ने ऐसी संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि राम गुप्त को अपनी पत्नीध्रुव देवी को देकर शांति स्थापित करने का विचार करना पड़ा। राम गुप्त की इस कायरता से क्षुब्ध होकर उसके छोटे भाई चंद्रगुप्त द्वितीय ने स्थिति को संभालने के उद्देश्य से स्वयं ध्रुव देवी का वेश बनाकर शक शिविर में जाने की योजना बनाई और जब इस प्रकार वह तथा उसकेसाथी शकाधिपति के पास स्त्रीवेश में पहुंचे और शक शासक चंद्रगुप्त को ध्रुव देवी समझ उनकीओरबढ़ा तब छद्म वेश धारी चंद्रगुप्त ने शक राजा की हत्या कर दी। इसके बाद चंद्रगुप्त ने अपने कायर भाई की भी हत्या कर दी और गद्दी पर अधिकार कर ध्रुव देवी से विवाह किया पर अनेक विद्वान इस कथा को काल्पनिक मानते हैं। इस घटना का उल्लेख किसी गुप्त लेखों में नहीं हुआ है परंतु इसका वर्णन हम अनेक परवर्ती स्रोतों मे प्राप्त होता है । बाण के हर्षचरित, राज शेखर की काव्यमीमांसा , राष्ट्रकूट अमोघ वर्ष के शक संवत् 795 के संजन ताम्रपत्र और गोविंद चतुर्थ के सांगली व खंभात ताम्रपत्र में इस घटना का उल्लेख मिलता है।

राजा होने के बाद चंद्रगुप्त ने शकों कापूर्णता उन्मूलन करने के लिए एक व्यापक सैनिक अभियान किया । चंद्रगुप्त द्वितीय की शक विजय के प्रमाण उसके तत्कालीन उत्कीर्ण अभिलेख, सिक्कों तथा प्रचलित दंत कथाओ से प्राप्त होता है। चंद्रगुप्त द्वितीय के सचिव वीरसेन का उदयगिरी गुहा अभिलेख तथा सनकानीक महाराज जो कि चंद्रगुप्त का सामंत था, के उदयगिरि गुहालेख तथा सांची लेख जो कि उसके एक सैनिक पदाधिकारी आम्रकार्द्दवका है, के सम्मिलित साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय के इस विजय अभियान का उद्देश्य पूर्वी मालवा के ठीक पश्चिम में स्थित शक राज्य को जीतना था। चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन शासक रुद्रसिंह तृतीय था जो युद्ध में मार डाला गया। रूद्रसिंह तृतीय की मृत्यु पश्चात गुजरात और काठियावाड़ राज्य को चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। इस बात की पुष्टि चंद्रगुप्त द्वितीय द्वारा शको के मुद्रा के अनुकरण पर निर्मित चांदी के सिक्के से भी होती है। मुद्राशास्त्रियों एवं इतिहासकारों का यह मत है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने मालवा,

गुजरात तथा काठियावाड़ की विजय के उपरांत उस क्षेत्र के लिए रजत मुद्राओं का प्रवर्तन किया था। इसका कारण यह था कि उस क्षेत्र में इससे पूर्व शकों का शासन था और शक शासन के अंतर्गत वहां रजत मुद्राएं ही प्रचलित थी। यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा मालवा, गुजरात, काठियावाड़ के विजय की तिथि ठीक–ठाक ज्ञात नहीं है किंतु यह विजय उसके शासन के अंतिम काल में हुई होगी। गुप्त राजाओं में चांदी के सिक्के जारी करने वाला पहला शासक चंद्रगुप्त द्वितीय ही था। चंद्रगुप्त के सिंह निहंता शैली के सिक्के भी इस ओर इंगित करते हैं की उसने गुजरात और काठियावाड़ पर विजय प्राप्त कर ली थीक्योकि सिंह इस क्षेत्र का विशिष्ट पशु था। चंद्रगुप्त द्वितीय की इस विजय ने उसकी ख्याति चारों ओर फैला दी थी। संभवतः अपनी इसी उपलब्धि के बाद उसने विक्रमादित्य उपाधि ग्रहण की थी। शको का राज्य गुप्त राज्य में मिल जाने के बाद गुप्त राज्य का विस्तार पश्चिम में अरब सागर तक हो गया था।

दिल्ली मे मेहरौली से प्राप्त लौह स्तंभ पर चंद्र नामक राजा की उपलब्धियोंका वर्णन तीन श्लोको मे वर्णित किया गया है

यस्योद्वर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रुन्समेत्यागतान्
वंगेष्वाहव वर्त्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिर्भुजे ।
तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिकाः,
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः ।।

अर्थात, जिसने बंगाल के युद्ध क्षेत्र में मिलकर आए हुए अपने शत्रुओं के एक संघ को पराजित किया था, जिसकी भुजाओं पर तलवार द्वारा यश लिखा गया था, जिसने सिंधु नदी के सातों मुख को पार कर युद्ध में बाहिल्को को को जीता था, जिसके प्रताप के सौरभ से दक्षिण का समुद्रतट अब भी सुवासित हो रहा था।

प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ अर्थात, अपन बाहुबल से अपना राज्य प्राप्त किया था तथा चिरकाल तक शासन किया। अभिलेख के अनुसार यह लेख राजा के मरणोपरान्त उत्कीर्ण कराया गया था।

चंद्र के मेहरौली लेख मे ना ही किसी तिथि का वर्णन है और ना ही राजा का पूर्ण नाम अंकित है। जिस कारण इस राजा को लेकर विद्वान गण एक मत नही हैं। सभी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के चंद्रगुप्त मौर्य से लेकर चंद्रगुप्त विक्रमादित्य तक जीतने भी चंद्र नामक शासक हुए हुए हैं, उनका समीकरण लौह स्तंभ मे वर्णित चंद्र नामक शासक से स्थापित करने का प्रयास करते हैं। विसेंट स्मिथ तथा अन्य इतिहासकार का मत हैं की यह लौह स्तंभ मे वर्णित चंद्र नामक राजा गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ही हैं।लेख मे वर्णित चंद्र राजा की उपलब्धियों को चंद्रगुप्त द्वितीय के पक्ष मे लागू करना अधिक तर्कसंगत लगता है ।

बंगाल विजय : मेहरौली लौह स्तंभ से ज्ञात होता हैं की चंद्र नामक राजा ने बंगाल के युद्ध क्षेत्र में अपने शत्रुओं के एक संघ को पराजित किया था। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भी उल्लेख मिलता है कि समुंद्र गुप्त ने चंद्रवर्मा को हराकर बंगाल के पश्चिमी भाग जीत लिया था। समुद्रगुप्त के शासन के समय में गुप्तों की पूर्वी तथा उत्तर पूर्वी सीमाओं पर पांच राज्य थे। इन राज्यों ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी पर रामगुप्त के शासन में यह राज्य पुनः स्वतंत्र होकर अपना एक संघ बना लिया था। इसी संघ को बंगाल के युद्ध में चंद्र ने पराजित किया था। इस विजय के बाद चंद्रगुप्त द्वितीय का शासन आसाम तक फैल गया।

वाह्लिक विजय :लौह स्तंभ मे वर्णित चंद्र ने सिंधु के सातों मुखों को पार कर बाहिल्को को जीता था। डॉ. आर. सी. मजूमदार का मानना है कि हिंदुकुश पर्वत के पार के बल्ख़ ही वाहलिक हैं। भंडारकर महोदय ने रामायण और महाभारत से प्रमाण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन काल में पंजाब की व्यास नदी के आसपास का क्षेत्र वह्लिको नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत में इस क्षेत्र को वाहिक कहा गया है। टालमी भी इसे बाहीक पढ़ते हैं तथा इसका अर्थ पांच नदियों की भूमि निकालते हैं। इसका कारण यह था कि यहां पर बल्ख़ पर शासन कर चुके कुषाणों का निवास था। कुषाणों को भी वह्लिक कहा जाने लगा। महरौली लेख के वह्लिक का तात्पर्य परवर्ती कुषाण से है जो गुप्त के समय में पंजाब में निवास करते थे। राम गुप्त के काल मे के इन्होंने ने शको के साथ स्वयं को भी स्वतंत्र कर लिया। चंद्रगुप्त शकों के उन्मूलन बाद पंजाब में जाकर कुषाणों को भी परास्त किया और इसी को वह्लिको विजय की संज्ञा दी ।

दक्षिणापथ की विजय : मेहरौली लौह स्तंभ मे उत्कीर्ण किया गया हैं कि 'यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः' अर्थात चंद्र के प्रताप के सौरभ से दक्षिण के समुद्र तट आज भी सुवासित हो रहे हैं। इससे यह कहना उचित हैं की चंद्रगुप्त द्वितीय की ख्याति दक्षिण भारत तक फैली हुई थी। कहा जाता है कि इन विजयो के स्मारक स्वरूप उसने विष्णु पहाड़ पर लौह स्तंभ पर अभिलेख खुदवाया था जिसे राजा अनंगपाल दिल्ली उठा ले गया।

विष्णु पुराण और वायु पुराण में चंद्रगुप्त के राज्य का विस्तार कोशल, औड्र, पुण्ड्रताम्रलिप्ति और पुरी तक बताया गया है । चंद्रगुप्त द्वितीय ना केवल एक विजेता था बल्कि वह एक योग्य और कुशल प्रशासक भी था, उसका साम्राज्य उत्तर मेंकरती है कि यह क्षेत्र चंद्रगुप्त द्वितीय के समय गुप्त साम्राज्य की अधीनता में आ चुका था।

चंद्रगुप्त द्वितीय का 40 वर्ष का शासन काल चतुर्दिक शांति एवं समृद्धि का काल था । उसे अनेक अनुभवी मंत्रियों का सहयोग प्राप्त था । उसका प्रधान सचिव वीरसेन था, सनकनिक मालवा का राज्यपाल रहा होगा, आम्रकार्दव उसका प्रधान सेनापति था ।

चीनी यात्री फाहियान चंद्रगुप्त द्वितीय के समय भारत आया था, वह उसकी प्रशंसा में कि लिखता है कि उसके काल मे प्रजा सुखी थी तथा लोग सौहाद्रपूर्वक रहते थे। उसके राज्य मे अपराध भी कम होते थे।फाहियान जब चंद्रगुप्त के राज्य मे आया था तो उसे किसी भी असुरक्षा का सामना नही करना पड़ा था।

वह एक महान विजेता होने के साथ–साथ कुशल प्रशासक भी था। उसने अपने विशाल साम्राज्य को संगठित किया और उसके समुचित प्रशासन की व्यवस्था की। राजा का पद वंशानुगत होता था। एक मंत्रिपरिषद होती थी, जिसमें मंत्रियों के पद पितृसत्तात्मक होते थे।

संधिविग्रहिक' युद्ध, शांति और संधियों के मंत्री हुआ करते थे। वीरसेन प्रशासन के साथ–साथ सेना की भी देखभाल करते थे।

प्रशासन की सुविधा के लिए पूरे साम्राज्य को प्रांतों में विभाजित किया गया था, जिन्हें देश या मुक्ति कहा जाता था। इसके सर्वोच्च अधिकारी को गोत्री और मुक्ति के अधिकारी को उपारिक कहा जाता था। प्रत्येक प्रांत को जिलों में विभाजित किया गया था, जिन्हें प्रदेश या विषय कहा जाता था। इसके उच्चाधिकारी को विषयपति कहा जाता था । प्रत्येक विषय कई कस्बों और गांवों से मिलकर बना होता था। ग्राम के प्रशासक को ग्रामिक कहा जाता था यह पद ग्राम प्रधान को दिया जाता था। इनके मदद के लिए पंचायत हुआ करती थी। केंद्र और प्रांत के अधिकारियों के लिए अलग पदनाम थे। उदाहरण के लिए– उपरिक, महादण्ड नायक, बलाधिकृत, महाप्रतिहार, आदि। लेख तथा मुद्राओं में उसके कुछ पदाधिकारियों के नाम भी मिलते हैं जो इस प्रकार हैं–

कुमारमात्य–यह विशिष्ट प्रकार के प्रशासनिक अधिकारी होते थे जिनका कार्य आज के इसकी समता प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों से मिलता जुलता था।

बलाधिकृत–यह सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी था। इसके कार्यालयको 'बलाधिकरण' कहा गया है ।

रणभाण्डागाराधिकृत – सैनिकों की आवश्यकता वाले साथ–सजजा की सामग्री को सुरक्षित रखने वाले अधिकारी को 'रणभाण्डागाराधिकृत कहा जाता है।

दण्डपाशिक–पुलिस विभाग का प्रधान अधिकारी दण्डपाशिक कहलाता था।

महादण्डनायक–महादण्डनायक मुख्य न्यायाधीश को कहा जाता था।

विनयस्थितिस्थापक–कार्य कानून और व्यवस्था की स्थापना करने वाले पदाधिकारी को विनयस्थिस्थापक कहा जाता था।

भटाश्वपति–अश्वसेना का नायक भटाश्वपति होता था।

महाप्रतीहर–मुख्य दौवारिक को महाप्रतीहार कहा जाता था।

न्यायालय को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया था। सम्राट न्यायपालिका का प्रधान होता था। वह स्वयं मामलों की सुनवाई करता था। गंभीर अपराधियों को कड़ी सजा दी जाती थी।

चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में शांति और कानून के कारण व्यापार और उद्योगों का काफी विकास हुआ। इस समय भारत पश्चिमी देशों के साथ जल मार्ग से व्यापार करता था। आंतरिक व्यापार भी उन्नत था। विनिमय के लिए सोने, चांदी तथा तांबे की मुद्राओ का प्रयोग किया जाता था।

चंद्रगुप्त द्वितीय के अभिलेख व सोने–चांदी के सिक्कों पर उसे भगवान विष्णु का भक्त बताया गया है तथा उसने परमभागवत की उपाधि धारण की थी। बयाना मुद्राभांड से प्राप्त सिक्कों पर उसे चक्रविक्रम के नाम से संबोधित किया गया है जिसका अर्थ है –

'वह जो सुदर्शन चक्र के कारण शाक्तशाली है। ''वह धर्म सहिष्णु शासक था। उसका संधिविग्रहिक वीरसेन शैव मतानुयायी था। उसने उदयगिरि पहाड़ी पर शिव उपासना के लिए गुहा निर्माण करवाया था। उसका प्रधान सेनापति बौद्ध था। यह उसके धर्म सहिष्णुता का परिचायक हैं। उसके शासन काल मे सभी धर्मों को समान दर्जा प्राप्त था।

साहित्य के क्षेत्र में उपलब्धि चन्द्रगुप्त द्वितीय स्वयं विद्वान् एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके समय में पाटलिपुत्र एवं उज्जयिनी विद्या के प्रमुख केन्द्र थे। उसके दरबार में नौ विद्वानों की एक मण्डली निवास करती थी जिसे नवरत्न कहा गया है। महाकविकालिदास संभवतः इनमें अग्रगण्य थे। कालिदास के अतिरिक्त इनमें धन्वन्तरि क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेतालभट्ट घटकर्पर, वाराहमिहिर, वररुचि जैसे विद्वान थे। उसके शासनकाल में उज्जयिनी में कवियों की एक विद्वत्परिषद् थी ।

अश्वमेध यज्ञ–वाराणसी जनपद के नगवाँ ग्राम मे एक पाषाण निर्मित अश्व पर चंद्रगु अंकित है। रत्नाकर महोदय ने इस चंद्रगु की पहचान चंद्रगुप्त द्वितीय के साथ करते हुए बताया कि यहां उसने अश्वमेध यज्ञ किया था तथा उसके प्रतीक स्वरूप अश्व निर्मित किया था परंतु इस मत के समर्थन में अन्य साक्ष्यों की अनुपलब्धता है।

इस प्रकार, प्राचीन भारत में चंद्रगुप्त द्वितीय को एक महान शासक माना जाता है जिस साम्राज्य को उसके पिता समुद्रगुप्त ने निर्मित किया, वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में पूर्णतया संगठित, सुव्यवस्थित एवं प्रशासित होकर उन्नति की चोटी पर जा पहुँचा तथा प्राचीन भारत में स्वर्णयुग का दावेदार बना। चन्द्रगुप्त निश्चय ही न केवल गुप्तवंश के अपितु सम्पूर्ण भारतीय इतिहास के महानतम शासकों में से एक है। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अभिलेखों और सिक्कों से पता चलता है कि उसने 'विक्रमांक', 'विक्रमादित्य', 'सिंहविक्रम', 'नरेंद्रचंद्र', अजीतविक्रम, परमभागवत', परमभट्टारक' आदि उपाधियाँ धारण की थी जो उसकी महानता और राजनीतिक प्रभुता परिचायक हैं।

1.6 रामगुप्तकी ऐतिहासिकता

समुद्रगुप्त के मरने के बाद उसका बड़ा पुत्र रामगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। विशाखदत्त के नाटक देवी चन्द्रगुप्तम से जिसके अंश मात्र उपलब्ध हुए है। यह पता चलता है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी

रामगुप्त था। रामगुप्त की पत्नी का नाम ध्रुव देवी अथवा धुवस्वामिनी था। रामगुप्त बड़ा ही मी तथा कायर सम्राट था। कहा जाता है कि रामगुप्त का एक शक सम्राट के साथ संघर्ष हुआ था इस युद्ध में शकों ने रामगुप्त को घेर लिया था। इस प्रकार रामगुप्त की प्रजा घोर विपत्ति में पड़ गई थी अपनी प्रजा की सुरक्षा के लिए रामगुप्त ने अपनी पत्नी भुवदेवी को शक शासक को सौंपने का फैसला कर लिया। धुयदेवी ने अपने भीरू पति का घोर विरोध किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने भाई के इस कार्य की निन्दा की तथा घोर विरोध किया। उसने साम्राज्य की मान मर्यादा की रक्षा के लिए ध्रुवदेवी के भेष में जाकर शक राजा की हत्या कर दी। इस कार्य से चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी प्रजा तथा धुवदेवी की नजर में ऊपर उठ गया। इस घटना के बाद दोनों भाइयों में अनबन हो गयी। रामगुप्त में चन्द्रगुप्त के प्राण लेने के लिए षडयन्त्र करने लगा। अतएव चन्द्रगुप्त ने आत्मरक्षा के लिए पागलपन का बहाना कर दिया। अवसर पाकर उसने रामगुप्त की हत्या कर डाली और उसकी विधवा से विवाह करके स्वयं सम्राट बन बैठा।

रामगुप्त ने किस शक राजा से युद्ध किया था यह कौन था इस पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है और दो प्रकार की विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। डा० राखाल दास बनर्जी, आर०एन0 दण्डेकर तथा दशरथ शर्मा आदि विद्वानों के विचार में यह शक दिर कुषाण थे। विद्वानों के अनुसार शक शब्द शतेकर जातियों के लिए प्रयोग होता था इसलिए इन लोगों का यह कहना है कि शकपति की पहचान देवपुत्र शाहा शहानुशाही से करना उचित होगा जो कुषाण शासक था। यह लोग समुद्रगुप्त के शासनकाल में पश्चिमोत्तर भारत में शासन करते थे । समुद्रगुप्त ने इन्हें नतमस्तक कर दिया था। सम्भवतः समुद्रगुप्त को मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ा ली और रामगुप्त पर आक्रमण करके उसे परास्त कर दिया। किन्तु अल्लेकर इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि शकपति की पहचान किसी शक नरेश से करना ही ज्यादा उचित होगा अपने मत के समर्थन में उसने दो तर्क दिये है। पहला तर्क तो यह है कि गुप्तकाल के प्रारम्भ में शक तथा कुषाण दोनों 1 ही जातियां विद्यमान थी। इनका दूसरा तर्क यह है कि चन्द्रगुप्त के उदयगिरी के गुफा लेख एवं चांदी के सिक्के इस बात की पुष्टि होती है कि उसने शकों का उन्मूलन किया था इसलिए रामगुप्त का विरोधी कोई शक सम्राट ही होना चाहिये। अब प्रश्न यह उठता है कि शक नरेश भारत में किस भाग में शासन करता था भारतीय इतिहास की परम्परा से हमें ज्ञात होता है कि शको का शासन दो स्थानों में था एक मधुरा तथा दूसरा उज्जयिनी जत विद्वानों का अनुमान है कि रामगुप्त का शत्रु कोई उज्जयिनी का एक सम्राट था।

इस बात को लेकर भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है कि रामगुप्त तथा शक नरेश के बीच युद्ध कहाँ हुआ था। हर्षचरित के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शक नरेश क हत्या अरिपुर में की थी। जालघर दोजाब के पर्वतीय प्रदेश में था । इस ग्राम का प्रात तास अलीवाल था। इसलिए डा० के०पी० जायसवाल का मत

है यह युद्ध यही अलीवाल या इसके निकट हुआ होगा। एक अन्य प्रति में अरिपुर के स्थान पर नलिनपुर लिखा है अतः मिराशी महोदय ने नलिनपुर को ही युद्ध स्थल माना है जो जलाला के पश्चिम में स्थित है। भोज के श्रृंगार प्रकाश नामक ग्रंथ में अरीपुर के स्थान पर ही अलीपुर का उल्लेख मिलता है सम्भवतः अलीपुर भरपुर ही रूपान्तरण है। अतएव जालार के समीप अलीपुर ही युद्ध स्थल प्रतीत होता है। डा० भण्डारकर ने काव्य मीमांसा के आधार पर हिमाचल प्रदेश में स्थित कार्तिकेय नगर की युद्ध स्थल निर्धारित किया था। कार्तिकेयपुर के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है और अल्मोडा जिले के बैजनाथ ग्राम के पास विद्यमान है। चूंकि मजमूल चल री के अनुसार युद्ध स्थल किसी पर्वतीय प्रदेश में विद्यमान था अतः कार्तिकपुर को ही युद्ध स्थल मानना अधिक उचित क्या चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई की पत्नी व देवी से विवाह किया था । इस प्रश्न को लेकर भी विद्वानों में बसा है

कुछ विद्वानों की यह धारणा रही है कि उसने व देवी के साथ विवाह नहीं किया। परन्तु अब इस मत को निम्न ऐतिहासिकता के आधार पर निर्मूल साबित कर दिया गया है।

देवी चन्द्रगुप्तम् तथा शंकराचार्य की टीका से यह साबित होता है कि ध्रुवदेव रामगुप्त की पत्नी थी। साथ ही गुप्त लख से ज्ञात होता है कि यह चन्द्रगुप्त द्वितीय की भी पत्नी थी। इसलिए इस बात में नेहा मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता है कि ध्रुवदेवी के साथ विवाह नहीं किया।

मजमुत उन तवारीख से हमे ज्ञात होता है कि बरमारीस ने रम्मान की हत्या के पश्चात उसकी विधवा स्त्री से किया था क्योंकि नजमुल उल–तारिख च देवी चन्द्र गुप्तन का कथानक एक ही है। इसलिए इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है चंद्रगुप्त द्वितीय ने रामगुप्त की विधवा से विवाह कर लिया था।

1.6.1 रामगुप्त की ऐतिहासिकता की समस्या

1. इस बात को लेकर भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है कि क्या रामगुप्त कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था या साहित्यकारा का पात्र था। जो विद्वान रामगुप्त को ऐतिहासिक नहीं मानते वे अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क देत हैं, सर्वप्रथम तो रामगुप्त की कोई भी स्वर्ण मुद्रा उपलब्ध नहीं है।

2. रामगुप्त की किसी भी मुद्दा पर उसका चित्र नहीं मिलता है जबकि बाकी गुप्त सम्राटों ने अपने चित्र अपनी पर करवाए थे।

3. रामगुप्त की ताम्र मुद्राओं उसके भिन्न–भिन्न नाम प्राप्त होते है अर्थात् राम, भगज, भगत, भग एक भग आदि इस दा विभिन्न राजाओ की हो सकती है। ये नाम प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण है। मुद्राओं के आकार प्रकार भिन्न–भिन्न है इनमें एकरूपता नहीं है।

4.. रामगुप्त की ताम्बे की मुद्राओं का चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अनुकरण नहीं किया। उसके द्वारा चलाई गई भी प्रकार की जा कोई भी रामगुप्त की मुद्रा जैसी नहीं है। यह एक अस्वाभाविक तथ्य है। ऐसा प्रतीत होता है

कि रामगुप्त सम्राट नहीं था । विद्वानों का अनुमान है कि ताम्र मुदाए मालवा के किसी रामगुप्त नामक स्थानीय शासक की है।

5.. रामगुप्त का नाम गुप्त दशावली में नहीं मिलता।

6. रामगुप्त के शत्रु शक नरेश को इतना ताकतवर व रामगुप्त को इतना निर्बल स्वीकार करना कठिन है

7. किसी का निर्बल या सबल होना मात्र पूर्वजों पर ही आधारित नहीं होता । समुद्रगुप्त की शक्ति से भयभीत शक शासक यदि रामगुप्त के काल में पुन, शक्तिशाली हो उठा हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। किसी काल के गौरव एवं गरीना का संरक्षण प्रत्येक व्यक्ति करेगा यह स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। रामगुप्त की कार पुरुषता के कारण गौरवशाली मर्यादा भंग हो सकती थी। जहां तक जनमत के समर्थन का प्रश्न है देवी चन्द्रगुप्तम से स्पष्ट है कि रामगुप्त ने घृणित कार्य परामर्श दाताओं के आश्वासन से ही किया था।

9. नारद समृति के आधार पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि पति की मृत्यु के बाद विधवा विवाह निषेध नहीं है। 10. चन्द्रगुप्त द्वारा रामगुप्त की हत्या का भूमित हो सकता है किन्तु यह अविश्वसनीय व असत्य नहीं है। उसकी हत्या के दो कारण सम्मट हैं। प्रथम तो यह कि चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त जैसे कायर नरेश का वध देश एवं संस्कृति की रक्षा के लिए किया है दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि चन्द्रगुप्त देवी के प्रति आकर्षित रहा हो।ऊपर वर्णित तर्कों के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रामगुप्त एक ऐतिहासिक व्यक्ति था और उसने समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के मध्य एक वर्ष तक शासन किया था।

1.7 कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त ने 455 ईस्वी तक शांतिपूर्ण ढंग से 40 वर्षों तक शासन किया कुमारगुप्त ने अपने पिता से जो साम्राज्य प्राप्त किया उसको अक्षुण्ण बनाये रखा। कुमारगुप्त प्रथम का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर था। सभी राजा सामंत गणराज्य उसकी अधीनता शांति से स्वीकार करते थे।

कुमारगुप्त प्रथम के सिंहासनारोहण के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान मानते हैं कि चंद्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु 412 ईसवी में हो गई थी तभी कुमारगुप्त सिंहासन आरूढ़ हुआ। पर अन्य विद्वान यह मत नहीं स्वीकारते उनका मानना है कि कुमारगुप्त 415 ईस्वी में राजगद्दी पर बैठा तथा 412 से 415 ईस्वी तक उसके भाई गोविंद गुप्ता ने शासन किया था।

कुमारगुप्त द्वारा प्रचलित मुद्राएँ

कुमारगुप्त प्रथम ने अपने पितामह समुद्रगुप्त और पिता चंद्रगुप्त द्वितीय की तुलना में अधिक मुद्राएँ प्रचलित की। उसने समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वारा प्रवर्तित अनेक मुद्रा प्रकारों को जारी रखते हुए कुछ नवीन

प्रकार की मुद्राएं भी प्रचलित की। इसकी मुद्रा पर ही पहली बार कुमार अथवा कार्तिकेय का अंकन मिलता है। कुमारगुप्त ने सोने चांदी एवं ताम्र मुद्राएं प्रचलित की।

कुमारगुप्त की स्वर्ण मुद्राएँ :

1. धनुर्धारी प्रकार
2. अश्वरोही प्रकार
3. खड्गधारी प्रकार
4. सिंहनिहंत प्रकार
5. व्याघ्रनिहंता प्रकार
6. गाजारोही प्रकार
7. ग़ज़ारूढ़ प्रकार
8. खड्गनिंहता प्रकार
9. अश्वमेध प्रकार
10. कार्तिकेय प्रकार
11. छत्र प्रकार
12. अप्रतिघ प्रकार
13. वीणाधारी प्रकार
14. राजा–रानी प्रकार

कुमारगुप्त प्रथम के स्वर्ण सिक्कों पर उसकी उपाधि महाराजाधिराज, श्रीमहेंद्र, अजीतमहेंद्र, श्रीमहेंद्रगज, सिंहनिहंतामहेंद्रगज, श्रीमहेंद्रगजखड्ग, अप्रतिघ, महेंद्रकुमार, महेंद्र आदित्य आदि विरूद प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त इन सिक्कों पर विभिन्न हिंदू देवी देवता के अंकन प्राप्त होते हैं। कुमारगुप्त प्रथम ने चंद्रगुप्त द्वितीय की तुलना में अधिक संख्या में रजत मुद्राएं प्रचलित कराया। इनके कई वर्ग और उपवर्ग भी दिखाई देते हैं। इसके काल में गंगा की घाटी के प्रांतों के लिए रजत मुद्राएं प्रवर्तित कराई गई थी। स्वर्ण मुद्राओं के साथ–साथ चांदी और ताम्र की मुद्राओं ने व्यवहार को विशेषता कम मूल्य की वस्तुओं के क्रय विक्रय को सरल कर दिया था। पश्चिमी भारत में कुमारगुप्त प्रथम ने शक क्षत्रप राजाओं की मुद्राओं का अनुकरण करते हुए चांदी के सिक्के प्रचलित कराये थे। यह सिक्के सामान्यतः चंद्रगुप्त द्वितीय के सामान ही हैं । यह सिक्के तत्कालीन समाज के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक दशाओं का वर्णन करने में सक्षम होते है।

1.6.1 कुमारगुप्त प्रथम की उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार

कुमारगुप्त प्रथम ने अपने चालीस वर्षों के शासन काल में कोई सैन्य अभियान तो नहीं किया, परंतु उत्तराधिकार में प्राप्त विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा। उसके राज्य काल में शान्ति रही। उसकी किसी भी सैनिक उपलब्धि की सूचना हमें लेखों अथवा सिक्कों से नहीं मिलती। उसके कुछ सिक्कों के ऊपर 'व्याघ्रबलपराक्रमः' अर्थात व्याघ्र के समान बल एवं पराक्रम वाला की उपाधि अंकित मिलती है । रायचौधरी ने इस आधार पर यह मत प्रतिपादित किया है कि कुमारगुप्त प्रथम अपने पितामह (समुद्रगुप्त) के समान दक्षिणी अभियान पर गया तथा नर्मदा नदी को पार कर व्याघ्र वाले जंगली क्षेत्रों को अपने अधीन करने का प्रयास किया किन्तु मात्र सिक्कों के आधार पर ही हम उसकी विजय का निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। राधामुकुन्द मुकर्जी ने इसी प्रकार खड्गनिहन्ता प्रकार के सिक्के के आधार पर उसकी असम विजय का निष्कर्ष निकाला है किन्तु यह मत भी काल्पनिक प्रतीत होता है।

कुमारगुप्त के शासन का प्रारंभ का काल सुख शांति और संपन्नता का काल था। शासन के प्रारंभ में उसे किसी वाह्य आक्रमण का सामना नहीं करना पड़ा था। उसके अधीन शासक भी शांत थे। बिलसद और मंदसौर अभिलेख से यह बात भी ज्ञात होती है कि इसका प्रारंभिक वर्ष बहुत ही शांतिपूर्ण एवं संपन्नता में बीता था। यद्यपि प्रारंभ का समय सुख शांति का काल था किंतु अंतिम चरण में उसे वाह्य आक्रमणों का सामना पड़ा। उसके शासन के अंतिम वर्ष में पुष्यमित्र शुंग का आक्रमण हुआ जिसमें गुप्तो की ओर से स्कंदगुप्त ने युद्ध किया था। स्कंदगुप्त के भीतरी स्तंभलेख से यह ज्ञात होता है कि स्कंदगुप्त का युद्ध पुष्यमित्र और हूणों के साथ हुअ था। इस लेख के अनुसार पुष्यमित्र की सैनिक शक्ति और संपत्ति बहुत अधिक थी। इस आक्रमण ने गुप्त वंश की राजलक्ष्मी को विचलित कर दिया तथा स्कंदगुप्त को पूरी रात पृथ्वी पर ही जागकर बितानी पड़ी थी।

विचलित कुललक्ष्मी स्तम्भनायोद्यतेत,
क्षितितलशयनीये येन नोता त्रियामा
समुदितबलकोशान्पुष्यमित्रांश्चजित्वा
क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वाम पाद।।

इस युद्ध में स्कंदगुप्त विजयी रहा। पर उसके राज्य को कष्ट का सामना करना पड़ा। इस विजय की खबर सुनने से पहले ही कुमारगुप्त की मृत्यु हो चुकी थी। इस आक्रमण का साक्ष्य हमें और कहीं नहीं मिलता। यह पुष्यमित्र कौन था? यह भी इतिहास की एक पहेली है। फ्लिंट के अनुसार ये लोग नर्मदा के आसपास रहते थे। वायुपुराण तथा जैन कल्पसूत्र में भी इस जाति का उल्लेख आया हैं। इसके अनुसार ये नर्मदा नदी के मुहाने के समीप मे शासन करते थे। ये पुराण फ्लिंट के मत का पूर्ण समर्थन करते हैं। वी.ए. स्मिथ का विचार है कि ये पुष्यमित्र जाति के लोग पश्चिमोत्तर भारत में शासन कर रहे थे पर साक्ष्य के अभाव में यह मत मानने में कठिनाई है।

कुमारगुप्त अपने पिता चंद्रगुप्त द्वितीय के सामान वैष्णव था। उसके अभिलेखो एवं मुद्राओं में उसे परमभागवत् कहा गया है। यद्यपि वह वैष्णव था किंतु अन्य धर्म के प्रति सहिष्णु था। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि शक्रादित्य ने बौद्ध विहार की स्थापना करवाई थी। उसका मंत्री शैव था, इस बात की पुष्टि कर्मदंडा अभिलेख से होती है। मानकुँवर अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि उसके शासन काल में बुद्धमित्र नामक एक बौद्ध भिक्षु ने बुद्ध प्रतिमा की स्थापना करवाई थी। मंदसौर लेख से पता चलता है कि बंधुवर्मा ने सूर्यमन्दिर की स्थापना करवाई थी। इससे यह कहा जा सकता है कि कुमारगुप्त के शासनकाल में हिन्दु बौद्ध तथा जैन तीनों ही धर्म के लोगों में कोई वैमनस्यता का भाव नहीं था।

अश्वमेध यज्ञ

कुमारगुप्त के सिक्कों से पता चलता है कि उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसके सिक्के के मुख्य भाग पर यज्ञयुप में बंधे हुए घोड़े की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर 'श्री अश्वमेधमहेंद्र' मुद्रालेख अंकित है पर यह मुद्रा किस उपलक्ष में कुमारगुप्त ने प्रचलित करवाई थी या कह पाना कठिन है।

प्रांतीय प्रशासन :कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से निम्नलिखित प्रान्तीय पदाधिकारियों के नाम ज्ञात होते है–

चिरादत्त–दामोदर के ताम्रपत्र में इसे पण्डवर्धन मुक्ति (उत्तरी बंगाल) का राज्यपाल बताया गया है।

घटोत्कचगुप्त–सुमन (म०प्र०) के लेख में इसे एरण प्रदेश (पूर्वी मालवा) का शासक कहा गया है।

बन्धुवर्मा–यह पश्चिमी मालवा क्षेत्र का राज्यपाल था। इसकी सूचना मन्दसार अभिलेख में मिलती है। इसने सूर्य मन्दिर स्थापना करायी थी।

पृथिवीषेण–करमदण्डा अभिलेख से पता चलता है कि पृथि प्रदेश का सचिव, कुमारामात्य तथा महाबलाधिकृत के पदों पर कार्य कर चुका था।

इस प्रकार अभिलेखीय स्रोत बताते हैं कि कुमारगुप्त ने राज्यपालों (उपरिक) के माध्यम से अपने साम्राज्य पर शासन किया, जिन्होंने महाराजा (महान राजा) की उपाधि धारण की और विभिन्न प्रांतों (भुक्तियों) पर शासन किया। प्रांतों के जिलों (विषयों) का प्रशासन जिलाविषयपति द्वारा किया जाता था, जिन्हें एक सलाहकार परिषद द्वारा समर्थित किया जाता था।

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के दौरान गुप्त साम्राज्य कई प्रांतों में विभाजित था। कुमारगुप्त के अभिलेख बंगाल के दिनाजपुर और राजशाही क्षेत्रों में पाए गए हैं, जो कुमारगुप्त की संप्रभुता के दौरान बंगाल को गुप्त साम्राज्य के एक प्रांत के रूप में दर्शाता है। मालवा और मंदसौर के क्षेत्र भी गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत महत्वपूर्ण प्रांत थे। कुमारगुप्त ने कुशल और सक्षम लोगों को उन प्रांतों के राज्यपाल के रूप में नियुक्त करके एक मजबूत प्रांतीय प्रशासन को बनाए रखा था। कुमारगुप्त ने स्वयं प्रांतीय प्रशासन के उचित रखरखाव पर नज़र रखी थी।

विद्या प्रेम कुमारगुप्त अपने पूर्वजों के समान ही विद्वानों का आश्रयदाता था। बामन ने अपने काव्यालङ्कार–सूत्रवृत्ति में चन्द्रगुप्त के 'चन्द्रप्रकाश' नाम वाले या उपाधिवाले पुत्र का उल्लेख किया है जो विद्वानोका आश्रयदाता था। यह उल्लेख इस प्रकार है–

सोय सम्प्रति चन्द्रगुप्ततनयः चन्द्रप्रकाश युवा,
जातो भूपतिराश्रयः कृतधिया दिष्टया कृतार्थमः।।

जॉन एलन का कथन है कि यह चन्द्रप्रकाश की पदवी चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त के ही लिए प्रयुक्त की गई है या यह विशेषण के रूप में उल्लिखित है। उपर्युक्त कथन से यह सच प्रतीत होता है कि कुमारगुप्त प्रथम विद्वानों का आश्रय दाता था।

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के दौरान जारी किए गए शिलालेख मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश से प्राप्त हुए है। उसके पुत्र का एक शिलालेख गुजरात से प्राप्त हुआ है। इसके अलावा, कुमारगुप्त के गरुड़ अंकित सिक्के पश्चिमी भारत में से प्राप्त हुए हैं और उनके मोर– अंकित सिक्के गंगा घाटी से प्राप्त हुए हैं। बयाना मुद्राभाण्ड से कुमारगुप्त की 623 सोने की मुद्राएँ मिली है। कुमारगुप्त की मुद्राएँ अहमदाबाद, वल्लभी, जूनागढ़, मौखी आदि से प्राप्त हुई हैं। पुराणों में भी उल्लेख आया है कि उसने साम्राज्य का विस्तार कलिंग और माहिषक को मिलाकर किया था। उसके साम्राज्य में पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल), दशपुर (मालव), एरिकिण (उत्तरचेदि) के राज्य थे। मंदसौर के शिलालेख से उल्लेख मिलता है कि वह चारों समुद्रों की चंचल लहरों से घिरी हुई पृथ्वी पर शासन करता था। सुराष्ट्र से बंगाल तक उसका राज्य फैला था। कुमारगुप्त कालीन एलिचपुर और ब्रह्मपुरी से मिले सिक्कों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि दक्षिण में भी गुप्तों का प्रभाव बना हुआ था। इन विवरण के अवलोकन से पता चलता है कि वह उस विशाल क्षेत्र पर नियंत्रण बनाए रखने में सक्षम था जो उसे विरासत में मिला था। इस प्रकार, भले ही उसका शासन सैन्य रूप से असमान था, परंतु वह एक बड़े साम्राज्य को स्थिर बनाए रखने में सक्षम होने के लिए एक मजबूत शासक रहा होगा। मंजुश्री मूलकल्प में भी उल्लेख मिलता है कि कुमारगुप्त महेंद्र श्रेष्ठ राजा थे।

उपर्युक्त वर्णन उसे स्पष्ट होता है कि कुमारगुप्त की सैनिक उपलब्धि भले ही कम रही हो पर शासक रूप में उसका यश चतुर्दिक फैला हुआ था। कुमारगुप्त ने अपने पूर्वजों की भाँति प्रजा को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की थी।

1.8 स्कंदगुप्त के उत्तराधिकारी

अपने पिता कुमारगुप्त प्रथम के मृत्यु के पश्चात् स्कंदगुप्त ने गप्त शासन की बागडोर संभाली। स्कंदगप्त के शासन की प्रथम तिथि जूनागढ़ अभिलेख में गुप्त संवत् 136" यानी 455 ईस्वी उत्कीर्ण प्राप्त होती हैं तथा गढ़वा अभिलेख एवं चांदी के सिक्कों में उसकी अन्तिम तिथि ''गुप्त तिथि 148 यानी 467

ईस्वी उत्कीर्ण है। इस आधार पर स्कंदगुप्त का शासन काल 455 ईस्वी से 467 ईस्वी तक अर्थात् कुल 12 वर्ष तक रहा। स्कंदगुप्त को गुप्त वंश का अन्तिम प्रतापी शासक माना जाता है।

स्कंदगुप्त के शासन काल का प्रारंभिक वर्ष गुप्त साम्राज्य के लिए आपत्तियों का काल था। इसके काल में गुप्तों पर बहुत से बाह्य आक्रमण हुए थे।

कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल के अंतिम दिनों में पुष्यमित्रों ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। उस समय राजकुमार के रूप में स्कंदगुप्त को ही इस आक्रमण का सामना करना पड़ा।भीतरी स्तम्भ लेख से यह सूचना मिलती है कि प्रारंभ में पुष्यमित्र की शक्तियों एवं इनके भयंकर आक्रमण के सामने गुप्तों की शक्ति कमजोर पड़ रही थी तथा इससे गुप्तों की आर्थिक स्थिति भी कमजोर होने लगी थी। अतः स्कंदगुप्त ने अपने वंश की राजलक्ष्मी को बनाए रखने, अपने साम्राज्य को संगठित करने, और पुष्यमित्र की शक्तियों को कुचलने के लिए दिन रात संघर्ष किया। इस संघर्ष में स्कंदगुप्त को एक रात्रि पृथ्वी पर ही सोना पड़ा। अंततः अपने पराक्रम के द्वारा स्कंदगुप्त ने पुष्यमित्र पर विजय प्राप्त की और इन पर विजय प्राप्त कर स्कंदगुप्त ने इन्हें सदैव के लिए शांत कर दिया।

स्कंदगुप्त के शासन काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना गुप्त साम्राज्य पर हूणों का आक्रमण हैं। हूण आक्रमण के विषय में पुरातात्विक और साहित्यिक दोनों प्रमाण प्राप्त होते हैं। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख व स्कंदगुप्त के भीतरी अभिलेख में हूण आक्रमण के साक्ष्य प्राप्त होते हैं तथा साहित्यिक स्रोतों में 'चंद्रगर्भपरिपृच्छा' एवं 'कथासरित्सागर' ग्रंथ से हूणों के आक्रमण की सूचना प्राप्त होती है।

गुप्तों ने उत्तर पश्चिम सीमा पर अपना अधिकार तो कर लिया था परंतु इसकी सुरक्षा की व्यवस्था सही प्रकार से नहीं कर पाए। इसी का लाभ उठाकर मध्य एशिया की पूर्वी शाखा के हूणों ने गुप्तों पर आक्रमण कर दिया।

भीतरी अभिलेख और जूनागढ़ अभिलेख में तथा चंद्रगर्भपरिपृच्छा नामक बौद्ध ग्रंथों में इन विदेशी आक्रमणकारियों को हूण, म्लेच्छ, या विदेशी कहा गया हैं। म्लेच्छों पर स्कंदगुप्त की सफलता का वर्णन जूनागढ़ अभिलेख से प्राप्त होता हैं। हूणों के साथ स्कंदगुप्त के युद्ध का वर्णन भीतरी स्तम्भ लेख से प्राप्त होता है। चंद्रगर्भपरिपृच्छा में महेन्द्रसेन के पुत्र अर्थात् स्कंदगुप्त द्वारा विदेशियों पर विजय प्राप्त करने का विवरण प्राप्त होता हैं। सोमदेव के कथासरित्सागर में महेन्द्रादित् के पुत्र विक्रमादित्य अर्थात् स्कंदगुप्त ने म्लेच्छों को जीतने का वर्णन है।

चांद्र व्याकरण नामक ग्रन्थ में एक वाक्य मिलता हैं– 'अजयत्गुप्तों हूणान्' अर्थात् गुप्तों ने हूणों को जीता था। डॉ0 मजूमदार इस गुप्त का समीकरण स्कंदगुप्त से लगाते हैं। अतः जूनागढ़ अभिलेख में वर्णित म्लेच्छ, भीतरी स्तंभ लेख में वर्णित हूण, चंद्रगर्भपरिपृच्छा में वर्णित विदेशी एवं कथासरित्सागर में वर्णित म्लेच्छ इन सबका तात्पर्य हूणों से था।

हूण मध्य एशिया में रहने वाली एक बर्बर जाति थी। जनसंख्या की वृद्धि और प्रसार की आकांक्षा में ये अपना मूल निवास स्थान छोड़कर नए प्रदेश की तलाश में निकले। कालांतर में ये दो शाखाओं में विभाजित हो गए– पश्चिमी शाखा और पूर्वी शाखा। पश्चिमी शाखा के हूण रोम चले गए और पूर्वी शाखा के लोग भारत की ओर गए और भारत पर कई आक्रमण किए।

जिस समय स्कंदगुप्त गद्दी पर बैठा उसी समय पूर्वी हूणों ने इस पर आक्रमण किया। यू. एन. रॉय ने इन हूणों का नेता खुशनेवाज को बताया है। सौभाग्यवश इस आक्रमण का सामना करने में स्कन्दगुप्त एक योग्य शासक साबित हुआ। हूणों और स्कंदगुप्त के बीच एक भयंकर युद्ध हुआ। इसका संकेत भीतरी स्तंभ लेख से प्राप्त होता हैं जिसके अनुसार हूणों के साथ युद्ध क्षेत्र में उतरने पर उसकी भुजाओं के प्रताप से पृथ्वी कांप गई तथा भीषण आवर्त उठ खड़ा हुआ।

इस युद्ध का विस्तृत विवरण तो प्राप्त नहीं होता हैं परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्कंदगुप्त ने हूणों को पराजित किया और अपने साम्राज्य से इस तरह खदेड़ा कि लगभग आधी शताब्दी तक इन लोगों ने सिंधु नदी पार कर भारत के अंदर प्रवेश करने की हिम्मत नहीं की। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि स्कंदगुप्त और हूणों का युद्ध किस स्थान पर हुआ। भीतरी अभिलेख में हूण युद्ध का वर्णन करते हुए 'श्रोत्रेषुगंगाध्वनिः' अर्थात् दोनों कानों में गंगा की ध्वनि सुनाई पड़ती थी, उल्लिखित मिलता हैं। इस आधार पर बी. पी. सिन्हा और वासुदेव उपाध्याय का मत है कि यह युद्ध गंगा की घाटी में हुआ होगा। डी. सी. सरकार ने भी इस मत का समर्थन किया है।

उपेन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार यह युद्ध सतलज नदी के तट पर या पश्चिमी भारत के मैदानों में लड़ा गया था। जूनागढ़ अभिलेख से भी ज्ञात होता हैं कि स्कंदगुप्त इस प्रदेश के लिए अधिक चिंतित था और इसने इस पश्चिम प्रदेश में शासक की नियुक्ति के लिए बहुत सोच विचार किया और पश्चिम दिशा का रक्षक इसने बहुत सोच–समझ कर पर्णदत्त को बनाया।

हूणों को पराजित कर उन्हें अपने देश से बाहर निकाल कर स्कंदगुप्त ने एक बड़ी सफलता प्राप्त की। स्कंदगुप्त ने गुप्त साम्राज्य को आने वाले एक भयंकर संकट से बचाया। भारत के ऊपर हूणों के आक्रमण एवं अन्य विद्रोहों का स्कंदगुप्त ने एक सफल प्रतिरोध किया। जो इसके महान उपलब्धियों में से एक था। स्कंदगुप्त के इन कृत्यों से स्कंदगुप्त को भी समुद्रगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय के समान ही 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करने का अधिकार प्राप्त हो गया। स्कंदगुप्त से हूणों का युद्ध 460 ईस्वी से पूर्व हुआ होगा क्योंकि इसी तिथि के कहौम अभिलेख से पता चलता है कि इस समय उसके राज्य में शान्ति थी। इसके बाद के गढ़वा अभिलेख और इंदौर अभिलेख से भी ज्ञात होता हैं कि स्कंदगुप्त के

साम्राज्य में शान्ति व्याप्त था। अतः हूणों का यह आक्रमण स्कंदगुप्त के शासन काल के आरंभिक वर्षों में ही हुआ होगा।

स्कंदगुप्त के अभिलेखों एवं सिक्कों के व्यापक प्रसार से यह सिद्ध होत हैं कि इसने अपने पिता एवं पितामह के साम्राज्य को पूर्णतः अक्षुण्ण बनाए रखा। जूनागढ़ अभिलेख सौराष्ट्र प्रान्त पर उसके अधिकार की पुष्टि करता हैं। मंदसौर अभिलेख उसके मालवा पर स्वामित्व को सिद्ध करता हैं। इसकी विविध प्रकार की रजत मुद्राएं साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर उसके शासन की पुष्टि होती हैं। बिहार के एक अभिलेख से सिद्ध होता है कि आधुनिक बिहार उसके साम्राज्य में था।

भितरी स्तम्भ लेख, कहौम स्तंभ लेख, इन्दौर ताम्रपत्र, गढ़वा एवं कौशांबी शिलालेख से इसका आधिपत्य सम्पूर्ण प्रदेश पर प्रमाणित करता हैं। इसने गरूड़ प्रकार के सिक्के पश्चिमी भारत, वेदी प्रकार के सिक्के मध्य भारत एवं नन्दी प्रकार के सिक्के काठियावाड़ में प्रचलित करवाने के उद्देश्य से उत्कीर्ण करवाए। इस प्रकार इसने समस्त उत्तर भारत पर उसका आधिपत्य था। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तक के विस्तृत भू–भाग पर शासन स्थापित किया। यह अन्तिम गुप्त सम्राट था जिसने बंगाल से लेकर गुजरात तक के विस्तृत भू–भाग पर शासन किया। जूनागढ़ अभिलेख में उसके साम्राज्य की विशालता के बारे में यह वर्णन मिलता हैं कि इसका साम्राज्य चारों समुद्रों तक फैला हुआ था।

स्कंदगुप्त के सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियों के विषय में आर0 के0 मुखर्जी का यह विचार तर्कसंगत हैं कि – ''स्कंदगुप्त शत्रुओं को परास्त करके चुप नहीं बैठ गया था उसका सैनिक स्वभाव उसे दिग्विजय की ओर प्रेरित करने लगा। स्कंदगुप्त की यह विजय धर्म विजय थी क्योंकि उसने परास्त शत्रुओं को पुनः स्थापित करके दया भावना प्रदर्शित की।''

स्कंदगुप्त एक वीर योद्धा के साथ–साथ एक कुशल प्रशासक भी था। अभिलेखों के माध्यम से इसकी शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता हैं। जूनागढ़ अभिलेख में स्कंदगुप्त के शासन प्रबंध कि प्रशंसा की गई है। इसका विशाल साम्राज्य प्रांतों में बंटा हुआ था। प्रान्तों को देश अथवा अवनी या विषय कहा गया हैं। प्रान्त पर शासन करने वाले राज्यपाल को गोप्ता कहा गया है।

अभिलेखों में स्कंदगुप्त के कुछ गोप्ताओं के नाम मिलते हैं जैसे– पर्णदत्त सौराष्ट्र प्रांत का, सर्वनाग अंतर्वेदी प्रांत का, भीमवर्मन कौशांबी प्रान्त का गोप्ता था। प्रमुख नगरों की शासन व्यवस्था देखने के लिए नगर प्रमुख नियुक्त किए जाते थे। बिहार के लेख में स्कंदगुप्त के कतिपय स्थानीय कर्मचारियों के नाम मिलते हैं–

अग्रहारिक–यह दान में दी गई भूमि की देख–रेख करता था।

शौल्किक–यह शुल्क सम्बन्धित कर्मचारी था।

गौल्मिक–यह जंगलों का अध्यक्ष था।

सौराष्ट्र प्रांत की राजधानी गिरनार का नगर प्रमुख चक्रपालित था जो पर्णदत्त का पुत्र था। प्रशासक लोकोपकारी कार्यों के लिए तत्पर रहते थे। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता हैं कि स्कंदगुप्त के शासनकाल में भारी वर्षा के कारण ऐतिहासिक सुदर्शन झील का बांध टूट गया था। क्षणभर के लिए वह रमणीय झील सम्पूर्ण विश्व के लिए भयावह आकृति वाली बन गई। इससे प्रजा को कष्ट होने लगा। इस कष्ट को दूर करने के लिए सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यापाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने जो गिरनार प्रमुख था, दो महीनों के अन्दर धन व्यय करने पत्थरों की जड़ाई द्वारा झील के बांध का पुनः निर्माण करवाया। इससे प्रजा ने चैन की सांस ली एवं स्वभाव से सुदर्शन झील शाश्वत रूप में स्थिर हो गई।

स्कंदगुप्त का शासन उदार था जिसमें जनता सुखी एवं समृद्ध थी। अब साम्राज्य में किसी को कोई कष्ट नहीं था जूनागढ़ अभिलेख में उसके प्रशासन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसकी प्रजा में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो धर्मच्युत हो अथवा दुःखी, दरिद्र, आपत्तिग्रस्त, लोभी या दंडनीय होने के कारण अत्यन्त सताया गया हो।

स्कंदगुप्त का शासन काल धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता का काल था। स्कंदगुप्त स्वयं वैष्णव धर्मावलंबी था परन्तु इसने धर्म सहिष्णुता की नीति का पालन किया। इसने सभी धर्मों के प्रति सम्मान की नीति अपनाई। इसने परमभागवत की उपाधि धारण की थी। भीतरी स्तंभ लेख के अनुसार इसने भीतरी में विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवाई।

जूनागढ़ अभिलेख में वर्णित हैं कि गिरनार के नगर प्रमुख चक्रपालित ने सुदर्शन झील के तट पर विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया। इंदौर ताम्रपत्र में सूर्य पूजा का उल्लेख मिलता है। कहौम स्तम्भ लेख से पता चलता है कि मद्र नामक व्यक्ति ने पांच जैन तीर्थकरों की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण करवाया। यद्यपि यह एक जैन था तथापि ब्राह्मणों, श्रमणों एवं गुरुओं का सम्मान करता था।

स्कंदगुप्त ने नालंदा संघाराम को दान दिए। चीन के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किया। एक भारतीय राजदूत 466 ईस्वी में चीनी राजा के दरबार में भेजा गया।

स्कंदगुप्त एक लोकोपकारी शासक था इसने अपने प्रजा के सुख–दुःख का सदैव ध्यान रखा। वह दीन दुखियों के प्रति दयावान था। यह प्रजावत्सल शासक था। प्रांतों में नियुक्त इसके राज्यपाल भी लोकोपकारी कार्यों में तत्पर थे।

जूनागढ़ अभिलेख से सूचना मिलती हैं कि स्कंदगुप्त के शासन काल में अधिक वर्षा के कारण ऐतिहासिक सुदर्शन झील का बांध टूट गया था और यह झील जनता के लिए प्रलंयकारी सिद्ध हुआ। प्रजा को इससे बहुत हानि हुई इस कष्ट को दूर करने के लिए सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र गिरनारनगर प्रमुख चक्रपालित ने दो महीनों में अतुल धन व्यय करके पत्थरों की जड़ाई से झील के बांध का

पुनः निर्माण करवाया। अभिलेख के अनुसार यह बांध सौ हाथ लम्बा तथा अरसठ हाथ चौड़ा था। इस निर्माण से प्रजा ने राहत की साँस ली और यह झील सदैव के लिए स्थिर हो गई।

इस सुदर्शन झील का निर्माण चंद्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने पश्चिमी भारत में सिंचाई के लिए करवाया था। शक महाक्षत्रप रूद्रदामन (130–150 ई0) के समय यह बांध टूट गया जिसका पुनः निर्माण धन व्यय करके रूद्रदामन ने अपने राज्यपाल सुविशाख के देखरेख में करवाया था।

1.9 सारांश

तीसरी शताब्दी ई0 में पूर्वी भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ, जिसका इतिहास उसके अभिलेखों, सिक्कों और साहित्य से ज्ञात होता हैं। गुप्त वंश के आरम्भिक शासक श्रीगुप्त और घटोत्कच महाराजा की उपाधि धारण करने वाले छोटे राजा थे, जो वाराणसी के आस–पास के क्षेत्रों में निवास करते थे। घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी से विवाह कर गुप्त वंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि की। इस विवाह से बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश का बहुत बड़ा भाग गुप्तों के अधीन हो गया। चंद्रगुप्त प्रथम ने महाराजधिराज की उपाधि धारण की, गुप्त संवत् का प्रारम्भ किया, सिक्के चलवाए और गुप्त वंश को एक प्रतिष्ठित राजवंश के रूप में स्थापित किया तथा परवर्ती गुप्त राजाओं के लिए एक सशक्त राज्य की आधारशिला स्थापित की।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त प्रथम के समय की प्रमुख घटनाओं पर निबंध लिखिए।
2. समुद्रगुप्त की उपलब्धियों पर प्रकाश डाालिए।
3. चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
4. कुमारगुप्त की साम्राज्य–विस्तार का वर्णन कीजिए।
5. रामगुप्त की ऐतिहासिकता का वर्णन कीजिए।

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 2011
2. बनर्जी, राखलदास, द एज ऑफ इंपीरियल गुप्ताज, वाराणसी, 1933
3. स्मिथ विंसेंट, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड, 1924
4. उपाध्याय, वासुदेवशरण, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 1957
5. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975
6. शर्मा, रामशरण, प्रारंभिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
7. झा, द्विजेंद्र नाथ एवं श्रीमाली, के. एम., प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1994
8. सिंह, उपन्दिर, प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास (प्राचीन काल से 12वीं शताब्दी तक)

इकाई 2–वाकाटक–गुप्त सम्बन्ध, मौखरी एवं परवर्ती गुप्त

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.5 गुप्त–वाकाटक संबंध

2.6 मौखरी वंश

2.7 परवर्ती गुप्त

2.6 सारांश

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 प्रस्तावना

वाकाटकों तथा गुप्तों की सम्मिलित शक्ति के कारण ही शकों का विनाश सम्भव हो पाया था। वाकाटकों तथा गुप्तों के प्रारम्भिक सम्बन्धों के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इतिहासकार एस. के. आयंगर तथा के. पी. जायसवाल की धारणा है कि दोनों राजवंशों के प्रारम्भिक सम्बन्ध शत्रुतापूर्ण थे।यहाँ दोनों राजवंशों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डाला जायेगा।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको वकाटक वंश का इतिहास, जीवन प्रणाली व गुप्त–वाकाटक संबधों से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

2.5 गुप्त–वाकाटक संबंध

जिस समय उत्तरी भारत में गुप्तवंश सार्वभौम स्थिति प्राप्त करने में लगा हुआ था, उसी समय दक्षिणापथ की राजनीति में एक प्रबल शक्ति के रूप में वाकाटक वंश का उदय हुआ। वाकाटकों की गणना दक्षिणापथ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सबल शक्ति के रूप में की जाती थी।

गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने वाकाटकों के निकट सम्बन्धी पद्मावती के भारशिवनाग शासक नागसेन का उन्मूलन किया था । मध्य भारत के कई भागों में वाकाटकों के सामन्त शासन कर रहे थे जिनका समुद्रगुप्त ने विनाश कर डाला था । ऐसी स्थिति में वाकाटकों का शान्त बैठे रहना सम्भव नहीं था तथा उन्होंने गुप्तों के विरुद्ध अवश्य ही अस्त्र ग्रहण किया होगा । प्रवरसेन प्रथम (275–335 ईस्वी) के काल में वाकाटक सार्वभौम स्थिति में थे । यही कारण है कि उसने 'सम्राट' की उपाधि ग्रहण की थी । किन्तु प्रवरसेन का पुत्र तथा उत्तराधिकारी रुद्रसेन प्रथम सार्वभौम स्थिति में घटकर सामन्त स्थिति को प्राप्त हुआ, जैसा कि उसकी 'महाराज' उपाधि से सूचित होता है । गुप्तों के इतिहास के सन्दर्भ में हम यह पाते हैं कि इसी समय चन्द्रगुप्त प्रथम ने सामन्त स्थिति से ऊपर उठकर सार्वभौम स्थिति को प्राप्त किया तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि ग्रहण की ।

आयंगर का विचार है कि उक्त दोनों घटनायें परस्पर सम्बन्धित थीं तथा गुप्तों का उत्कर्ष वस्तुतः वाकाटकों के मूल्य पर ही सम्भव हुआ था । चन्द्रगुप्त ने वाकाटकों को परास्त कर अपनी राजनैतिक स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ कर लिया होगा ।

जायसवाल ने कौमुदीमहोत्सव नाटक के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि वस्तुतः वाकाटकों की शक्ति को समुद्रगुप्त ने आघात पहुंचाया जिससे वे सामन्त स्थिति को प्राप्त हुये । समुद्रगुप्त के पूर्व तो वाकाटकों ने ही गुप्तों को अपने नियन्त्रण में रखा था।

प्रवरसेन ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर चण्डसेन का उन्मूलन कर दिया । चण्डसेन के पुत्र तथा उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त ने गुप्त–शक्ति का पुनरुद्धार किया । समुद्रगुप्त द्वारा उन्मूलन वाकाटक नरेश रुद्रसेन था जिसे प्रयाग प्रशस्ति में रुद्रदेव कहा गया है ।

वह कौशाम्बी में राज्य कर रहा था । वहीं पर युद्ध में समुद्रगुप्त ने उनका विनाश किया था । जायसवाल की धारणा है कि इसके पूर्व समुद्रगुप्त भी वाकाटकों का सामन्त था । यही कारण है कि समुद्रगुप्त के व्याघ्रहनन प्रकार के सिक्कों पर मात्र 'राजा' को उपाधि अंकित मिलती है ।

इतिहासकार फ्लीट तथा डी. सी. सरकार प्रयाग प्रशस्ति व्याघ्रराज का समीकरण वाकाटक नरेश पृथ्वीषेण के सामन्त व्याध्रदेव के साथ करते हैं तथा इस आधार पर यह प्रतिपादित करते हैं कि चूँकि समुद्रगुप्त ने वाकाटकों के सामन्त को पराजित किया था, अतः दोनों राजवंशों के बीच अवश्य ही युद्ध छिड़ा होगा ।

इस प्रकार आयंगर, जायसवाल, फ्लीट तथा सरकार ने विभिन्न तर्कों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के पूर्व वाकाटकों तथा गुप्तों के बीच किसी न किसी प्रकार का युद्ध अवश्य हुआ था ।

यदि उपर्युक्त मत की आलोचनात्मक समीक्षा की जाये तो प्रतीत होगा कि इसमें विशेष बल नहीं है तथा वाकाटकों और गुप्तों में पारस्परिक सम्बन्ध को शत्रुतापूर्ण निरूपित करना युक्तिसंगत नहीं है ।
इसके विरुद्ध हम निम्नलिखित बातें कह सकते हैं:

(1) इस मत के लिये कोई आधार नहीं है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्रवरसेन प्रथम के उत्तराधिकारी रुद्रसेन को पराजित किया जिससे वह सामन्त स्थिति में आ गया । 'महाराज' की उपाधि को सामन्त–सूचक नहीं माना जा सकता । दक्षिण भारत के अनेक स्वतन्त्र शासक भी इसे ग्रहण करते थे । प्रसिद्ध चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय को भी 'महाराज' कहा गया है ।

केवल उत्तर भारत के शासक ही गुप्तकाल से 'महाराज' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधियों में विभेद करने लगे तथा महाराज बने सामन्त स्थिति का द्योतक मान लिया। अल्तेकर का विचार है कि प्रवरसेन के उत्तराधिकारी द्वारा 'महाराज' की उपाधि धारण करने के लिये राजनीतिक तथा धार्मिक कारण थे । राजनीतिक दृष्टि से वाकाटक साम्राज्य प्रवरसेन के बाद उसके चार पुत्रों में बँट गया ।

अतः कोई भी इतना अधिक शक्तिशाली न हुआ कि वह 'सम्राट' की उपाधि ग्रहण करता । धार्मिक दृष्टि से यह उपाधि केवल वही ग्रहण कर सकता था जिसने 'वाजपेय यज्ञ' का अनुष्ठान किया हो । प्रवरसेन प्रथम ने यह यज्ञ किया था । अतः उसने 'सम्राट' की उपाधि ग्रहण की । इसके विपरीत यह यज्ञ न कर सकने के कारण उसके उत्तराधिकारी इस उपाधि से वंचित रह गये । इस प्रकार मात्र 'महाराज' उपाधि के आधार पर हम उन्हें सामन्त शासक सिद्ध नहीं कर सकते ।

(2) गुप्तों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम इस बात की समीक्षा कर चुके हैं कि कौमुदीमहोत्सव ऐतिहासिक रचना नहीं है । अतः इसके आधार पर कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता । समुद्रगुप्त द्वारा उन्मूलित आर्यावर्त का शासक रुद्रदेव, रुद्रसेन नहीं है ।

रुद्रसेन दक्षिणापथ का राजा था जबकि रुद्रदेव उत्तर भारत का शासक बनाया गया है । यदि सचमुच ही समुद्रगुप्त वाकाटक नरेश को परास्त करता तो इसका उल्लेख बड़े गर्व के साथ प्रयाग प्रशस्ति में किया गया होता ।

(3) जायसवाल ने समुद्रगुप्त के व्याघ्रहनन प्रकार के सिक्कों पर 'राजा' की उपाधि के आधार पर जो यह दिखाया है कि वह वाकाटकों का सामन्त शासक था, तर्कसंगत नहीं है । अल्तेकर का कहना है कि इन सिक्कों पर स्थानाभाव के कारण 'महाराजाधिराज' जैसी लम्बी उपाधि का अंकन न हो सका । पुनश्च हम चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त के कुछ सिक्कों पर भी उनकी उपाधि केवल 'महाराज' पाते हैं, किन्तु इस आधार पर कोई उन्हें सामन्त–शासक नहीं कहता ।

(4) प्रयाग प्रशस्ति के व्याघ्रराज का समीकरण वाकाटक सामन्त व्याघ्रदेव के साथ स्थापित करना संदिग्ध है । व्याघ्रराज विन्ध्यपर्वत के दक्षिण भाग का शासक था जबकि व्याघ्रदेव विन्ध्यपर्वत के उत्तर में स्थित बघेलखण्ड में राज्य करता था ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि समुद्रगुप्त के अभियान से वाकाटकों को कोई हानि नहीं हुई और न ही समुद्रगुप्त ने रुद्रसेन प्रथम को पराजित किया । यह सही है कि प्रवरसेन प्रथम के काल में वाकाटकों का दक्षिणी कोशल तथा पूर्वी दकन के राज्यों पर अधिकार था और समुद्रगुप्त ने अपने दक्षिणापथ अभियान में इन राज्यों को जीता था ।

किन्तु समुद्रगुप्त की विजय के पूर्व ही ये राज्य अपने को वाकाटकों की अधीनता से मुक्त कर चुके थे । ऐसा लगता है कि प्रवरसेन के निर्बल उत्तराधिकारियों के काल में उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी । समुद्रगुप्त बड़ा ही दूरदर्शी सम्राट था ।

उसने वाकाटकों की शक्ति तथा उनकी महत्वपूर्ण स्थिति का अन्दाजा लगा लिया और इसी कारण उसके साथ कोई संघर्ष मोल नहीं लिया । वह जिस मार्ग से दक्षिण भारत के अभियान पर गया उसी से वापस भी लौटा और इस प्रकार वाकाटकों के साथ उसके संघर्ष में आने का प्रश्न ही नहीं था ।

मौखरी वंश

गुप्त साम्राज्य के बिखराव की शुरुआत पांचवी शताब्दी के अंत काल में शुरू हुई थी। गुप्त साम्राज्य के अंत के बाद कई सारी शक्तियां अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रही थी। जिसके कारण गुप्त काल के बाद का समय बहुत ही अशांत था। 6वीं शताब्दी के मध्य में गुप्त साम्राज्य के विघटन के बाद की अवधि ने विभिन्न प्रांतीय शक्तियों के बीच संघर्ष की एक दिलचस्प तस्वीर पेश की थी। गुप्तों के पतन के बाद उत्तर भारत पुराने राजनीतिक विघटन की स्थिति में चला गया था। सिंहासन और सत्ता हासिल करने के लिए कई स्वतंत्र राज्य एक दूसरे के साथ निरंतर संघर्ष में थे। 7वीं शताब्दी में राजा हर्षवर्धन ने भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने से पहले कई छोटी लेकिन शक्तिशाली इकाइयों की सत्ता हासिल

की थी। इन शक्तियों में वल्लभी के मैत्रक, राजपुताना के गुर्जर, मौखरी और बाद के गुप्तवंश शशांक के अधीन गौड़ का राज्य और कामरूप का राज्य शामिल थे। इस इकाई में हम वल्लभी के मैत्रक वंश, मौखरी वंश तथा मालवा के यशोधर्मन के विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

मौखरी वंश का इतिहास

यशोधर्मन के पश्चात संगठित साम्राज्य को छिन्न–भिन्न करनेवाली शक्तियाँ भारत में फिर काम करने लगीं। यशोधर्मन की मृत्यु के बाद आर्यावर्त का आधिपत्य मौखरियों के हाथ चला गया। इन मौखरियों का आदिस्थान मगध माना जाता है। इन्होंने गुप्त–राजाओं की निर्बलता से लाभ उठाकर अपने लिए कन्नौज में एक राज्य स्थापित किया और थोड़े ही समय में भारत का सम्राट्पद प्राप्त कर लिया। अब मगध के बदले कन्नौज राजनीतिक जीवन का प्रधान केंद्र बन गया और उसका अब वही महत्त्व हो गया, जो पहले पाटलिपुत्र का था। आभिलेखिक साक्ष्य – (1) गया राजमुद्रा, (2) बड़वा अभिलेख, (3) बराबर तथा नागार्जुनी गुहा अभिलेख, (4) हरहा अभिलेख, (5) नालंदा अभिलेख ।

मौखरी लोग अपने को वैवस्वत के वर से प्राप्त अश्वपति के सौ पुत्रों का वंशधर बताते थे। उनकी वास्तविक उत्पत्ति का हाल हमें ज्ञात नहीं है। वे संभवतः एक बहुत ही प्राचीन कुल से संबद्ध थे। उनका वास्तविक अथवा कल्पित मुखर नाम का एक पूर्वज हुआ था। उसी के नाम पर इस वंश का नाम 'मौखरी' पड़ा। मौखरियों का एक गोत्र भी था। पतंजलि के महाभाष्य पर कैय्यट की जो टीका है, उसमें तथा जयादित्य एवं वामन की काशिकावृत्ति में 'मौखर्य्याः' शब्द का प्रयोग गोत्र नाम के रूप में ही हुआ है। ई. पू. तीसरी शताब्दी के पूर्व की एक मिट्टी की मुद्रा पर मोखल्लिनाम् ब्राह्मी लिपि में मिलता है। कोटा (राजस्थान) से 239 ई0 का एक लेख प्राप्त हुआ है, जिसपर मौखरी–सरदार का उल्लेख है। मौखरी 'मुखर' या 'मौखरि' दोनों कहते थे। हर्षचरित इस शब्द की व्युत्पत्ति 'मुखर' शब्द के आधार पर करता है।

मौखरियों की उत्पत्ति के संबंध में भी इतिहासकारों के बीच मतभेद बना हुआ है। यों प्राचीनता के दृष्टिकोण से देखने पर तो पाणिनि का अष्टाध्यायी में भी 'मौखरी' शब्द का उल्लेख मिलता है. परंतु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वे इतने प्राचीन थे अथवा नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। बराबर तथा नागार्जुन पहाड़ियों के गुहा अभिलेखों में भी गुप्तों के कुछ ऐसे सामंतों के नाम मिलते है, जिन्हें लोग मौखरियों से मिलाते हैं। इनकी उत्पत्ति चाहे जहाँ और जैसे भी हुई हो इतना तो निश्चित है कि इतिहास में वे ही मौखरी प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद बिहार और उत्तरप्रदेश के बहुत बड़े हिस्से पर अपना राज्य स्थापित किया और कन्नौज के प्रमुख की नींव डाली। कान्यकुब्ज की प्रतिष्ठा जो मौखरियों के समय स्थापित हुई, वह कई शताब्दियों तक बनी रही। गुप्तों के साथ इनका पुराना और घनिष्ठ संबंध था और दोनों के संयुक्त प्रयास से ही गौड़ों की हत्या हुई थी। यों इस वंश के बहुत–से शासक हुए, परंतु इस वंश को बढ़ाने का वास्तविक श्रेय ईशानवर्मा और उसके वंशजों को ही था।

यह वंश अनेक विभिन्न शाखाओं में बंटा हुआ था। एक शाखा उत्तरप्रदेश के जौनपुर और बाराबंकी जिले में थी, दूसरी बिहार में और तीसरी राजस्थान में। गया से मौखरियों का अत्यंत प्राचीन संबंध था। इसकी पुष्टि मोखलिश तथा मोखलिणम् अभिलेख से मिट्टी की सील द्वारा होती है। कदंश के राजा चन्द्रवल्लि के पाषाण–अभिलेख में मौखरियों का उल्लेख मिलता है। साहित्य में मौखरियों का संबंध कन्नौज से भी बताया जाता है। गया और कान्यकुब्ज के मौखरियों के बीच कैसा संबंध था, यह निश्चित रूप से कहना मुश्किल है।

मौखरियों की मुख्य शाखा उत्तरप्रदेश पर शासन करती थी। बाण के अनुसार उनकी राजधानी कन्नौज में थी। मुख्य शाखा के अतिरिक्त एक करदवंश गयाप्रदेश पर राज्य करता था। गया के बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों के गुफालेखों से हमें इस वंश के तीन नाम मिलते हैं– यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा, अनंतवर्मा। वे गुप्त सम्राटों के सामंत और सहायक राजा थे। मौखरियों की प्रधान शाखा, जो आरंभ में गुप्त राजाओं की अधीनता स्वीकार करती थी, बाद में अपनी उन्नति कर उत्तर भारत की प्रधान शक्ति बन गई। इस वंश के प्रथम तीन राजाओं के नाम हरिवर्मा, आदित्यवर्मा तथा ईश्वरवर्मा थे। ईश्वरवर्मा (524–50 ई0) बड़ा वीर और प्रतापी था। उसी ने अपने वंश की प्रतिष्ठा बढ़ाई। इन्होंने उत्तर गुप्त राजाओं के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। आदित्यवर्मा तथा ईश्वरवर्मा की स्त्रियांउत्तर गुप्तवंश की राजकुमारियाँ थी। थानेश्वर के वर्द्धन–राजाओं ने भी मौखरियों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए।

ईशानवर्मा (550–76ई.)

ईश्वरवर्मा का पुत्र ईशानवर्मा था। उसने 'महाराजाधिराज' पदवी धारण की। उसके हरहा– अभिलेख से उसकी उपलब्धियों का पता चलता है। उस समय आंध्र सूलिक और गौड़ प्रमुख शक्तियाँ थे। ईशानवर्मा ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण किया। उसी के साथ कुमारगुप्त तृतीय का संघर्ष हुआ होगा। अफसढ़–अभिलेख में कहा गया है कि राजाओं में चंद्रमा के समान ईशानवर्मा की सेना को विलोक कर उसने अपने–आपको परम भाग्यशाली बना लिया। मौखरियों ने कभी सम्राट गुप्त पर विजय प्राप्त की, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। उन शक्तियों के साथ ईशानवर्मा के युद्धों का वर्णन हरहा–लेख में है। तेलुगू प्रदेश में विष्णुकुंडिन् लोगों की प्रधानता थी। मौखरियों और गुप्तों ने इस राज्य पर आक्रमण किया । धनकटक का राज्य भी आंध्र में ही पड़ता था। ये दोनों पल्लव राज्य के अधीन थे। आदित्यसेन के अफसढ़–लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईशानवर्मा एक शक्तिशाली शासक था। हूणों का उपद्रव अब भी बंद नहीं हुआ था। वे लोग थानेश्वर के आसपास आक्रमण किया करते थे और मौखरी लोग सदा उनसे सजग रहने के लिए विवश थे। मौखरियों को बराबर हूणों का सामना करना पड़ता था। सामरिक विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त ईशानवर्मा ने एक और महत्त्वपूर्ण काम किया था। हूणों के आक्रमण के कारण सामाजिक अव्यवस्था फैल गई थी। उसने सामाजिक अव्यवस्था को बढ़ने से रोका था। हिंदूधर्म के पुनरुद्धार में भी उसने हाथ बंटाया ।

उसने राजकुल के गौरव की प्रतिष्ठा की। उसने आंध्रों को जीता, सुलिकों को परास्त किया और गौड़ों को अपनी सीमा के भीतर रहने के लिए बाध्य किया। उसकी इस बढ़ती हुई शक्ति से मगध के गुप्तों का आतंकित होना स्वाभाविक ही था। मौखरियों और गुप्तों के बीच पूर्वी भारत में आधिपत्य के लिए संघर्ष होना अनिवार्य था और अन्ततः हुआ भी। मौखरि कन्नौज में जम चुके थे और गुप्त लोग मालवा तथा मगध में अपना अस्तित्व कायम करने पर तुले हुए थे। मौखरियों ने थानेश्वरवंश से अपना संबंध भी स्थापित कर लिया।

सर्ववर्मा

ईशानवर्मा के पश्चात सर्ववर्मा गद्दी पर बैठा। उसे भी 'महाराजाधिराज' कहा गया है। संभवतः वह अपने वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा था। सर्ववर्मा का समकालीन गुप्त राजा दामोदरगुप्त था, जिसे उसने पराजित किया। दामोदरगुप्त संभवतः युद्ध क्षेत्र में मारा गया और सर्ववर्मा ने मगध को अपने राज्य में मिला लिया। उसने बालादित्य द्वारा पूर्व में स्वीकृत किए हुए दानपत्र को दृढ़ किया। उसके समय मौखरी मगध के भी शासक हो गए। मगध के निकल जाने के बाद अंतिम गुप्त सम्राट के पास केवल मालवा ही शेष बच रहा था। मौखरियों का प्रत्यक्ष शासन सोन नदी तक फैल गया। सर्ववर्मा ने हूणों को भी पराजित किया। उसने पुष्यभूतियों के साथ पश्चिमोत्तर सीमा पर हुणों को हराया और मगध में दामोदरगुप्त को । इनका परिणाम यह हुआ कि एक तरफ गुप्तों और गौड़ों का गुट बना और दूसरी तरफ मौखरी और पुष्यभूतिवंश का। उसका राज्य पूर्व में मगध, पश्चिम में थानेश्वर की पूर्वी सीमा तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विघ्य की पहाड़ी तक फैला हुआ था। प्रभाकरवर्धन तथा महासेनगुप्त के बीच घनिष्ठ संबंध था। माधवगुप्त की मित्रता हर्ष से थी। मौखरियों की बढ़ती हुई शक्ति देखकर ही महासेनगुप्त ने पुष्यभूतिवंश से संबंध स्थापित किया था।

अवन्तिवर्मा

सर्ववर्मा के बाद अवंतिवर्मा राजा हुआ। उसकी राजधानी कन्नौज थी। उसके समय पुष्यभूति और मौखरियों के बीच की मित्रता और भी दृढ़ हो गई। उसके बाद ग्रहवर्मा राजगद्दी पर बैठा। उसका विवाह थानेश्वर की राजकुमारी राज्यश्री (हर्ष की बहन) के साथ हुआ। गौड़ राजा शशांक और मालवा के देवगुप्त ने कन्नौज पर आक्रमण कर ग्रहवर्मा को मार डाला। इसके अनंतर राज्यश्री को कोई संतान न होने के कारण कान्यकुब्ज और स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) के राज्य एक में मिल गए और कान्यकुब्ज–साम्राज्य की स्थापना हुई। मौखरियों ने 554 से 605 ई० तक शासन किया। उनका शासन विंध्य से अवध तक और पूर्वी बंगाल तक फैला हुआ था। अमात्यों की एक सभा की सहायता से वे शासन करते थे। राजवंश के कुमार प्रांतीय शासक होते थे। न्याय की व्यवस्था अच्छी थी और राजा के यहाँ अपील की जा सकती थी। उत्तरगुप्तों के साथ उनका संघर्ष चलता रहा। मौखरी लोग ब्राह्मण धर्मावलंबी थे। उन्होंने एक शक्तिशाली

राष्ट्र का निर्माण किया था। यह उनकी तेजस्विता और विजयों का परिणाम था। गुप्तों के बाद उनका साम्राज्य–संगठन बड़ा ही महत्त्व रखता है।

परवर्ती गुप्त

राजनीतिक इतिहास

परवर्तीगुप्त वंश का संस्थापक राजा कृष्णगुप्त (लगभग 510–525 ईस्वी) था। अफसद लेख में उसे 'असंख्य शत्रुओं का विजेता' (असंख्य– रिपुप्रतापज्जयिना) तथा 'अच्छेवंश का' (सद्वंशः) कहा गया है। उसकी सेना मे सहस्त्रों हाथी थे तथा वह विद्वानों द्वारा सदा घिरा रहता था। किन्तु उसके द्वारा पराजित शत्रुओं के विषय में हमें ज्ञात नहीं है।

रायचौधरी का विचार है कि उसने यशोधर्मन् के विरुद्ध युद्ध किया था, परन्तु ग्रह निष्कर्ष संदिग्ध है। उसका उत्तराधिकारी हर्षगुप्त हुआ। उसे वीर योद्धा कहा गया है जिसने भयंकर युद्धों में भाग लेकर अपने शत्रुओं का संहार किया था। सम्भवतः वह यशोधर्मन् का समकालीन था, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि दोनों में कोई युद्ध हुआ अथवा नहीं। उसकी बहन हर्षगुप्ता का विवाह मौखरि नरेश आदित्यवर्मा के साथ हुआ था। हर्षगुप्त का पुत्र तथा उत्तराधिकारी जीवितगुप्त 'राजाओं में शिरमौर' (क्षितीशचूड़ामणिः) कहा गया है जो अपने शत्रुओं के लिये महाज्वर के समान था। उसने समुद्र तट तथा हिमालय के शत्रुओं को जीता था। किन्तु ये विवरण अतिरंजित है। उत्तरगुप्त वंश के प्रारम्भिक तीन राजाओं ने सभवतः 554–55 ईस्वी तक शासन किया। वे सभी चक्रवर्ती गुप्तों की अधीनता स्वीकार करते थे। तीन पीढ़ियों तक उनका मौखरि वंश से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहा जो इसके बाद शत्रुता में परिणत हो गया।

कुमारगुप्त

उत्तर गुप्तवंश का चौथा राजा कुमारगुप्त हुआ जो जीवितगुप्त का पुत्र था। उसी के काल में यह वंश सामन्त स्थिति से मुक्त हुआ। वह एक शक्तिशाली राजा था जिसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि ग्रहण की। अफसद के लेख में उसकी शक्ति की प्रशंसा करते हुए उसे वीरों में अग्रगण्य (प्रख्यातशक्ति–माजिषुपुरः सरं) कहा गया है।

उसका प्रतिद्वन्द्वी मौखरि नरेश ईशानवर्मा समान रूप से महत्वाकाक्षी था। ऐसो स्थिति में दोनों में संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। अफसढ़ लेख दोनों के बीच युद्ध का चित्रण काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है जो इस प्रकार है– 'ईशानवर्मा की क्षीर सागर के समान विकराल सेना को कुमारगुप्त ने युद्ध–क्षेत्र में उसी तरह मथ डाला जिस तरह देवासुर संग्राम में मन्दराचल पर्वत द्वारा क्षीर सागर मथा गया था।'' इससे स्पष्ट है कि युद्ध में कुमारगुप्त विजयी रहा। इस विजय के फलस्वरूप कुमारगुप्त का साम्राज्य गंगा नदी के किनारे पश्चिम में प्रयाग तक विस्तृत हो गया। अफसढ़ लेख से पता चलता है कि उसने प्रयाग में अपना प्राणान्त किया। एन० राय ०२ तथा आर० के० मुकर्जी का विचार है कि इस युद्ध में कुमारगुप्त की ही पराजय हुई

तथा ग्लानिवश उसने प्रयाग में जाकर आत्म–हत्या कर लिया। किन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष लेख की भावना से मेल नहीं खाता। के० सी० चट्टोपाध्याय ने प्राचीन ग्रन्थों से उद्धरण देते हुये बताया है कि प्रयाग में पुण्यार्जन हेतु प्राणान्त करने की प्रथा प्रचलित थी। धार्मिक दृष्टि से यह कार्य अत्यन्त पवित्र माना जाता था। धंग, गांगेयदेव जैसे शासकों ने इसी विधि से अपना प्राणान्त किया था। हुएनसांग भी इस प्रथा का उल्लेख करता है। अतः यही मानना समीचीन लगता है कि कुमारगुप्त ने प्रयाग में आकर स्वर्ग–प्राप्ति की लालसा से ही अपने जीवन का त्याग किया था, न कि आत्म–ग्लानि के कारण।

दामोदरगुप्त

कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद उसका पुत्र दामोदरगुप्त शासक बना। उसका मौखरि प्रतिद्वन्द्वी सर्ववर्मा था जो ईशानवर्मा का पुत्र था। अपने पिता की पराजय का बदला लेने के लिये उसने दामोदरगुप्त पर आक्रमण किया तथा युद्ध में उसे मार डाला। अफसढ़ लेख में कहा गया है कि 'दामोदरगुप्त ने युद्ध–क्षेत्र में हूणों को परास्त करने वाली मौखरि नरेश की सेना के मदमस्त चालों वाले हाथियों की घटा को विघटित कर दिया। वह मूर्छित हो उठा तथा फिर सुर–वधुओं–जिन्होंने उसे पति के रूप में चुन लिया–के पाणिपंकज के सुखद स्पर्श से जाग उठा।'' यहाँ मौखरि नरेश का नाम नहीं मिलता। किन्तु इससे तात्पर्य सर्ववर्मा से ही है जो दामोदरगुप्त का समकालीन था। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस लेख के विवरण से दामोदरगुप्त की मृत्यु नहीं सूचित होती वरन् उसका केवल युद्ध–क्षेत्र में मूर्छित होना ही सूचित होता है। वास्तविकता जो भी हो, दामोदरगुप्त पराजित हुआ तथा इस पराजय के फलस्वरूप मगध उत्तरगुप्तो के अधिकार से निकल कर मौखरियों के हाथ में चला गया। मगध के ऊपरसर्ववर्मा के अधिकार की पुष्टि देवबर्नाक लेख से भी हो जाती है। अब उत्तरगुप्तों का राज्य केवल मालवा तथा उसके आस–पास ही सीमित रहा। यह युद्ध 582 ईस्वी के आस–पास लड़ा गया होगा। दामोदरगुप्त ब्राह्मण धर्म का पोषक तथा उदार शासक था। अफसद के लेख में कहा गया है कि उसने अनेक ब्राह्मण कन्याओं का विवाह सम्पन्न करवाया लेखा एक सौ ग्राम (अग्रहार) ब्राह्मणों को दान में दिया था।।

महासेनगुप्त

दामोदरगुप्त के बाद उसका पुत्र महासेनगुप्त शासक बना। अफसढ़ लेख में उसके शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि वह वीरों में अग्रणी था तथा उनके समाज में सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी होने का यश उसने अर्जित किया था (सर्ववीरसमाजेषु लेभे यो धुरि वीरताम्)।

लेख से पता चलता है कि उसने असम नरेश सुस्थितवर्मन् को लौहित्य नदी (ब्रह्मपुत्र) के तट पर पराजित किया जिससे उसका यश नदी के दोनों तटों पर गाया जाता था। यह पराजित नरेश हर्ष के मित्र भास्करवर्मा का पिता था। सुधाकर चट्टोपाध्याय का विचार है कि इस समय महासेनगुप्त मौखरि नरेश

अवन्तिवर्मा की अधीनता स्वीकार करते थे। इसी कारण महासेनगुप्त को 'महाराजा– धिराज' नहीं कहा गया है।

इस वंश का शासन मगध एवं मालवा में था। उत्तरकालीन गुप्तवंश का संस्थापक कृष्णदत्त था। चक्रवर्ती गुप्त राजवंश हे व्यक् करने के लिए इस वंश को उत्तर–गुप्तवंश कहा जाता है। उत्तरकालीन गुप्तों की वंशावली दो अभिलेखों में मिलती है– अफसढ़ अभिलेख – यह बिहार के गया जिले में है। यह लेख आदित्यसेन का है। लेख में जीवितगुप्त प्रथम को क्षितिशचूडामणि कहा गया है। देवबर्नाक अभिलेख–यह बिहार के शाहाबाद (आरा) जिले में है। यह लेख जीवितगुप्त द्वितीय का है।

कुमारगुप्त

इसी के समय उत्तर गुप्त वंश सामन्त स्थिति से मुक्त हुआ। इसने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की। इसका समकालीन मौखरि नरेश ईशानवर्मा था जिससे इसका संघर्ष हुआ था। उसने 'परमार्थ' को चीन भेजा था। अफसढ़ लेख के अनुसार, ''कुमारगुप्त ने उपले की आग में अपना जीवन प्रयाग में त्याग दिया।''अगला शासक दामोदरगुप्त रणस्थल में ही मारा गया। उसके उत्तराधिकारी महासेनगुप्त ने मगध का परित्याग कर मालवा में अपनी राजधानी बनाया।

देवगुप्त

इसने मालवा में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। यह हर्ष का प्रतिद्वंद्वी और बंगाल के गौड़ नरेश शशांक का मित्र था। हर्ष के मधुबन तथा बंसखेड़ा लेख में देवगुप्त का नाम मिलता है। देवगुप्त के भय के कारण इसके दो छोटे भाई माधवगुप्त एवं कुमारगुप्त हर्ष के थानेश्वर राजसभा में चले गये। आगे चलकर हर्ष ने माधवगुप्त को मगध का शासक भी बनवाया।

आदित्यसेन यह माधवगुप्त की मृत्यु के बाद मगध का शासक बना। यह उत्तर–गुप्त वंश का सबसे प्रतापी शासक था। शाहपुर शिलालेख से ज्ञात होता है कि इसने तीन अश्वमेध यज्ञ किया था। कोरिया के बौद्ध यात्री हुई–लुन के अनुसार इसने बोधगया में एक बौद्ध मन्दिर बनवाया। अभिलेखों में आदित्यसेन को परमभागवत कहा गया है। इसी समय चीनी राजदूत वांग– हुएन–से ने दो बार (655–675 ई0 के बीच) भारत की यात्रा की। जीवितगुप्त द्वितीय इस वंश का अन्तिम शासक था।

2.6 सारांश

विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह स्पषट रूप से कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त के समय तक गुप्तों एवं वाकाटकों के बीच किसी प्रकार का युद्ध नहीं हुआ था। वह वाकाटकों के महत्त्व को समझता था और देश से शक कुषाणों को निकालना राजनय के दृ–ष्टिकोण से ज्यादा जरूरी था। वाकाटक इस योजना में सहायक और घातक दोनों सिद्ध हो सकते थे। चूँकि उनकी भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी, अतः उनके सौहार्द को जीतना राजनय के दृष्टिकोण से आवश्यक था। इसी कारण कालांतर में दोनों राजवंशों के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ। चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री का विवाह वाकाटक रुद्रसेन द्वितीय से किया। शकों से लड़ने के लिए उसे एक अत्यंत शक्तिशाली मित्र की आवश्यकता थी और इसमें वाकाटक सहायक हो सकते थे। अतः उनके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर चन्द्रगुप्त ने अपनी नीति–निपुणता का परिचय दिया । गुप्तों के लिए यह लाभकारी सिद्ध हुई। शक–विजय का कार्य सरल हो गया। वैवाहिक संबंध में बाह्य नीति को सफलता मिली। वाकाटक राज्य को भी इससे लाभ हुआ। रुद्रसेन की अकालमृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री प्रभावती की सहायता की। उसके पुत्रों की शिक्षा के लिए कालिदास वाकाटक राज्य की राजधानी नंदिवर्धन में भेजे गए।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गुप्त–वाकाटक संबंधों पर विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

   .....

2. वाकाटक कौन थे? वाकाटकों की शासन प्रणाली तथा जीवन शैली के संदर्भ में विवेचना कीजिये।

   .....

3. वाकाटक साम्राज्य के शक्तिशाली शासकों के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

ब्राउन, पी. : इण्डियन आर्किटेक्चर, बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू

गोपालचारी, के. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ द आन्ध्र कन्ट्री, मद्रास, 1941

हेरास, एच. : रिलेशन्स बिटवीन गुप्ताज, कादम्बाज एण्ड वाकाटकाज (जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी,1926

जायसवाल, के.पी. : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (150–350 ए.डी.)

मजूमदार, आर.सी. : द क्लासिकल एज

मजूमदार एण्ड अल्तेकर : द वाकाटक–गुप्त एज

इकाई 3–भारत पर हूणों का आक्रमण

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 भारत पर आक्रमण

3.3 हूणों के आक्रमण का प्रभाव

- 3.3.1 ऐतिहासिक प्रकरणों का विनाश
- 3.3.2 राजनीतिक प्रभाव
- 3.3.3 सांस्कृतिक प्रभाव
- 3.3.4 आर्थिक दशा पर प्रभाव
- 3.3.5 धार्मिक अत्याचार
- 3.3.6 व्यापार–वाणिज्य को आघात
- 3.3.7 कला एवं साहित्य को आघात

3.4 तोरमाण

3.5 मिहिरकुल

3.6 सारांश

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

इतिहासकारों की माने तो हूण उत्पत्ति पर किसी के पास कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। इतिहासकार बताते हैं कि हूणों का उदय मध्य एशिया में हुआ, जहाँ से उनकी दो शाखा बनी। एक ने रोम पर आक्रमण किया तथा दूसरी ने ईरान से होते हुए भारत पर।

महाभारत के आदिपर्व 174 अध्याय के अनुसार जब ऋषि वसिष्ठ की नंदिनी (कामधेनु) गाय का राजा विश्वामित्र ने अपहरण करने का प्रयास किया, तब कामधेनु गाय ने क्रोध में आकर, अनेकों योद्धाओं को अपने शरीर से जन्म दिया। उसने अपनी पूँछ से बारंबार अंगार की भारी वर्षा करते हुए पूंछ से ही पह्लवों की सृष्टि की, थनों से द्रविडों और शकों को उत्पन्न किया, योनिदेश से यवनों और गोबर से बहुतेरे शबरों को जन्म दिया। कितने ही शबर उसके मूत्र से प्रकट हुए। उसके पार्श्वभाग से पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर और खसों की सृष्टि की। इसी प्रकार उस गौ ने फेन से चिबुक, पुलिन्द, चीन, हूण, केरल आदि बहुत प्रकार के मलेच्छों की सृष्टि की।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको हूणों का इतिहास, व उनके द्वारा भारत पर होने वाले आक्रमणों से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

3.2 भारत पर आक्रमण

भारत पर हूणों का पहला आक्रमण 458 ई0 में हुआ उस समय गुप्त सम्राट कुमारगुप्त गद्दी पर था उसने युवराज स्कन्दगुप्त को हूणों का सामना करने का उत्तरदायित्व सौंपा, स्कन्दगुप्त ने हूणों को बुरी तरह पराजित कर दिया, इसी विजय की याद में उसने विष्णु स्तम्भ बनवाया भारत से हारकर हूण बहुत निराश हुये जब तक स्कन्दगुप्त जीवित रहा हूण भारत में अपना पैर नही जमा सके उन्होने फिर ईरान की ओर ध्यान दिया, ईरान को नष्ट करके उन्होने अपनी शक्ति और भी मजबूत कर ली। इस प्रकार शक्ति एकत्रित करके हूणों ने 30 वर्ष बाद भारत पर फिर आक्रमण किया, हूणों के प्रमुख सरदार तोरमाण और उसका पुत्र मिहिरकुल थे लेकिन स्कन्दगुप्त के बाद कोई शक्तिशाली शासक नहीं हुआ जो हूणों का सामना कर सकता अतः छठी शताब्दी के आरम्भ तक हूणों ने भारत के उत्तर–पश्चिमी हिस्से में एक बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। धीरे–धीरे हूणों ने गुप्त साम्राज्य को लूटकर उसे छिन्न–भिन्न कर दिया।

3.3 हूणों के आक्रमण का प्रभाव

यद्यपि हूणों का अधिकार भारत में एक छोटे से भाग पर तथा थोड़े समय तक ही रहा पर उसका प्रभाव भारत के राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र पर पड़े बिना नहीं रह सका।

3.3.1 ऐतिहासिक प्रकरणों का विनाश

हूण असभ्य और बर्बर थे, उन्होने अपने आक्रमण और शासन की अवधि में अनेक मठ, मंदिर और ईमारतें नष्ट करवा दी और अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों का विनाश कर दिया। इस प्रकार ऐसी बहुत सी

सामग्री समाप्त हो गयी जिससे उस समय के इतिहास के विषय में बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती थी।

3.3.2 राजनीतिक प्रभाव

हूणों के आक्रमण का सबसे बुरा प्रभाव गुप्त साम्राज्य पर पड़ा। अनेक आक्रमणों ने उसे नष्ट कर दिया। स्कन्दगुप्त के समय में हूणों को पहली बार करारी हार मिली। जब तक स्कन्दगुप्त जीवित रहा हूणों की दाल नहीं गल पाई पर उसकी मृत्यु के बाद कोई भी ऐसा शक्तिशाली गुप्त शासक नहीं हुआ जो उनका सामना कर सकता था। हूणों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और विशाल गुप्त सम्राज्य को नष्ट कर दिया इतना ही नही गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने से भारत की राजनीतिक एकता भी नष्ट हो गई और सारा साम्राज्य छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गया।

3.3.3 सांस्कृतिक प्रभाव

हूणों की बर्बरता ने भारत के सांस्कृतिक जीवन को काफी ठेस पहुँचाई, विद्वानों और कलाकारों का वध करके, साहित्यिक, सांस्कृतिक पुस्तकें जलाकर, मठों, विहारों और इमारतों को नष्ट करके उन्होने भारत की संस्कृति को बहुत क्षति पहुँचाई।

हूणों के आक्रमण ने पतनोन्मुख गुप्त साम्राज्य को गहरा आघात पहुँचाया था। हूणों की नृशंसता तथा लूटपाट से भारतीय जनजीवन तथा अर्थव्यवस्था को काफी हानि उठानी पड़ी थी। भारतीय क्षेत्र से उनके हटने के बाद शताब्दियों तक राजनीतिक एकता तथा आर्थिक सुरक्षा स्थापित नहीं की जा सकी। हूणों के द्वारा अधिगृहीत क्षेत्र कुछ समय के लिए अराजकता एवं अव्यवस्था में डूब गया। उनके आक्रमणों के परिणामस्वरूप पंजाब की गणजातियों का अस्तित्व भी सदा के लिए समाप्त हो गया।

3.3.4 आर्थिक दशा पर प्रभाव

हूण आक्रमण का भारत की आर्थिक दशा पर बुरा प्रभाव पड़ा। देश की आर्थिक दशा बिगड़ गई। स्कन्दगुप्त तथा उसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों में धातु की गिरावट से पता चलता है कि उस समय में आर्थिक दशा बिगड़ चुकी थी।

स्कन्दगुप्त के बाद तो स्वर्ण सिक्कों के निर्माण की परंपरा समाप्त हो गयी। अपने द्वारा जीते गये प्रदेशों के आधार पर हूणों ने विविध प्रकार के सिक्के चलाए। अफगानिस्तान एवं पश्चिमोत्तर के कुछ भागों में **ससैनियन** सिक्कों के अनुकरण पर सिक्के चलवाये गये थे। वे चाँदी तथा ताँबे के हैं, तथा इनकी कई निधियां गुजरात, राजस्थान आदि में मिली है भारतीय परंपरा में इन्हें गधैया कहा जाता है। इनके पुरोभाग पर **सासनी** अनुकरण वाले शासक का उर्ध्व भाग तथा पृष्ठतल पर अग्निवेदिका मिलती है। इस प्रकार के सिक्के तेरहवीं शती तक मिलते हैं। इनका प्रसार दक्षिण तक दिखाई देता है जो वहाँ व्यापारियों तक पहुँचाये गये थे।

3.3.5 धार्मिक अत्याचार

हूणों ने नगरों को ध्वस्त किया तथा बौद्ध मठों को लूटा। ये संस्कृति तथा सम्पत्ति के केन्द्र थे।

3.3.6 व्यापार वाणिज्य को आघात

इस आक्रमण से आर्थिक पतन की गति और तेज हो गई। हूणों ने रोम के साथ भारत के व्यापार वाणिज्य को भी क्षति पहुँचाई। व्यापारिक मार्ग अशांतपूर्ण हो गये तथा बंद हो गये। रोम के साथ व्यापार बंद हो जाने के बाद भारतीय व्यापारी दक्षिण–पूर्व एशिया की ओर उन्मुख हुए। समुद्री मार्ग से होने वाला व्यापार प्रभावित हुआ। कास्मस नामक विद्वान सोपारा, कल्याण, भड़ौच आदि बंदरगाहों का उल्लेख नहीं करता। आंतरिक व्यापार भी प्रभावित हुआ। व्यापार वाणिज्य में सिक्कों का महत्व जाता रहा तथा उनमें सस्ती धातुओं की मिलावट होने लगी।

3.3.7 कला एवं साहित्य को आधात

हूणों के आक्रमण ने भारतीय साहित्य तथा कला को भी गहरा आधात पहुँचाया। मिहिरकुल के काल में तक्षशिला, कौशाम्बी, नालंदा, पाटलिपुत्र जैसे प्राचीन नगर या तो ध्वस्त कर दिये गये या उन्हें भारी क्षति पहुँचाई गई।बौद्ध विहार तथा स्तूप भी जला दिये गये। चीनी स्रोतों के अनुसार मिहिरकुल ने केवल गांधार प्रदेश में 1600 स्तूपों तथा **कंधराओं** को नष्ट कर दिया था।

हूण खानाबदोश जंगलियों का समूह था। आरम्भ में वे चीन के पड़ोस में रहते थे। वे पश्चिम की ओर बढ़े और दो भागों में विभक्त हो गये। एक भाग वोल्गा की ओर चला गया और दूसरा भाग ऑक्सस की ओर चला गया, जो हूण यूरोप गए थे वे काले हूण कहलाए और उसका सबसे महान नेता **अट्टिला** था। जो हूण ईरान और भारत में रहने लगे वे श्वेत हूण थे और हेफ्थलाइट्स कहलाए। पाँचवी शती ई0 के मध्य में वे आक्सस घाटी में शक्तिशाली बन गये। 484 ई0 में उनके राजा **अख्शोनवर** ने ईरान को **ससैनियन** राजा फिरोज को परास्त किया और उसका वध भी किया, इससे हूणों का मान बढ़ गया और छठी शती के अन्त में वे एक विशाल साम्राज्य पर राज्य करते थे जिसकी राजधानी बल्ख थी।

3.4 तोरमाण

भारत में हूणों के कार्यों के विषय में अधिक प्रामाणिक ज्ञान हमारे पास नहीं है। दो हूण राजाओं तोरमाण और मिहिरकुल के नाम सिक्के तथा अभिलेखों से ज्ञात है। उन्हें हूण समझा जाता है लेकिन इसका कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। 520 ईस्वी में गान्धार के हूण राजा के दरबार में चीनी दूत '**सोंण–युन**' ने अपने समय से दो पीढ़ी पहले हूणों द्वारा इस राज्य पर आक्रमण तथा अधिकार का उल्लेख किया है। उसने इस प्रदेश का यह विवरण दिया है – '**ये–थारू** ने इस देश का विनाश किया था और बाद में एक **टेगिन** या राजवंश के एक कुमार को राजा बना दिया, उसके बाद दो पीढ़ियाँ बीत गईं। इस राजा (या वंश) का स्वभाव अत्याचारी या प्रतिकारी था और वह बहुत अत्याचार करता था। वह बुद्ध के सिद्धान्तों में विश्वास नहीं रखता था किन्तु दानव पूजा उसे प्रिय था। केवल अपनी शक्ति पर निर्भर होकर उसने की–पिन (Ki-

Pin) या कश्मीर के राजा के साथ युद्ध किया उसके राज्य की सीमाओं के विषय में झगड़ा किया और तीन वर्ष तकवह उससे युद्ध कर चुका था। राजा के पास 100 युद्ध के हाथी थे। राजा निरन्तर अपनी सेनाओं के साथ सीमा पर रहता था और कभी अपने राज्य में वापस न आया।

एक यूनानी लेखक कॉस्मस (Cosmas) ने लगभग 547 ई0 में अपनी कृति 'क्रिसचियन टोपोग्राफी' में इस प्रकार लिखा – भारत के ऊपर, अर्थात उत्तर की ओर श्वेत हूण (White Hunas) रहते हैं। यह वर्णन मिलता है कि **गोल्लास** नामक एक शासक युद्ध में जाते समय अपने साथ दो हजार हाथी और बहुत बड़ी घुड़सवार सेना लेकर जाता है। वह भारत का स्वामी है और लोगों पर अत्याचार करके उनसे शुल्क लेता है। **फाइसन** नदी भारत के विभिन्न देशों को हूणों के देश से अलग करती है। वही लेखक बताता है कि **फाइसन** नदी सिन्धु है। पाँचवी शती के अन्त में या छठी शती के आरम्भ में तोरमाण पंजाब से बढ़ा और उसने पश्चिमी भारत के बहुत बड़े भाग को विजित किया। **एरण** भी उसके राज्य में था। तोरमाण के सिक्के उसके विदेशी उद्‌भव का प्रमाण देते हैं और वह सिद्ध करते हैं कि वह उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब और कश्मीर के भागों में राज्य करता था। संभवतः गांधार में राज्य करने वाले हूण परिवार से वह सम्बन्धित था। आठवीं शती की एक जैन कृति 'कुवलयमाला' में कहा गया है कि तोरमाण संसार का प्रभु था। चन्द्रभागा या चिनाब नदी के तट पर पवैया में वह रहता था। वह जैन मतानुयायी बन गया था।

तोरमाण के बारे में डॉ0 उपेन्द्र ठाकुर का मत है कि महान विजेता तोरमाण असंदिग्ध रूप से अत्यधिक कुशल शासक और चतुर राजनीतिज्ञ था जिसने हूणों की खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया उसने अपने पराक्रम, दूरदृष्टि, शान्त मस्तिष्क, राजनयिकता तथा आराधक व्यवहार के द्वारा मध्य एशिया से पाटलिपुत्र तक फैले विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। उसने चोल प्रशासकीय ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया तथा किसी को बेकार में परेशान नहीं किया। उसने धन्यविष्णु जैसे अधिकारियों को मोहित किया तथा प्रान्तीय प्रशासन की पुरानी प्रणाली तथा पुराने अधिकारी परिवारों तथा सामन्तों को बनाये रखा। उसकी इस दूरदर्शिता से नये विजित क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से सुविधा रही और उस युग के शासक परिवारों में कटुता उत्पन्न नही हुई। उसने इतने कम समय में उत्तरी भारत के पर्याप्त भाग को विजित किया कि उसके उदाहरण बहुत कम हैं। यह महान साहसिक एवं आश्चर्यजनक कार्य था जिससे अशोक तथा समुद्रगुप्त भी ईर्ष्या कर सकते थे। वह धार्मिक तथा प्रशासकीय मामलों में सहिष्णु रहा उसने अपने प्रशासन को स्थिर किया, सिक्के जारी किये तथा गुप्त साम्राज्य विघटन की गति को तीव्र किया। अब केवल साम्राज्य का शव ही शेष रह गया था जिसे शीघ्र ही राजनीतिक गिद्धों ने नोच डाला जो ऐसे अवसरों की सदा ही तलाश में रहते थे। तोरमाण का काल समाप्त हो गया किन्तु गुप्तों का वैभव कभी नहीं लौटा और अगली शताब्दी में इतिहास के मंच से वे पूर्णतः गायब हो गये। देश की राजनीतिक एकता इतनी बिगड़ गयी थी कि उसकी भरपाई नहीं हो सकी तथा 550 ईस्वी के बाद भारतीय इतिहास के राष्ट्रीय तथा सामान्य जीवन की साझी

कड़ी खो गई। यह सत्य है कि इस समय तक हूण राजनीतिक दृश्य से गायब हो गये थे लेकिन पुराना सामाजिक जीवन फिर नहीं आया।

3.5 मिहिरकुल

लगभग 515 ई0 में तोरमाण का पुत्र मिहिरकुल उसका उत्तराधिकारी बना। ह्वेनसाँग के अनुसार शासक मिहिरकुल की राजधानी ग्वालियर थी। वह यह भी बताता है कि मिहिरकुल ने इस नगर पर अपना अधिकार स्थापित किया और वह भारत पर राज्य करता था। उसने पड़ोस के सभी प्रदेशों को विजित किया। प्रारम्भ में बौद्ध धर्म में उसे रूचि थी किन्तु बाद में उसने आदेश जारी कर दिया कि पाँचो द्वीप समूहों में सभी भिक्षुओं को समाप्त कर दिया जाये, बुद्ध का नियम समाप्त कर दिया जाये और कुछ शेष न छोड़ा जाये।

राजतरंगिणी में मिहिरकुल को शक्तिशाली राजा कहा गया है जिसने गान्धार और कश्मीर पर राज्य किया और दक्षिणी भारत तथा लंका को विजित किया। मिहिरकुल को प्रचण्ड स्वभाव का व्यक्ति बताया गया है। उसके अत्याचार की लम्बी कहानियाँ बताई गई हैं।

प्रतीत होता है कि मिहिरकुल एक शक्तिशाली राजा था जिसने उत्तरी भारत के अधिकांश राज्यों पर चढ़ाई की। 530 ई0 के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसका प्रभुत्व ग्वालियर तक फैला हुआ था। सम्भवतः उसके आगे भी उसके प्रभुत्व को स्वीकार किया जाता था। कॉस्मस (Cosmas) ने हूण सरदार को भारत का स्वामी बताया है। किन्तु मिहिरकुल शीघ्र ही परास्त हो गया। मंदसौर अभिलेख में यशोधर्मन दावा करता है कि प्रसिद्ध शासक मिहिरकुल ने भी उसके चरणों में सम्मान अर्पित किया जिसका सिर (पहले) (भगवान) स्थाणु (शिव) के अतिरिक्त किसी के आगे नहीं झुका था और जिसके बाहुपाश में आकर बर्फ का पहाड़ (हिमालय) गलन ही अपने आपको अजेय दुर्ग समझ कर गर्व अनुभव करता है।

ह्वेनसाँग ने नरसिंह गुप्त बालादित्य सम्राट द्वारा मिहिरकुल की पराजय का वर्णन इन शब्दों में किया है : मगध नरेश बालादित्य राजा बुद्ध के नियम का अनन्य उपासक था। जब उसने मिहिरकुल के अत्याचारों तथा नृशंसता के समाचार सुने तो उसने राज्य की सीमाओं को पूर्णतः सुरक्षित कर लिया और शुल्क देने से इन्कार कर दिया। जब मिहिरकुल ने उसके राज्य पर आक्रमण किया तो बालादित्य ने अपनी सेना सहित एक द्वीप में आश्रय लिया। मिहिरकुल ने अपनी सेना का बड़ा भाग अपने छोटे भाई के अधीन छोड़ दिया, स्वयं किश्तियों पर सवार हुआ और अपनी सेना के कुछ भाग के साथ द्वीप में उतरा। किन्तु **तंण** दर्रे में बालादित्य के सैनिकों ने उसका पीछा किया और उसे बंदी बना लिया। बालादित्य ने मिहिरकुल का वध करने का निश्चय किया किन्तु अपनी माता के कहने पर उसे मुक्त कर दिया। वापस लौटकर मिहिरकुल को ज्ञात हुआ कि उसका भाई वापस लौट आया था और उसने सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। इसीलिये उसने कश्मीर में आश्रय की माँग की और उसे यहाँ आश्रय मिला भी। तब उसने वहाँ एक

विद्रोह करवाया और राजा का वध करके स्वयं कश्मीर के सिंहासन पर बैठ गया। उसने गान्धार के राजा का वध किया और राजवंश समाप्त किया स्तूपों तथा संधाराओं को नष्ट किया और देश की सम्पत्ति को लूटकर लौट गया किन्तु एक ही वर्ष में उसकी मृत्यु हो गई।

मिहिरकुल की मृत्यु की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। कुछ लेखकों के अनुसार उसका 540 ई0 में देहान्त हुआ। कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि उसकी मृत्यु के समय मेघगर्जना और बौछार हुई और घनघोर अन्धकार छा गया और पृथ्वी कम्पायमान हो गई और एक अचानक तूफान आया।

मिहिरकुल के धर्म के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। उसके सिक्कों पर शिव के नन्दी के चित्र हैं। सम्भवतः वह शिव का उपासक था। ग्वालियर अभिलेख में बताया गया है कि मिहिरकुल ने सूर्य का एक मंदिर बनवाया। सम्भवतः वह सूर्य का उपासक भी था। वह बौद्ध धर्मानुयायिओं के प्रति अत्यन्त नृशंस था।

उत्तर गुप्त वंशजों के अभिलेख में एक प्रसंग है कि **मौखरियों** के हाथी गर्व के साथ आगे बढ़ते गये जिन्होने हूणों की सेनाओं को कुचल दिया था। सम्भव है कि हूणों पर यह विजय मौखरि राजा ईशानवर्मा ने प्राप्त की हो। मौखरियों ने भी हूण शासकों की तरह सिक्के चलाये। उन्होने उन प्रदेशों पर भी राज्य किया जो पहले हूणों के अधिकार में थे।

प्रतीत होता है कि मिहिरकुल की पराजय से भारत से हूणों की प्रभुता समाप्त हो गई। उसके बाद वे भारतीय इतिहास में विप्लवकारी शक्ति न रहे। तुर्की तथा ईरानियों द्वारा 563 तथा 567 ई0 के बीच ऑक्सस के तटों पर हूणों की पराजय से भी भारत में उनका मान कम हो गया। छोटे–छोटे हूण सरदार पंजाब तथा उत्तर भारत में राज्य करते रहे। समय के साथ–साथ हूण भारतीय समाज में विलीन हो गये।

3.6 सारांश

हूणों के आक्रमण का भारतीय समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा। जाति प्रथा से बोझिल हिंदु समाज की जड़ें हिल उठी तथा उनके ढांचे में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कालान्तर में हूण, हिंदू समाज में घुल–मिल गए तथा उन्होने यहाँ के वंशों में वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिए थे। टाड ने तो इस मत का प्रतिपादन किया है कि भारतीय राजपूतों की उत्पत्ति हूणों से ही हुई।

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हूण कौन थे? उनकी उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये।

   .....

2. हूणों के आक्रमण से भारत पर हुए सामाजिक परिवर्तनों के बारे में विस्तार से लिखिये।

   .....

3. हूण साम्राज्य के शक्तिशाली शासकों का वर्णन कीजिये।

.....

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

भण्डारकर, आर.जी. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन

जायसवाल, के.पी. : हिन्दू पॉलिटी

मार्शल, सर जॉन : गाइड टू साँची

शास्त्री, के.ए. निकन्ता : ए कॉम्परीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

स्मिथ, वी.ए. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

विल्सन : थियेटर ऑफ द हिंदूज

इकाई 4– हर्षवर्धन एवं यशोवर्मन

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 पुष्यभूति वंश

2.3.3 हर्षवर्धन

2.3.4 हर्ष का शासन प्रबन्ध

2.3.5 हर्ष का मूल्यांकन

2.3.6 ह्वेनसांग का भारत विवरण

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 बोध प्रश्न

2.7 सन्दर्भ–ग्रन्थ

4.0 प्रस्तावना

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात उत्तर भारत में छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गए थे। प्रमुख राज्यों में परवर्ती गुप्त वंश, मौखरि वंश, मैत्रक वंश और पुष्यभूति वंश के वर्धन शासक सम्मिलित थे। यशोधर्मा ने कुछ समय के लिए मालवा में अपना शासन स्थापित कर लिया था। इन सभी शासकों की तुलना में पुष्यभूति वंश के शासक अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए। इस वंश के प्रारम्भिक शासक मौखरि शासकों के अधीन राज्य करते थे, परन्तु कालान्तर में उन्होंने अपने आप को स्वतंत्र घोषित कर लिया। बाणभट्ट के अनुसार पुष्यभूतिवंश का संस्थापक पुष्यभूति नामक राजा था। इस वंश के आरम्भिक शासकों के बारे में जानकारी का अभाव है। परन्तु प्रभाकरवर्धन से लेकर हर्षवर्धन तक के शासकों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई में प्राचीन भारत में शासन करने वाले पुष्यभूति वंश पर विस्तृत अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गयी है। इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे –

- पुष्यभूति वंश के बारे में जानकारी के साधन क्या है ?
- पुष्यभूति वंश के महत्वपूर्ण शासकों–प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन का भारत के प्राचीन इतिहास में महत्व एवं उनके योगदानों पर प्रकाश डाला गया है।

4.2 पुष्यभूति वंश / वर्धनवंश

छठीं शताब्दी ई0 के प्रारम्भ में पुष्यभूति अथवा पुष्पभूति नामक राजा ने इस वंश की स्थापना की थी, जिसके कारण इस वंश का नाम पुष्यभूति वंश पड़ा। परन्तु सम्राट हर्ष के मधुवन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों में उसकी वंशावली नरवर्धन से प्रारम्भ होती है। नरवर्धन ने यमुना की ऊपरी घाटी में एक छोटा सा राज्य स्थापित किया तथा थानेश्वर (आधुनिक हरियाणा राज्य के करनाल जिले का थानेसर नामक स्थान) को अपनी राजधानी बनाया। नरवर्धन की पत्नी का नाम वज्रिणी देवी ज्ञात होता है। नरवर्धन का पुत्र तथा उत्तराधिकारी राज्यवर्धन प्रथम था। राज्यवर्धन प्रथम का उत्तराधिकारी आदित्यवर्धन था, जिसका विवाह महासेनगुप्ता देवी के साथ सम्पन्न हुआ था, जो मालवा के उत्तर गुप्त शासक महासेनगुप्त की बहन थी। आदित्यवर्धन का उत्तराधिकारी प्रभाकर वर्धन हुआ। प्रभाकर वर्धन से पूर्व के तीनों शासक 'महाराज' की उपाधि धारण करते थे। जो उनकी सामन्त स्थिति की सूचना देती है। प्रभाकरवर्धन इस वंश का प्रथम ऐसा शासक था, जिसने इस वंश को सामन्त की स्थिति से स्वतंत्र स्थिति में पहुँचाया और 'महाराजाधिराज' जैसी सम्मानसूचक उपाधि धारण किया।

4.2.3 हर्षवर्धन

पुष्यभूति वंश के इतिहास में सम्राट हर्ष सबसे अधिक यशस्वी और प्रतापी शासक सिद्ध हुआ। सम्राट हर्ष का जन्म लगभग 591 ई0 में हुआ था। वह प्रभाकरवर्धन का छोटा पुत्र था। उसकी माता का नाम यशोमती था। सम्राट हर्ष के बचपन के दिन उसके ममेरे भाई भण्डि तथा मालव राज महासेनगुप्त के दोनों पुत्रों कुमारगुप्त और माधवगुप्त के साथ व्यतीत हुए। बड़े भाई राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात पर्याप्त विचार विमर्श के बाद दरबारियों एवं मत्रियों के समूह ने 606 ई0 में सम्राट हर्ष को वहाँ का राजा बनाया । मात्र 16 वर्ष की अल्पायु में वह सिंहासन पर बैठा । राजा बनते ही हर्ष के सामने सबसे महत्वपूर्ण चुनौती अपने बड़े भाई राज्यवर्धन की हत्या का बदला लेने की थी। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह एक विशाल सेना को लेकर कन्नौज की ओर आगे बढ़ा । अपने अभियान से पूर्व हर्ष ने अपने मंत्रियों के सन्मुख यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि कुछ ही दिनों में धनुष चलाने की चपलता के घमण्ड में भरे हुए समस्त उद्धत राजाओं के पैरों को बेडियों की झंकार से पूर्ण करके पृथ्वी को गौड़ों से रहित न बना दूँ तो घी से धधकती हुई आग में पतंगे की तरह अपने आप को जला डालूँगा।' साथ ही अपने अधीन राजाओं एवं सामन्तों को युद्ध के तैयार रहने का सन्देश भिजवाया ।

बाणभट्ट ने अपने ग्रंथ हर्षचरित में सम्राट हर्ष के विजय अभियानों का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ने सम्राट बनने के पश्चात छः वर्षों में ही भारत के पाँच प्रदेशों को विजित कर लिया। कुछ विद्धान ह्वेनसांग के इस कथन को विश्वसनीय नहीं मानते हैं। संभवतः अपने शासन काल के प्रारम्भिक छः वर्षो में हर्ष को अनेक युद्ध करने पड़े थे और ज्यादातर में उसने सफलता हासिल की थी । हर्ष ने अपना पहला अभियान गौड़ शासक शशांक के विरूद्ध किया । अभियान के मार्ग में उससे कामरूप के शासक भास्करवर्मा के एक दूत ने सम्पर्क किया और बताया कि उसके शासक भास्करवर्मा ने अपनी तरफ से एक सन्धि का प्रस्ताव रखा है। भास्कर वर्मा एवं शशांक परस्पर शत्रु थे, अतः हर्ष ने इसका लाभ उठाते हुए भास्करवर्मा से सन्धि कर ली। सन्धि के पश्चात सम्राट हर्ष को अपनी बहन राज्यश्री के विषय में सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ और वह उसे ढूढ़ने के लिए निकल पड़ा । राज्यश्री को जंगल से वापस लाने के पश्चात हर्ष ने बंगाल शासक शशांक पर आक्रमण किया । उसके इस कार्य में भास्करवर्मा ने भी उसकी सहायता की थी। शशांक के विरूद्ध किए गए अपने प्रारम्भिक अभियानों में हर्ष को विशेष सफलता नहीं मिली। विभिन्न स्रोतों से प्रमाणित होता है कि 637 ई0 तक बंगाल के अधिकांश भाग तथा उड़ीसा के भूभाग पर शशांक का शासन चलता रहा। परन्तु शशांक की मृत्यु के पश्चात हर्ष और भास्करवर्मा ने बंगाल पर पुनः आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। बंगाल पर अधिकार करने के पश्चात हर्ष ने मगध और उड़ीसा पर भी अपना अधिकार कर लिया । कन्नौज पर अधिकार कर लेने के पश्चात सम्राट हर्ष ने अपनी राजधानी थानेश्वर से कन्नौज को स्थानान्तरित कर दी।

पश्चिमी भारत में शासन करने वाले मालव, गुर्जर और गुजरात के शासक आरम्भ से ही पुष्यभूति वंश के शत्रु थे। अपने विजय अभियानों के क्रम में सम्राट हर्ष ने गुजरात के शासक ध्रुवसेन द्वितीय को पराजित किया परन्तु शीघ्र ही ध्रुवसेन ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। इतिहासकारों का मानना है कि ध्रुवसेन द्वितीय ने सम्राट हर्ष की पुत्री से विवाह कर लिया और उनके बीच की शत्रुता समाप्त हो गयी। इस प्रकार गुजरात (वल्लभी) के शासकों के साथ हर्ष के मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए।

हर्ष के साम्राज्य के दक्षिणी सीमा के पार चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय शासन कर रहा था। वह एक महत्वाकांक्षी शासक था। दोनों राज्यों की सीमाएं एक–दूसरे के साम्राज्य की सीमा को स्पर्श कर रही थीं। ऐसे में दोंनों महत्वकांक्षी शासकों के बीच संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। हर्ष एवं पुलकेशिन द्वितीय के बीच संघर्ष नर्मदा नदी के निकट किसी स्थान पर हुआ था। इस संघर्ष की तिथि को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद है। परन्तु डॉ0 अल्तेकर का मत अधिक मान्य है, जिसके अनुसार यह युद्ध 630–634 ई0 के मध्य किसी समय हुआ था। पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल लेख के अनुसार इस युद्ध में हर्ष की पराजय हुई थी । ऐहोल अभिलेख में इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार से किया गया है–'अपार ऐश्वर्य द्वारा पालित सामन्तों की मुकुट मणियों की आभा से आच्छादित हो रहे थे चरण कमल जिसके, युद्ध में हाथियों की सेना के मारे जाने के कारण , जो भयानक दिखाई दे रहा था । ऐसे हर्ष के आनन्द (हर्ष) को उसने (पुलकेशिन) भय से विगलित कर दिया'–

अपरिमितविभूति स्फीति सामन्तसेना,
मुकुटमणि मयूरवाक्रान्त पादारविन्दः।
युधिपतित गजेन्द्रानीक वीभत्सभूतो,
भय विगलित हर्षो येन चाकारि हर्षः।।

ऐहोल अभिलेख

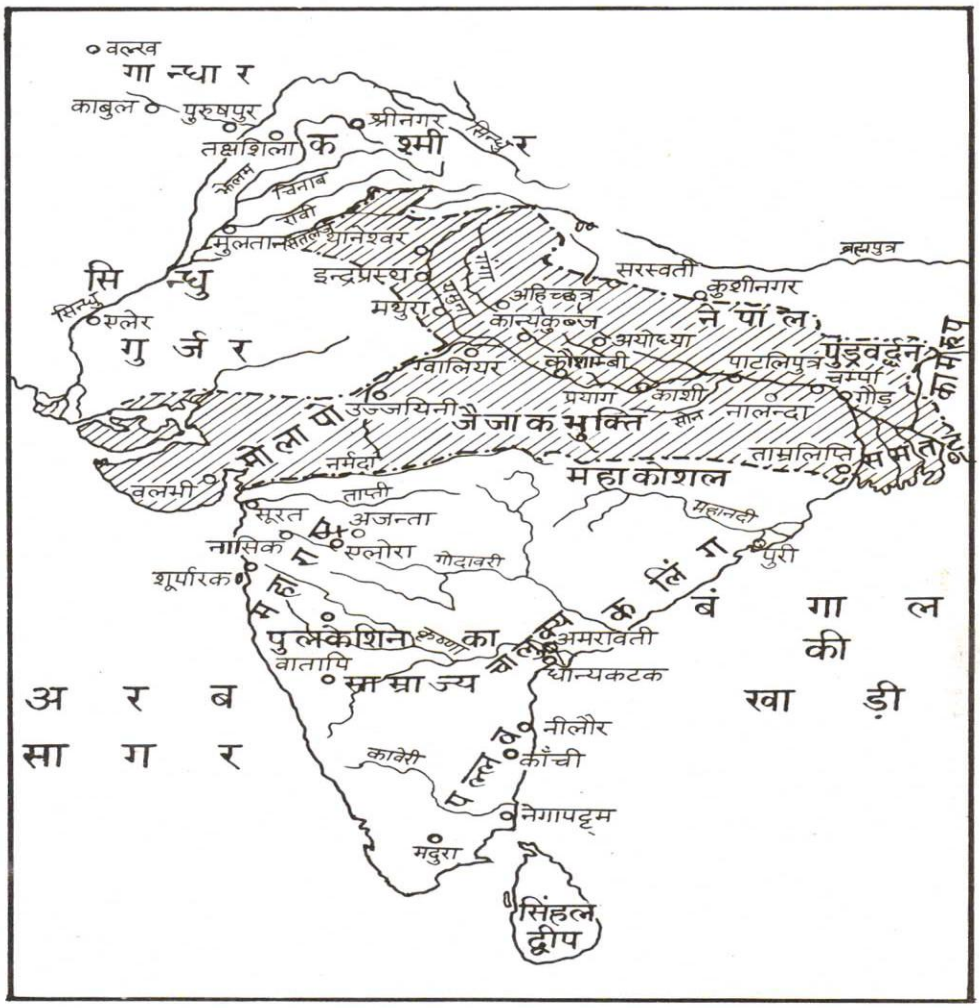

हर्ष का साम्राज्य विस्तार

सम्राट हर्ष का सिन्ध प्रदेश के राजा 'सिन्धुराज' के साथ भी युद्ध हुआ था। इसकी सूचना हमें बाणभट्ट के ग्रंथ 'हर्षचरित' से प्राप्त होती है, जिसके अनुसार हर्ष ने सिन्धुराज को युद्ध क्षेत्र में मर्दित करके उसकी राजलक्ष्मी को छीन लिया था। इससे स्पष्ट होता है कि सिन्धुराज पराजित तो हुआ था, परन्तु उसके राज्य पर अधिकार नहीं किया जा सका। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट हर्ष उससे भेंट, उपहार आदि प्राप्त कर सन्तुष्ट हो गया। सिन्ध, कश्मीर और नेपाल आदि प्रदेशों पर हर्ष अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सका। हालांकि इन क्षेत्रों पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य रहा होगा ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सम्राट हर्ष ने उत्तर भारत में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था। बाणभट्ट के हर्षचरित तथा हेएनसांग के विवरणों से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण उत्तर भारत उसके

साम्राज्य में सम्मिलित था। आर0 सी0 मजूमदार के अनुसार हर्ष के साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तर भारत के साथ ही पूर्वी पंजाब, गंगा–यमुना का दोआब, बिहार, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल तक के प्रदेश भी सम्मिलित थे।

4.2.4 हर्ष का शासन प्रबन्ध

हर्ष की शासन व्यवस्था परम्परागत प्राचीन शासकों की शासन व्यवस्था पर आधारित थी, जिसमें राजा शासन का प्रमुख होता था। राज्य की सभी शक्तियाँ राजा में निहित होती थी। इसके साथ ही राजा सेना का सबसे बड़ा सेनापति भी होता था। हर्ष ने 'परमभट्टारक' और 'महाराजाधिराज' जैसी उपाधियाँ धारण की थी। इस समय राजा की दैवीय उत्पत्ति में विश्वास किया जाता था। सम्राट हर्ष परिश्रमी तथा कुशल शासक था। वह अपनी प्रजा की भलाई को अपना कर्तव्य मानता था।

राज्य से सम्बंधित कार्यों में राजा की सहायता के लिए एक मंत्रिपरिषद होती थी, जो अत्यधिक प्रभावशाली थी। वह आन्तरिक और वाह्य मामलों दोनों में अपना सुझाव देती थी। मंत्रियों के अतिरिक्त राज्य में अनेक पदाधिकारी मौजूद थे। बाणभट्ट की पुस्तक 'हर्षचरित' में इन पदाधिकारियों की एक लम्बी सूची मिलती है। प्रत्येक विभाग में छोटे एवं बड़े अनेक अधिकारी होते थे। सैनिक अधिकारियों के अतिरिक्त एक पद 'कुमारामात्य' का होता था। हर्ष का सेनापति 'सिंहनाद' था और 'कुन्तल' घुड़सवार सेना का प्रमुख था। गजसेना का प्रमुख 'स्कन्दगुप्त' था। वाह्य मामलों के अधिकारी को 'महासन्धिविग्रहाधिकृत' और सन्देश वाहकों को 'दीर्गाध्वज' कहते थे। अवन्ति नामक अधिकारी युद्ध और सन्धि का प्रमुख होता था, जिसकी सलाह पर महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाते थे।

शासन संचालन की सुविधा के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण राज्य को अनेक छोटी इकाईयों जैसे–भुक्ति (प्रान्त) विषय (जिला) और गाँवों में बाँटा गया था। सम्राट हर्ष के समय में एक पद 'सामन्त–महाराज' या 'महासामन्त' का भी होता था । यह पद संभवतः उन शासकों के लिए प्रयोग में लाया गया, जो राजा के अधीनस्थ थे, किन्तु अपने आन्तरिक शासन में स्वतंत्र थे। भुक्ति का प्रमुख 'उपरिक', विषय (जिले) का प्रमुख 'विषयपति', गाँव का प्रमुख 'ग्रामिक', कागजों की देख–रेख करने वाला 'पुस्तपाल' और लेखक को 'कर्णिक' कहा जाता था। सभी विभागों का निरीक्षण करने वाला पदाधिकारी 'सर्वाध्यक्ष' कहलाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष के समय राज्य की इकाई और पदााधिकारी प्रायः गुप्त साम्राज्य की भाँति ही थे। हर्ष के समय में सभी बड़े प्रशासनिक अधिकारियों को वेतन के बदले जागीर के रूप में भूमि प्रदान की जाती थी। वेतन के बदले भूमि प्रदान किए जाने की इसी व्यवस्था के कारण हर्ष के शासन काल में सामन्तवादी प्रवृत्ति में वृद्धि हुई। ह्वेनसांग के विवरणों से ज्ञात होता है कि राज्य के मंत्रियों और बड़े अधिकारियों को उनका वेतन नगद न देकर उसके स्थान पर भूमि अथवा गाँव या नगर उनके नाम कर दिए जाते थे, जिनसे प्राप्त 'कर' उनकी आय होते थे। उसके अनुसार राजा की भूमि का 1/4 भाग बड़े अधिकारियों के लिए तथा अन्य 1/4 भाग राज्य के अन्य व्ययों और धार्मिक कार्यो पर खर्च के लिए सुरक्षित रखा जाता था।

राज्य की आय का प्रमुख साधन 'भू–राजस्व' था, जो पैदावार का 1/6 भाग होता था। यह राज्य के किसानों से अन्न के रूप में वसूला जाता था। इसके अतिरिक्त हिरण्य, बलि, चुंगी, बिक्री कर आदि अन्य कर थे। साथ ही भेंट–उपहार आदि से भी राज्य की आय होती थी। राज्य अपनी आय का अधिकांश भाग सेना एवं अन्य अधिकारियों के वेतन, राजा के महल तथा व्यक्तिगत खर्च, सार्वजनिक निर्माण कार्य तथा दान आदि पर व्यय करता था। सम्राट हर्ष ने अपने शासन के प्रत्येक पाँचवे वर्ष के उपरान्त प्रयागराज में धार्मिक उत्सव 'महामोक्षपरिषद्' का आयोजन करता था और इस अवसर पर वह अपने पाँच वर्षों में अर्जित की गयी सम्पूर्ण सम्पत्ति को दान कर देता था।

सम्राट हर्ष ने एक विशाल सेना तैयार कर रखी थी, जिसमें हाथी, घुड़सवार, रथ और पैदल सैनिक थे। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना की में 60,000 हाथी, 50,000 घुड़सवार और 1,00,000 पैदल सैनिक थे। ये चार प्रकार की सेना राज्य की सेना के मुख्य अंग थी। सेनापति हाथी पर बैठकर युद्ध करता था। घुड़सवार सेना का प्रमुख सेनापति 'वृहदश्वतार' और पैदल सेना के प्रमुख को 'बलाधिकृत' या 'महाबलाधिकृत' कहा जाता था। सम्पूर्ण सेना के सेनापति को 'महासेनापति' कहा जाता था। राज्य का सर्वोच्च सेनापति स्वयं राजा होता था।

सम्राट हर्ष के समय 'न्याय व्यवस्था' अत्यधिक कठोर थी। अपराधियों को उनके द्वारा किए गए अपराध के लिए जुर्माने के साथ ही उनके नाक, कान, हाथ, पैर आदि को भी काटने का दण्ड दिया जाता था। अपराध का पता लगाने के लिए यातना का सहारा भी लिया जाता था। दण्डव्यवस्था कठोर होने के बावजूद राज्य में अपराध होते रहते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग को मार्ग में कई बार लूटा गया था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि राज्य में चोरी–डकैती आम बात रही होगी तथा प्रमुख राजमार्ग भी सुरक्षित नहीं थे। हर्ष ने अपने पड़ोसी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया, साथ ही विदेशियों के साथ भी सम्बन्धों को बनाए रखा । हर्ष ने चीन के सम्राट के दरबार मे अपना राजदूत भेजा था तथा चीनी सम्राट ने भी 643 ई0 और 646 ई0 में अपने राजदूतों को भारत भेजा था।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हर्ष एक सफल शासक था। सम्राट हर्ष ने अपने राजकोष से अत्यधिक दान दिया, सार्वजनिक निर्माण कार्य किए तथा दण्ड व्यवस्था को कठोर बनाए रखा। परन्तु यदि उसके शासन व्यवस्था की तुलना मौर्य और गुप्तवंश से की जाए तो वह कमतर सिद्ध होती है। हर्ष अपने राज्य में गुप्तों के समान शांति व्यवस्था कायम न रख सका और न ही मौर्यों की भाँति लोक–कल्याणकारी कार्य कर सका । इन सब के बावजूद सम्राट हर्ष के समय शासन प्रशासन अच्छा था। तथा आम जनता सुखी एवं सम्पन्न थी।

4.2.5 हर्ष का मूल्यांकन

सम्राट हर्ष के दरबारी कवि बाणभट्ट और चीनी यात्री ह्वेनसांग ने हर्ष की प्रशंसा करते हुए उसे उत्तर भारत का महान शासक बताया है। कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने भी हर्ष की प्रशंसा में अनेक पंक्तियाँ लिखी है। उनके अनुसार 'हर्ष हिन्दू काल का अन्तिम महान साम्राज्य निर्माता था और उसकी मृत्यु के बाद उत्तर भारत की राजनैतिक एकता की पुनः स्थापना के सभी प्रयास समाप्त हो गए । परन्तु डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार जैसे विद्वानों ने तर्क पूर्ण ढ़ंग से ऐसे विचारों का खण्डन किया है, साथ ही वह लिखते हैं कि हर्ष एक महान शासक, एक साहसी सेनापति, ललित कलाओं और विद्वानों का संरक्षक, विशेष व्यक्तित्व का धनी और सद्भावना वाला व्यक्ति था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष एक साहसी और नीतिज्ञ शासक था। उसे उत्तराधिकार में केवल एक छोटा सा राज्य प्राप्त हुआ था। उसके राज्य सीमाएं सुरक्षित नहीं थी। ऐसी स्थिति में हर्ष ने अपने शत्रुओं को परास्त कर अपने राज्य की सीमा को सुरक्षित किया। उसने कन्नौज पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। हर्ष ने कामरूप के शासक भास्करवर्मा के साथ संधि करके गौड नरेश शशांक को वापस जाने के लिए बाध्य किया । उसने पश्चिम में वल्लभी (गुजरात) के शासक के साथ संघर्ष किया और उससे विवाह सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को मजबूत किया। इस प्रकार सम्राट हर्ष ने उत्तर भारत के एक विस्तृत भू–भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके अलावा हर्ष को अपने शासन काल में पराजय भी झेलनी पडी। इस कारण कुछ विद्वान हर्ष को एक कुशल सेनापति नहीं मानते हैं। परन्तु अपने समकालीन भारतीय सम्राटों में हर्ष को एक प्रभावशाली एवं सम्मानित व्यक्ति के रूप में याद किया जाता है।

सम्राट हर्ष एक विद्वान एवं सहिष्णु शासक था। हर्ष के राज्य में प्रजा सुखी एवं सम्पन्न थी । हर्ष अपने साम्राज्य में भ्रमण कर देख–रेख करता रहता था तथा प्रत्येक पाँचवे वर्ष प्रयाग में 'महामोक्षपरिषद्' का आयोजन कर अपनी संचित धन–सम्पदा का दान कर दिया करता था। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ने गाँवों और शहरों से होकर गुजरने वाले सभी राज मार्गों पर 'पुण्यशालाएं' बनवायी थी, जहाँ पर यात्रियों के मुफ्त ठहरने, खाने–पीने आदि की व्यवस्था रहती थी। बाणभट्ट ने हर्ष के लोकहितकारी कार्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। इससे हर्ष की योग्यता और उदारता दोनों पर प्रकाश पडता है। हर्ष स्वयं विद्वान था और उसने तीन नाटक ग्रंथों की रचना भी की है। उसने चीनीयात्री ह्वेनसांग को अपने दरबार में सम्मान दिया था। हर्ष धार्मिक दृष्टि से भी सहिष्णु था। प्रारम्भ में वह शिव का उपासक था। उसके मधुबन और बाँसखेडा के अभिलेखों में उसे 'परममहेश्वर' कहा गयाहै। संभवतः ऐसा माना जाता है कि ह्वेनसांग के प्रभाव से वह बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया। उसके बौद्ध धर्म में झुकाव के कारण बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय को एक

नवीन जीवन मिला। हर्ष के संरक्षण को ही प्राप्त करके नालन्दा विश्वविद्यालय बौद्व धर्म की शिक्षा के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में विख्यात हो सका।

इस प्रकार हर्ष एक योग्य एवं कुशल शासक था। उसे प्राचीन भारत के महान शासकों के बीच सम्मान जनक स्थान प्रदान किया जाता है। हर्ष ने अनेक सफलताएं अर्जित की, जिससे भारत में उसका एक स्थायी और महान शासन स्थापित हो सका। वह एक सद्चरित्र, उदार, सहिष्णु और महान दानी शासक था। परन्तु वह गुप्त शासकों की भाँति भावनात्मक और व्यावहारिक एकता स्थापित करने में सफल न हो सका, जिस कारण उसका साम्राज्य चिरस्थायी न हो सका और उसका साम्राज्य उसकी मृत्यु के पश्चात समाप्त हो गया।

4.2.6 ह्वेनसांग का भारत विवरण

चीनी यात्री ह्वेनसांग 629 ई0 में सम्राट हर्ष के समय भारत देश की यात्रा पर आया। ह्वेनसांग ने अपनी भारत यात्रा का वर्णन अपनी पुस्तक 'सी– यू– की' (पश्चिमी संसार का विवरण) में किया है, जिससे हर्ष कालीन समाज एवं शासन व्यवस्था की पर्याप्त जानकारी मिलती है। ह्वेनसांग की भारत यात्रा का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करना था। 629 ई0 में वह चीन से गोबी के रेगिस्तान को पार करके मध्य एशिया में काशगर, समरकन्द और बल्ख होता हुआ अफगानिस्तान पहुँचा। उसके रास्ते में बहुत बड़ी संख्या में बौद्ध धर्मावलम्बी, बौद्ध मठ और स्तूप मिले । वह लगभग 14 वर्षो तक भारत में रहा। तक्षशिला से वह कश्मीर गया, कश्मीर से पंजाब, मथुरा,कन्नौज, श्रावस्ती, अयोध्या, कपिलवस्तु,कुशीनगर, सारनाथ, वैशाली, पाटलिपुत्र , राजगृह, बोधगया और नालन्दा गया। वह पाँच वर्ष तक नालन्दा विश्वविद्यालय में भी रहा । यहाँ के कुलपति आचार्य शीलभद्र थे । नालन्दा में उसने योगशास्त्र का अध्ययन किया । तत्पश्चात वह बंगाल, उडीसा, धान्यकटक होता हुआ दक्षिण भारत में पल्लवों की राजधानी काँचीवरम् तक गया और वहाँ से पुनः उत्तर की ओर लौट पड़ा । ह्वेनसांग ने कामरूप के शासक भास्कर वर्मा का आतिथ्य भी स्वीकार किया । इसके बाद उसकी मुलाकात सम्राट हर्ष से होती है। हर्ष ने अपनी राजधानी कन्नौज में एक धार्मिक सभा का आयोजन कर ह्वेनसांग को उसका अध्यक्ष बनाया। उसके बाद प्रयाग में आयोजित धार्मिक सभा में भी उसने भाग लिया। ह्वेनसांग भारत भ्रमण कर लगभग 644 ई0 में भारत से वापस चला गया। ह्वेनसांग भारत से बुद्ध की विभिन्न मूर्तियाँ, स्मारक–चिह्न और बौद्ध ग्रंथों की अनेक प्रतिलिपियाँ अपने साथ ले गया।

ह्वेनसांग अपने यात्रा विवरण में भारतीय नगरों का वर्णन करते हुए लिखता है कि नगरों में सभी प्रकार के मकान हैं, जिनकों निर्मित करने में लकड़ी, चूना, ईट और गोबर–मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। निकृष्ठ कार्य करने वाले लोग नगर के बाहर रहते थे। पुराने नगरों का स्थान नवीन नगरों ने ले लिया है। प्राचीन पाटलिपुत्र का स्थान कन्नौज ने ले लिया है, इसके साथ ही प्रयाग एक अन्य महत्वपूर्ण नगर बन

गया है। ह्वेनसांग ने कन्नौज नगर की अति प्रशंसा की हैं और इसे एक सुन्दर नगर बताया है। नगरों में रहने में रहने वाले नागरिकों के बारे में उसने लिखा है कि वे शिक्षा, साहित्य और ललित कलाओं के प्रेमी हैं। भारतीय शिक्षा मौखिक पद्धति पर दी जाती थी, जो धार्मिक होती थी। इस समय संस्कृत भाषा में अनेक ग्रंथ लिखे गए। नालन्दा विश्वविद्यालय तत्कालीन भारत का एक महत्वपूर्ण बौद्ध शिक्षा केन्द्र था।

ह्वेनसांग ने सम्राट हर्ष तथ उसके शासन की अत्यधिक प्रशंसा किया है। उसने हर्ष को अधिक परिश्रमी शासक बताया है। उसके अनुसार हर्ष समय समय पर अपने राज्य का भ्रमण करके प्रजा की भलाई का समाचार प्राप्त करता था । वह अपनी आय का 2/3 भाग धन धार्मिक कार्यों पर खर्च करता था। हर्ष के शासन में विद्रोह बहुत कम होते थे, फिर भी अपराध करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। मृत्यु दण्ड तथा देश निष्कासन की भी सजा दी जाती थी। प्रजा से अधिक कर नहीं वसूला जाता था। शासन प्रशासन के प्रत्येक कार्य का विवरण लिखित में रखा जाता था। राज्य की आय का प्रमुख साधन भू–राजस्व था, जो उपज का 1/6 भाग होता था। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना में 60,000 हाथी, 1,00,000 घुड़सवार और 50,000 पैदल सैनिक थे। हर्ष को उसने बौद्ध धर्म का कट्टर समर्थक कहा है। ह्वेनसांग ने यहां की तत्कालीन सामाजिक दशा का विस्तृत वर्णन किया है। इसके अनुसार जाति व्यवस्था कठोर हो गयी थी। स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। उनमें पर्दा प्रथा का अभाव था। समाज में सतीप्रथा प्रचलित थी। आम जन का जीवन सादा तथा सरल था । प्रायः लोग सात्विक भोजन किया करते थे।

ह्वेनसांग ने भारत की आर्थिक दशा का भी वर्णन किया है, उसने अपने विवरण मे अनेक फसलों की सूची दी है। भारत में अच्छे से अच्छा रेशमी सूती एवं ऊनी वस्त्र बनाया जाता था। आभूषणों के अन्तर्गत मोती, माणिक और हीरों का प्रयोग किया जाता था। भारत के पूर्वी और पश्चिमी तट पर अनेक बन्दरगाह थे, जिनसे यहाँ का विदेशी व्यापार सम्पन्न होता था। यहाँसे विदेशों में कपड़ा, चन्दन, जडी, बूटी, गर्म मसाले, मोती, और हाथीदाँत की बनी हुई वस्तुओं का निर्यात किया जाता था तथा विदेशों से सोना, चाँदी, हींग, और घोडों का आयात किया जाता था। अतः स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में भारत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था।

ह्वेनसांग ने भारत की धार्मिक मान्यताओं का भी वर्णन किया है उसके अनुसार भारत में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन तीनों धर्म लोकप्रिय हैं। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन कर सकता था। उसके द्वारा किए गए नगरों के वर्णन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म पतन की ओर अग्रसर था और ब्राह्मण धर्म प्रगति के पथ पर था। हर्ष द्वारा कन्नौज और प्रयाग में आयोजित धर्म सभाओं का वर्णन ह्वेनसांग ने अपनी पुस्तक 'सी–यू–की' में किया है।

इस प्रकार ह्वेनसांग के विवरण से भारत की राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक–सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। तत्कालीन भारत का इतना विस्तृत वर्णन किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं होता है। इस कारण से ह्वेनसांग का विवरण अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

4.4 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष के साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तर भारत का क्षेत्र सम्मिलित था। उसका साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पश्चिम में सुराष्ट्र तथा काठियावाड़ (गुजरात) से पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक विस्तृत था। चालुक्यों के अभिलेखों में उसे 'सकलोत्तरपथनाथ' कहा गया है। हर्ष का प्रभाव उसके राज्य क्षेत्र से अधिक विस्तृत था। विदेशों के साथ भी उसने मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। हर्ष ने अपनी मृत्युपर्यंत 647 ई0 तक शासन किया। चूँकि हर्ष का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण उत्तर भारत में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण एवं विभाजन की शक्तियाँ पुनः सक्रिय हो गयीं। उसकी राजधानी कन्नौज पर अर्जुन नामक एक स्थानीय शासक ने अधिकार कर लिया। कामरूप में भास्करवर्मा ने कर्णसुवर्ण तथा उसके आस–पास के क्षेत्रों को जीतकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। मगध पर हर्ष के सामन्त माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अधिकार कर लिया । भारत के पश्चिमी तथा उत्तर–पश्चिमी भाग पर अनेक स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हो गयी । सामान्यतः हर्ष की मृत्यु के पश्चात का समय उत्तर भारत में पारस्परिक संघर्ष का काल था। कन्नौज राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दू बन गया, जिस पर अधिकार करने के लिए तीन प्रमुख शक्तियों के बीच आपसी संघर्ष प्रारम्भ हो गया, जिसे त्रिपक्षीय संघर्ष के नाम से जाना जाता है।

4.5 शब्दावली

महोदयश्री :सम्राट हर्ष की राजधानी कन्नौज को तत्कालीन समय में एक अन्य नाम 'महोदयश्री' के नाम से भी जाना जाता था। अर्थात वर्तमान कन्नौज को प्राचीन काल में 'महोदयश्री' कहा जाता था।

सकलोत्तरपथनाथ : इसका आशय सम्पूर्ण उत्तर का स्वामी होता है । इस शब्द का प्रयोग चालुक्य लेखों में सम्राट हर्ष के लिए किया गया है। इसे हर्ष की एक उपाधि के रूप में जाना जा सकता है।

4.6 बोध प्रश्न

1. सम्राट हर्ष के प्रारम्भिक जीवन एवं उसकी सैनिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
2. हर्ष प्राचीन भारत का अन्तिम साम्राज्य निर्माता था। इस कथन के आलोक में हर्ष का मूल्यांकन कीजिए?
3. ह्वेनसांग कौन था? उसके भारत सम्बन्धी विवरण पर प्रकाश डलिए?

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास*, सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयागराज।
- पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर.एन., *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास*, इण्डिया बुक एजेंसी, प्रयागराज।

- श्रीवास्तव, के.सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाईटेड बुक डिपो, प्रयागराज।
- सिंह, उपिन्दर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा .लि. नई दिल्ली।

इकाई–5–राजपूतों की उत्पत्ति

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 राजपूतों की उत्पत्ति का इतिहास

- 5.2.1 प्राचीन क्षत्रिय सिद्धान्त
- 5.2.2 अग्निकुंड की उत्पत्ति का सिद्धान्त
- 5.2.3 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त

5.3 राजपूतों के राज्य का स्वरूप

5.4सैनिक प्रशासन

5.5 राज्य की आय के साधन

5.6 न्याय व्यवस्था

5.7 सामाजिक जीवन

5.8 कला

5.9 साहित्य

5.10 सारांश

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.12 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 प्रस्तावना

हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् भारतीय इतिहास के रंगमंच पर कई छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ। यह प्राचीन भारतीय इतिहास के गौरव के अवसान का युग था। भारतीय इतिहास के प्राचीन युग के अवसान और पूर्व मध्ययुग के आगमन का सन्धि काल 'राजपूत युग' के नाम से प्रसिद्ध है। राजपूत उन राजकुलों, राजवंशों एवं पराक्रमी सेनानियों का सामूहिक नाम है जो अपने शस्त्र बल पौरुष और पराक्रम के लिए इतिहास में सुविख्यात हैं। सम्राट् हर्ष की मृत्यु के बाद भारतवर्ष में जिन छोटे–बड़े अनेक राज्यों का उदय हुआ था। उन राज्यों की स्थापना और अधिपत्य के मुख्य सूत्रधार राजपूत थे। किन्तु यह इतिहास की विडम्बना है कि जिन राजपूतों के राजकुलों ने भारतीय इतिहास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, उनका उत्पत्ति का प्रश्न आज भी विवादित ही कहा जायेगा। राजपूत शब्द संस्कृत भाषा के राजपुत्र शब्द से निकला है। 'राजपुत्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है 'राजा का पुत्र'। 'हर्ष चरित्र' और पुराणों में इसी अर्थ में 'राजपूत' शब्द का प्रयोग हुआ है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको राजपूतों की उत्पत्ति के इतिहास से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

5.2 राजपूतों की उत्पत्ति का इतिहास

राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में इतिहासकारों ने अपने–अपने विचार प्रतिपादित किए हैं। राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में मुख्यतया तीन परस्पर विरोधी मान्यताएँ प्रचलित हैं। ये मान्यताएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं–1. प्राचीन क्षत्रिय सिद्धान्त, 2. अग्निकुड की उत्पत्ति का सिद्धान्त तथा 3. विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त।

15.2.1 प्राचीन क्षत्रिय सिद्धान्त

जहाँ तक कि प्राचीन क्षत्रिय सिद्धान्त का प्रश्न है, इस सिद्धान्त के अनुसार राजपूत प्राचीन क्षत्रियों के वंशज है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा, सी.वी. वैद्य तथा उनकी परम्परा के कई अन्य विद्वान हैं। इन विद्वानों ने प्राचीन अनुश्रुतियों, अभिलेखों तथा साहित्यिक स्रोतों के आधार पर यह स्थापित किया है कि राजपूत प्राचीन क्षत्रियों के वंशज हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा मेवाड़ के सिसोदिया और चालुक्य को श्रीराम का वंशज बताया है। भोज ग्वालियर अभिलेख तथा बाउक जोधपुर अभिलेख में प्रतिहारों ने अपने को प्रभु श्री राम के भाई लक्ष्मण की संतान बताया है। एक अनुश्रुति के अनुसार हारीत के कमण्डल से चालुक्य की उत्पत्ति हुई थी। प्रतिहार सम्राटों ने अपने को इक्ष्वाकु अथवा सूर्यवंशीय क्षत्रिय कहा है। 'हम्मीर महाकाव्य' के अनुसार,चाहमान अथवा चौहान राजपूत सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। 'पृथ्वी राज रासों' में जिन छत्तीस राजवंशों का उल्लेख किया गया है, उनमें से सभी सूर्य, चन्द्र अथवा यदुवंशी बतलाए गए हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त आधारों पर राजपूतों को प्राचीन क्षत्रियों का वंशज बताया है जिनका मुख्य कार्य–व्यवसाय शासन और सुरक्षा थी।

5.2.2 अग्निकुंड की उत्पत्ति का सिद्धान्त

राजपूतों की उत्पत्ति का दूसरा सिद्धान्त, उनकी उत्पत्ति में अग्निकुण्ड से उत्पत्ति के विचार का प्रतिपादन करता है। अग्निकुण्ड सिद्धान्त का प्रतिपादन पृथ्वीराज रासों में मिलता है। 'पृथ्वी राजरासो' में कहा गया है कि जब पृथ्वी पर म्लेच्छों के अत्याचारों में ऐसी वृद्धि हो गई कि वे असहाय हो गए तब इन अत्याचारियों का दमन करने के लिए महर्षि वशिष्ठ ने आबू पर्वत पर एक अग्निकुण्ड का निर्माण करके यज्ञ किया। इस अग्निकुण्ड में चार योद्धा अर्थात् परमार, चाहमान, चालुक्य और प्रतिहार निकले। भारत के राजपूत इन्हीं चारों की सन्तान हैं। चूंकि इन चारों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई। अतएव इन्हें अग्निवंशीय कहा गया। किन्तु अधिकांश इतिहासकार इस सिद्धांत को कल्पना पर आधारित मानते हैं।

5.2.3 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त

अनेक विद्वानों के अनुसार राजपूतों की उत्पत्ति विदेशियों तथा अनार्यों सेहुई। इस वर्ग में आने वाले विद्वानों में कर्नल टाड, विलियम कुक, स्मिथ तथाभारतीय इतिहासकार भण्डारकर हैं। राजस्थान के इतिहास 'एनल्स एण्ड एण्टीक्विरीजऑफ राजस्थान' के प्रसिद्ध प्रणेता कर्नल टाड के अनुसार, राजपूत मध्य एशियाकी शक अथवा सीथियन जाति की संतान है। उनकी इस मान्यता का आधारशकों तथा राजपूतों के रीति–रिवाज में समानाएँ हैं। कर्नल टाड के मत कासमर्थन करते हुए स्मिथ महोदय ने लिखा है कि मुझे इस बात में कोई सन्देहनहीं है कि शकों तथा कुषाणों के राजवंश, हिन्दू धर्म स्वीकार करने के बादजाति व्यवस्था में क्षत्रियों के रूप में सम्मिलित कर लिए गए।' स्मिथ महोदयने कतिपय राजपूत वंशों को अनार्यों की भी सन्तान माना है। उनका कहना हैकि विदेशियों की भाँति दक्षिण की अनेक अनार्य जातियाँ राठौर, चन्देल तथागहड़वाल आदि राजपूत वंश इन्हीं भारतीयकृत अनार्य जातियों की सन्तान हैं।विलियम कुक भी राजपूतों को विदेशियों की सन्तान मानते हैं। डॉ. भण्डारकरके अनुसार भी राजपूत विदेशियों की सन्तान हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ.ईश्वरी प्रसाद राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति में विश्वास करते हैं किन्तु डॉ. ईश्वरीप्रसाद क्षत्रियों को निम्न वंश में उत्पन्न नहीं मानते। किन्तु सी.वी. वैद्य तथागौरीशंकर हीराचन्द ओझा तथा कतिपय अन्य विद्वानों ने इस मत का खण्डनकिया है। डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार, डॉ. हरीराम तथा डॉ. दशरथ शर्मा ने राजपूतोंकी विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हुए यह स्थापित किया हैकि अधिकांश राजपूत परिवार प्राचीन क्षत्रियों या ब्राह्मणों की सन्तान हैं। इसप्रसंग में डॉ. मजूमदार के अनुसार मेवाड़ के गहलौत राजपूत वंश का संस्थापकरावल ब्राह्मण था। इसी प्रकार गुर्जर प्रतिहार राजकुल संस्थापक हरीसेन ब्राह्मणथा जिसकी एक पत्नी ब्राह्मण थी और दूसरी क्षत्रिय। डॉ. दशरथ शर्मा ने अपनीपुस्तक 'अर्ली चौहान डायनेस्टीज' में डॉ. मजूमदार के विचारों का समर्थन कियातथा प्राचीन मुद्राओं और अभिलेखों के आधार पर टाड और स्मिथ जैसे विद्वानोंकी मान्यताओं को असंगत बताया है। इस प्रकार राजपूतों के विदेशी

मूल कासिद्धान्त प्रमाणित नहीं माना गया है। अधिकांश विद्वानों की यह धारणा है किराजपूत मूलतया भारतीय है, हाँ उनमें कुछ वे ऐसे लोग भी आत्मसात हो गएजो मूलतया विदेशी थे किन्तु जिन्होंने भारत और भारतीयता को अंगीकार करलिया था।

5.3 राजपूतों के राज्य का स्वरूप

शासन का स्वरूप–राजपूत राज्य सामन्तवादी प्रथा पर आधारित थे। राजपूत राज्य कई जागीरों में बँटा हुआ था और ये जागीरदार या तो राजवंश के ही कुमार होते थे अथवा आसपास के राज्यों से राजा की सेवा में आये हुए वीर सैनिक होते थे। ये सामन्त राजा के प्रति व्यक्तिगत श्रद्धा से जुड़े होते थे। संकट के समय ये राजा की सेना की सहायता करते थे और अपना सब कुछ राजा पर अर्पित करने को तैयार रहते थे।

राजा को सामन्त नियमित रूप से वार्षिक कर देते थे। प्रत्येक उत्सव के समय ये राज दरबार में उपस्थित होकर राजा को नजराना देते थे। अनुपस्थित होने पर इन्हें विद्रोही समझकर इनकी जागीरें तक जब्त की जा सकती थीं। राजद्रोह, युद्ध से पलायन अथवा अत्याचारी शासन–प्रबन्ध के कारण भी राजा जागीर जब्त कर सकता था। ये सामन्त राजा की शक्ति का प्रमुख स्रोत थे और राज्य में शांति–व्यवस्था बनाये रखने में राजा को सहयोग देते थे। अपनी जागीर में इन सामन्तों को प्रायः स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त थे। ये न्याय भी करते थे। राजा के यहाँ इनके विरुद्ध फरियाद सुनी जा सकती थी।निरंकुश राजतन्त्र राजपूत राज्यों में प्रचलित था। राजा को असीमित अधिकार प्राप्त थे। वह अपने राज्य का सर्वोच्च अधिकारी प्रमुख सेनापति और मुख्य न्यायाधीश था। सभी पदों पर नियुक्तियाँ राजा द्वारा होती थीं। राजा को प्रशासन में परामर्श देने के लिए मन्त्रिपरिषद् होती थी, परन्तु राजा मन्त्रिपरिषद् के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं था। निरंकुश होते हुए भी राजा प्रजा की रक्षा तथा जनकल्याण को अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते थे।

5.4 सैनिक प्रशासन

सैनिक संगठन भी राजपूत राज्यों का दोषपूर्ण था। राजाकी व्यक्तिगत सेना कम होती थी। राजा की शक्ति सामन्तों की संयुक्त सेना पर ही निर्भर थी। दूसरे देशों में प्रचलित युद्ध के तरीकों से राजपूत राजा अनभिज्ञ थे। युद्ध क्षेत्र में वे आदर्शों और नैतिकता पर जोर देते थे, जैसे धर्मयुद्ध करना, आन पर मिट जाना, भागे हुए पर पीछे से वार न करना, शरणागत की रक्षा करना इत्यादि।

पैदल, घुड़सवार और हाथी राजपूत सेना में होते थे। घुड़सवार सैनिकों की संख्या कम थी और उनके घोड़े तुर्क आक्रमणकारियों की अपेक्षा घटिया किस्मके होते थे। हाथियों की संख्या सेना में अधिक होती थी और जब तुर्क सैनिक हाथियों की आँखों को अपने तीरों का निशाना बनाते थे, तो ये हाथी घाव लगने पर अपनी सेना की ओर ही दौड़ते थे। राजपूत युद्ध प्रणाली दोषपूर्ण थी। राज्य की सेना में अधिकतर संख्या सामन्तों द्वारा प्रदत्त सैनिक दस्तों की रहती थी, अतः उनमें एकता की भावना का अभाव था।

युद्ध करना राजपूत अपना महान् कर्तव्य समझते थे। वे आपस में ही घोर युद्धों में व्यस्त रहते थे और कभी–कभी इन युद्धों के परिणाम भयंकर होते थे। राजपूतों में राष्ट्रीय चेतना तथा राजनैतिक जागरण का अभाव था और इसी कारण वे विदेशी आक्रमणकारियों का मुकाबला संयुक्त रूप से न कर सके।

5.5 राज्य की आय के साधन

भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। विभिन्न राज्यों में भूमिकर की दरें विभिन्न थीं। राजपूत काल में राजदरबार, महल और निरन्तर युद्धों पर बढ़ते हुए खर्च की पूर्ति के लिए भूमिकर में भी वृद्धि करनी आवश्यक हो गई। भूमिकर उपज का 1/6 भाग से 1/3 भाग तक लिया जाता था। बिक्री कर और व्यवसाय कर भी लिया जाता था। राज्य को उद्योग–धन्धों और व्यापार से भी आय होती थी सामन्तों से प्राप्त वार्षिक कर, उपहार और आर्थिक दण्ड राज्य की आय के अन्य साधन थे। राज्य की आय का अधिकांश भाग युद्धों, सेना के रखरखाव, राजमहल और दान पर खर्च होता था। किलों और मंदिरों के निर्माण पर भी राजपूत राजा खर्च करते थे।

5.6 न्याय–व्यवस्था

दण्ड–विधान कठोर था। न्याय धर्मशास्त्रों और परम्पराओं के अनुसार किया जाता था। राज्य में सरकारी अदालतों का जाल बिछा रहता था जहाँ न्यायाधीश न्याय करते थे। प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों का न्याय करते समय सहारा लिया जाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम पंचायत ग्रामों में होती थीं जो दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमों का फैसला करती थीं। पंचायत से सन्तुष्ट न होने पर ऊपर की अदालत में अपील की जा सकती थी। यहाँ भी न्याय न मिलने पर प्रजा राजा के पास अपनी फरियाद कर सकती थी। मुकदमों के रिकार्डस नहीं रखे जाते थे और न्याय मुख्य रूप से मौखिक होता था। आजकल के मुकाबले न्याय जल्दी मिलता था और निर्णय खुले आम सुनाया जाता था। चोरी, डकैती और हत्या के मामलों में स्थानीय उत्तरदायित्व पर जोर दिया जाता था। जिस गाँव में चोरी होती थी या लूटमार होती थी, वहाँ के निवासियों से सामूहिक रूप से हरजाना वसूल किया जाता था। चोरी और डकैती की घटनाएँ कम होती थीं। न्यायालय द्वारा घोषित अपराधियों को कारावास, राज्य से निष्कासन, आर्थिक जुर्माना, शारीरिक यातना जिसमें अंग–भंग भी था और मृत्यु दण्ड की सजाएँ दी जाती थीं।

5.7सामाजिक जीवन

कई जातियों और उपजातियों में समाज विभाजित था। समाज में ब्राह्मणों का ऊँचा स्थान था। वे राजपूत राजाओं के पुरोहित और मंत्री होते थे। उन्हें विशेषअधिकार और सुविधाएँ प्राप्त थीं, जैसे प्राणदण्ड ब्राह्मणो को नहीं दिया जाता था। वे अपना समय अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ और धार्मिक संस्कारों में बिताते थे। रक्षा का भार क्षत्रियों पर होता था और वे शासक और सैनिक होते थे। व्यापार वैश्य करते थे। शूद्र अन्य जातियों की सेवा का कार्य करते थे। जाति–बन्धन कठोर होने के कारण समाज का विकास अवरुद्ध हो गया था। विचारों में संकीर्णता और रूढ़िवादिता आ गई थी। रूढ़िवादी प्रवृत्तियों से ग्रस्त हो जाने के

कारण हिन्दू समाज की गतिशीलता समाप्त हो चुकी थी, फलतः अब वह विदेशियों को अपने में आत्मसात् नहीं कर सका।

प्रसिद्ध विद्वान् अलबेरूनी को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि 'हिन्दू लोग यह नहीं चाहते थे कि जो एक बार अपवित्र हो चुका है, उसे पुनः शुद्ध करके अपना लिया जाय। उनका विश्वास था कि एक देश, धर्म और जाति के रूप में वे ही श्रेष्ठतम थे। अलबेरूनी कहता है. 'हिन्दू विश्वास करते हैं कि उनके जैसा कोई देश नहीं, उनके जैसा कोई राष्ट्र नहीं, उनके राजाओं के समान कोई राजा नहीं, उनके जैसा कोई धर्म नहीं, उनके जैसा शास्त्र नहीं–उनके पूर्वज वर्तमान पीढ़ी के समान संकुचित मनोवृत्ति वाले नहीं थे।'

नारी का समाज में सम्मान होता था। पर्दे की प्रथा नहीं थी। राजपूतों की नारियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी और वे अपने पति का वरण स्वयं कर सकती थीं। 'स्वयंवर' प्रथा का प्रचलन था। उच्च परिवारों की नारियाँ साहित्य और दर्शन का अच्छा ज्ञान रखती थीं। राजपूतों में सती प्रथा भी प्रचलित थी। जौहर की प्रथा भी थी। जौहर एक प्रकार से सामूहिक आत्महत्या की पद्धति थी जिसमें राजपूत नारियाँ विजयी शत्रुओं द्वारा अपवित्र होने के बजाय स्वयं को अग्नि की भेंट कर देती थीं।

विवाह सवर्ण और सजातीय होते थे। अन्तर्जातीय विवाह भी कभी–कभी होते थे। विधवा–विवाह आमतौर पर निम्न जातियों में प्रचलित था। विधवाओं को कठोर जीवन व्यतीत करना पड़ता था। कन्या का जन्म राजपूतों में अशुभ माना जाता था क्योंकि कन्या के विवाह के समय पिता को झुकना पड़ता था। कई बार कन्याओं का जन्म के समय ही वध कर दिया जाता था।

शुद्ध शाकाहारी भोजन अच्छा समझा जाता था। शराब और अफीम का भी राजपूतों में प्रचलन था। चावल, दाल, गेहूँ, दूध, दही, सब्जी तथा मिष्ठान लोगों का प्रमुख भोजन था। गरीब लोग मक्का, ज्वार, बाजरा का प्रयोग करते थे। रेशमी, ऊनी और सूती तीनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग होता था।

संगीत, नृत्य, नाटक, चौपड़, आखेट और शतरंज मनोविनोद के साधन थे। आभूषणों का आम प्रचलन था। आभूषण स्त्रियाँ और पुरुष दोनों पहनते थे।

5.8 कला

राजपूत राजा महान् निर्माता थे। उन्होंने अनेक मन्दिर, किले, बाँध, जलाशय और स्नानागार बनवाए। वास्तुकला की अनेक शैलियों का विकास हुआ। मूर्ति–कलाके क्षेत्र में भी उन्नति हुई। राजपूत राजाओं ने मन्दिर बनवाने में अपार धन खर्च किया। बुन्देलखण्ड में खजुराहो मन्दिर–समूह कला की एक महान् कृति है। इस समूह में आरम्भ में 85 मन्दिर थे जिनका निर्माण चन्देल राजाओं ने 950 और 1050 ई. के बीच किया। खजुराहो के सुप्रसिद्ध मन्दिरों में कन्दरिया महादेव का मन्दिर, चतुर्भुज का मन्दिर एवं पार्श्वनाथ का मन्दिर मुख्य हैं। खजुराहों के मन्दिरों में मण्डप और गर्भगृह को जोड़ने वाले तथा अर्द्ध मण्डप तथा गर्भगृह प्रायः सभी मन्दिरों में एक ही प्रकार के हैं। कुछ मन्दिरों में मण्डप और गर्भगृह को जोड़ने वाले

अन्तराल भी बने हैं। खजुराहों की कुछ स्थापत्य कृतियाँ अनुपम हैं। उदाहरण के लिए, पैर से काँटा निकालती हुई एक नायिका, एक प्रसाधनरत नायिका और आलस नायिका आदि। मध्य भारत के खजुराहों के मन्दिरों के अतिरिक्त पश्चिम भारत में उत्कृष्ट मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध आबू पर्वत के जैन मन्दिर हैं। चन्देल राजाओं के प्रोत्साहन से खजुराहों का कला के क्षेत्र में महत्त्व बहुत बढ़ गया और उड़ीसा के बाद इसी कला शैली की प्रधानता रही। यहाँ पर शैव, वैष्णव और जैन लोगों की धार्मिक निष्ठा और उत्साह के मन्दिर निर्माण को बड़ा प्रोत्साहन दिया।

उड़ीसा के भुवनेश्वर में अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ। भुवनेश्वर में लिंगराज का मन्दिर हिन्दू स्थापत्य कला का एक अच्छा उदाहरण माना जा सकता है। इसका विशाल शिखर 127 फीट ऊँचा है। उड़ीसा में जगन्नाथ मन्दिर भी कला की एक अच्छी कृति है। पुरी से लगभग 20 मील दूर कोणार्क कासूर्यमन्दिर हिन्दू निर्माण कला की एक उत्तम और अद्‌भुत कृति है।

मन्दिरों के निर्माण के साथ–साथ इस काल में मूर्ति–निर्माण कला में भी प्रगति हुई। सूर्य, विष्णु, शिव, बुद्ध आदि की विभिन्न मुद्राओं में अनेक मूर्तियों का निर्माण किया गया। शिव–पार्वती की सम्मिलित प्रतिमाएँ, गणेश, कार्तिकेय और जैन धर्म के चौबीस तीर्थकरों की मूर्तियाँ बनायी गयीं। तीर्थकरों की मूर्तियों के साथ यक्ष और यक्षिणी को भी दर्शाया गया है। ये मूर्तियाँ, पत्थर के अतिरिक्त मिट्टी, ताँबा और काँसा की भी बनायी गयीं। इन मूर्तियों से हमें संगीत और नृत्य कला की प्रगति का भी अनुमान होता है। शिव को ताण्डव नृत्य करते हुये दिखाया गया है। मूर्तियों के साथ बने मृदंग, एकतारा, बाँसुरी इत्यादि वाद्ययन्त्रों द्वारा संगीत कला का भी ज्ञान होता है।

एलोरा के कैलाशनाथ मन्दिर की मूर्तियाँ अत्यन्त मनोरम और आकर्षक है। एलीफैंटा की मूर्तियाँ अपनी सौम्यता और स्वभाविकता के लिए विश्वविख्यात हैं। दक्षिण भारत में पल्लव राज्य के सिंह स्तम्भ बड़े ही आकर्षक है। मामल्लपुरम् के रथ–मन्दिरों में देवी–देवताओं तथा पशु–पक्षियों की मूर्तियाँ नयनाभिराम हैं।

5.9 साहित्य

राजपूत राजा साहित्य–प्रेमी और विद्वानों के आश्रयदाता थे। कुछ राजपूत राजा स्वयं विद्वान् और लेखक थे। अपने समय के मुन्ज और राजा भोज प्रसिद्धविद्वान् थे। राजा मुन्ज एक महान् कवि था और राजा भोज एक महान् लेखक था जिसने नक्षत्र विज्ञान, कृषि, धर्म ललितकला इत्यादि विषयों पर ग्रन्थ लिखे। इस युग में पालि, प्राकृत, संस्कृत और प्रांतीय भाषाओं में अच्छे ग्रन्थ लिखे गये। जयदेव जो बंगाल के राजा लक्षमण सेन का राजकवि था, ने 'गीतगोविन्द' की रचना की। कवि चंद बरदाई ने अपने आश्रयदाता पृथ्वीराज की प्रशंसा में 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। कल्हण ने 'राजतरंगिणी' की रचना की। कश्मीरी पंडित क्षेमेन्द्र ने ग्यारहवीं शताब्दी में अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें वृहत्कथा मंजरी,

दशावतारचरित और कलाविलास प्रसिद्ध हैं। बारहवीं शताब्दी में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् और कवि श्रीहर्ष ने 'नैषधचरित' की रचना की। श्रीहर्ष कन्नौज के राजा जयचन्द के दरबारी कवि थे।

इस काल में कुछ प्रसिद्ध नाटककार भी हुए। संस्कृत साहित्य के महान् विद्वान भवभूति ने 'उत्तरामचरित' की रचना की जो संस्कृत साहित्य की अमूल्य कृति है। इसके अतिरिक्त भवभूति ने दो अन्य नाटक, 'महावीरचरित' और 'मालतीमाधव' लिखे। भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के सभा–पंडित थे और उनको कालिदास के बाद दूसरा स्थान दिया जा सकता है। 'प्रसन्नराघव' की जयदेव ने रचना की। राजशेखर ने 'बालरामायण', 'बालभारत' और 'कर्पूर मंजरी' नाटकों की रचना की। 'कर्पूर मंजरी' प्राकृत भाषा में लिखी गई उत्कृष्ट रचना है। इस प्रकार राजशेखर ने संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में साहित्य का सृजन किया।

इस समय दार्शनिक साहित्य की भी काफी उन्नति हुई। बौद्ध, जैन और हिन्दू तीनों प्रकार के दर्शनशास्त्रों का राजपूत काल में विकास हुआ। इस काल में अनेक ऐसे विद्वान् हुए जिन्होंने अपने मतों का तर्क के साथ प्रतिपादन किया। शंकराचार्य (788–820 ई.) ने वेदान्त दर्शन पर 'शंकर भाष्य', 'उपनिषद् भाष्य' और 'गीता भाष्य' नामक ग्रन्थ लिखे। इस समय के प्रसिद्ध दार्शनिक लेखक वाचस्पति मिश्र (नवीं शताब्दी) थे। प्रसिद्ध विद्वान् रामानुज (1140 ई.) का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया।राजपूत–काल इस प्रकार कला और साहित्य के क्षेत्र में प्रगति का काल था।

5.10 सारांश

7–12वीं सदी की राजपूत राजनीतिक व्यवस्था हर्ष की मृत्यु के बाद विभाजित भारत की तस्वीर प्रस्तुत करती है। गुर्जर प्रतिहारों के पहले राजपूत कबीले, जो पहले उज्जैन में हर्ष के सामंत थे, कन्नौज और जत्तरी भारत में आस–पास के क्षेत्रों पर शासन करने के लिए एक स्वतंत्र राजनीतिक और सैन्य शक्ति के रूप में उभरे। इस प्रकार राजपूतों के उदय में राजनीतिक और सैन्य शक्ति को इस स्तर पर एक प्रमुख सूचक माना गया। दूसरे चरण में मध्य और पश्चिमी भारत के अलग–अलग क्षेत्रों में गुर्जर प्रतिहारों के सामंतों के उभरने के साथ–साथ स्वतंत्र कबीले भी सर्वोच्च सैन्य शक्ति के कब्जे की उसी प्रवृत्ति को दर्शाते थे, जिसके कारण राजनीतिक और सैन्य रूप से उच्चतर कबीलों की स्वतंत्रता या प्रभुत्व का जन्म हुआ और उन्होंने कम शक्तिशाली कबीलों पर अपना प्रभुत्व जमाया। सामंतों और अधिकारियों के अलग–अलग वर्गों के बीच भूमि का आवंटन या वितरण जरूरी तौर पर सामंतों की अलग–अलग श्रेणी के निर्माण में एक कदम था, जो बाद में कुलों या उपकुलों के रूप में सामने आए।

भारत के मध्य और पश्चिमी प्रांतों के विभिन्न हिस्सों में राजपूत वंशों का सुदृढीकरण भी असंख्य अभेद्य किलों की उपस्थिति से परिलक्षित होता है, जो स्पष्ट रूप से उन कुलों की सैन्य ताकत का

प्रतिनिधित्व करते थे। विभिन्न कुलों के सदस्यों के बीच विवाह के गठजोड़ द्वारा बनाए गए सामाजिक संबंधों ने कुछ नए उभरे कुलों को एक वैधता प्रदान की।

राजपूतों का उद्‌भव इस प्रकार से हुआ न कि, अग्निकुल और सूर्य और चंद्र वंशीय उत्पत्ति की पौराणिक परंपराओं के अनुसार। इसे प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत के इतिहास में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास के संदर्भ में एक प्रक्रिया के रूप में माना जाना चाहिए। बी.डी.चट्टोपाध्याय समकालीन साक्ष्यों के प्रकाश में प्रतिविरोध का राजपूतों के उद्‌भव का यह नजरिया पेश करते हैं। क्षत्रियों, बाह्मणों और आदिवासियों सहित कुछ जनजातियों के देशी आबादी के आत्मसात् करने से विभिन्न क्षेत्रों में राजपूतों की उत्पत्ति होती है।

5.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राजपूतों की राजनीतिक और सैन्य प्रणाली की विशेयताओं पर चर्चा करें।

   .....

2. राजपूतों के उद्‌भव के बारे में विभिन्न विचारों पर चर्चा करें। क्या राजपूतों का उदय एक प्रक्रिया का परिणाम था?

   .....

3. राजपूतों के प्रसार से आपका क्या अभिप्राय है? चर्चा करें।

   .....

5.12 संदर्भ ग्रन्थ

बनर्जी, आर.डी. : द ऐज ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज, 1933

कॉट्रिंग्टन, के. : एन्शियेन्ट इण्डिया

दाण्डेकर, आर.एन. : लाइफ इन द गुप्ता एज

मजूमदार एण्ड आर.सी. : द क्लासिकल एज

सेलटोर, आर.एन. : लाइफ इन द गुप्ता एज (बॉम्बे, 1943)

स्मिथ, वी.ए. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।

इकाई 6– त्रिपक्षीय संघर्ष–राष्ट्रकूट वंश, पाल साम्राज्य, गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 त्रिपक्षीय संघर्ष

- 6.2.1 प्रथम चरण (783–795ई0)
- 6.2.2 द्वितीय चरण (795 ई0 – 814 ई0)
- 6.2.3 तृतीय चरण (814 ई0 – 833 ई0)
- 6.2.4 चतुर्थ चरण (833 ई0 – 855 ई0)
- 6.2.5 पांचवा चरण (855–910 ई.)
- 6.2.6 छठा चरण (910 ई. से अन्त तक)

6.3 राष्ट्रकूट वंश

6.4 पाल वंश

6.5 गुर्जर प्रतिहार वंश

6.6 सारांश

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.8 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 प्रस्तावना

सम्राट हर्ष के बाद कन्नौज विभिन्न शक्तियों के आकर्षण का केन्द्र बन गया। इसे वही स्थान प्राप्त हुआ, जो गुप्तयुग तक मगध का था । वस्तुतः हर्ष और यशोवर्मन् ने इसे साम्राज्यिक सत्ता का प्रतीक बना दिया था। उत्तर भारत का चक्रवर्ती शासक बनने के लिये कन्नौज पर अधिकार करना आवश्यक समझा जाने लगा। राजनैतिक महत्व होने के साथ कन्नौज नगर का आर्थिक महत्व भी काफी बढ़ गया। कन्नौज पर अधिकार करने से गंगाघाटी और इसमें उपलब्ध व्यापारिक एवं कृषि संबंधी समृद्ध साधनों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता था। गंगा और यमुना के बीच स्थित होने के कारण कन्नौज का क्षेत्र काफी उपजाऊ था।

व्यापार और वाणिज्य की दृष्टि से भी कन्नौज महत्वपूर्ण था. क्योंकि यहाँ से विभिन्न दिशाओं को व्यापारिक मार्ग जाते थे। एक मार्ग कन्नौज से प्रयाग तथा फिर पूर्वीतट तक जाकर दक्षिण में कांची तक जाता था। दूसरा मार्ग वाराणसी तथा गंगा के मुहाने तक जाता था। तीसरा मार्ग पूर्व में कामरूप और उत्तर से नेपाल और तिब्बत तक के लिये था। चौथा मार्ग कन्नौज से दक्षिण की ओर जाते हुए दक्षिण तट पर स्थित वनवासी नगर में मिलता था। पांचवां मार्ग कन्नौज से बजान तक तथा उसके बाद गुजरात की राजधानी गांधीनगर तक पहुँचता था। जिस प्रकार पूर्व काल में मगध उत्तरापथ के व्यापारिक मार्ग को नियंत्रित करता था, उसी प्रकार की स्थिति कन्नौज ने भी प्राप्त कर ली। इस प्रकार राजनैतिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से इस पर आधिपत्य स्थापित करना लाभप्रद था। अतः इस पर अधिकार करने के लिए 8वीं शताब्दी के अन्त से लेकर 10वीं शताब्दी के अन्त तक तीन बड़ी शक्तियों गुर्जर–प्रतिहार, पाल और राष्ट्रकूट के बीच त्रिकोणीय संघर्ष शुरू हुआ।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको कन्नौज में होने वाले त्रिकोणात्मक संघर्ष तथा राष्ट्रकूट वंश, पाल वंश एवं गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

6.2 त्रिपक्षीय संघर्ष

सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया और उसका स्थान छोटे राज्यों ने ले लिया, परन्तु कन्नौज की कीर्ति नष्ट नहीं हुई। उत्तर–भारत के सम्राट की राजधानी होने का गौरव पाटलिपुत्र के स्थान पर अब कन्नौज ने ले लिया था। आगे होने वाले भारत के यशस्वी शासकों ने कन्नौज को राजधानी बनाने अथवा उसे अपने आधिपत्य में करने के लिए परस्पर संघर्ष किये। सम्राट हर्ष के पश्चात् कन्नौज के सम्मान को सर्वप्रथम यशोवर्मा (प्रायः 690–740ई.) ने पुनः स्थापित किया। उसके समकालीन यशस्वी शासकों में चालुक्य–सम्राट विनयादित्य और कश्मीर–सम्राट ललितादित्य थे । कन्नौज को प्राप्त करने के लिए इन दोनों ने यशोवर्मा से संघर्ष किया। विनयादित्य और यशोवर्मा का संघर्ष,

सम्भवतया, निर्णयात्मक नहीं हुआ परन्तु ललितादित्य ने यशोवर्मा को, निस्सन्देह, परास्त किया । यशोवर्मा के उत्तराधिकारियों में से कोई भी योग्य नहीं हुआ और आठवीं सदी के बाद के समय में कन्नौज एक नवीन वंश– आयुध–वंश –के अधिकार में चला गया। 770 ई. में वज्रायुध कन्नौज का शासक बना परन्तु उसका राज्य छोटा ही था। उसकी मृत्यु के पश्चात् 783 ई. या 784 ई. में उसका पुत्र इन्द्रायुध कन्नौज का शासक बना। उसके भाई चक्रायुध ने इसका विरोध किया। ऐसी ही परिस्थिति में जबकि कन्नौज के लिए इन दो भाइयों में संघर्ष चल रहा था, भारत की नवोदित शक्तियों ने कन्नौज को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। आठवीं सदी के बाद के इस समय में भारत में तीन शक्तिशाली राज्यों का निर्माण हो चुका था– राजस्थान में गुर्जर–प्रतिहार, बंगाल में पाल और दक्षिण भारत के महाराष्ट्र और उसके निकट के भू–क्षेत्रों में राष्ट्रकूट। इन तीनों वंशों के विभिन्न सम्राटों ने चक्रवर्ती सम्राट होने के आदर्श की पूर्ति का प्रयत्न किया तथा तीनों वंशों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिकतम राज्य–विस्तार और कन्नौज को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। इस कारण, इन तीनों वंशों के विभिन्न सम्राटों में भारत–सम्राट कहलाने और कन्नौज को प्राप्त करने की प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए संघर्ष हुआ जो त्रिदलीय अथवा त्रिपक्षीय संघर्ष कहलाया। यह संघर्ष 8वीं सदी के अन्तिम समय से आरम्भ होकर 10वीं सदी के अन्त तक लगभग 200 वर्षों तक चला।

उन शक्तिशाली सम्राटों और एक बड़े साम्राज्य की राजधानी बने रहने अथवा बनाये रखने के प्रयत्न का गौरव पाटलिपुत्र के स्थान पर कन्नौज को प्राप्त हुआ। कन्नौज हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भी वैभव और शक्ति का केन्द्र–बिन्दु बना रहा, कन्नौज के सम्राट सम्पूर्ण उत्तर–भारत के शासक बनने का प्रयत्न करते रहे और भारत की रक्षा का उत्तरदायित्व भी सम्भालते रहे। इसी कारण, अरब सिन्ध और मुल्तान पर अधिकार कर लेने के बावजूद भी मुस्लिम भारत में अन्दर प्रवेश करने में असफल हुए। यही नहीं अपितु प्रायः 250 वर्षों तक भारत इस्लाम की उस शक्ति को, जिसने मध्य और पश्चिमी एशिया तथा यूरोप और अफ्रीका के बहुत बड़े भाग को जीतने व सम्पूर्ण यूरोप की संयुक्त शक्तियों से मुकाबला करने मेंसफलता पायी थी, अपनी उत्तर–पश्चिमी सीमाओं पर रोक सका। इसका मुख्य कारण यह था कि राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और धार्मिक एवं सामाजिक गिरावट होने के बावजूद भी भारत 1000 ई. तक हिन्दुओं के राजधर्म, सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक आदर्शों को सुरक्षित रख सका था।

6.2.1 प्रथम चरण (783–795ई0)

कन्नौज को अपने आधिपत्य में लेने का पहला कदम प्रतिहार शासक वत्सराज (770–805 ई) ने उठाया। उसका आशय कन्नौज को विजय करके सम्पूर्ण गंगा की घाटी पर अपना अधिकार करना था। उस समय कन्नौज का शासक इन्द्रायुध था। इन्द्रायुध ने वत्सराज के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। परन्तु उसी अवसर पर पाल–शासक धर्मपाल और राष्ट्रकूट–शासक ध्रुव भी कन्नौज और गंगा की घाटी को अपने

अधिकार में करने के लिए उत्सुक हुए थे। वत्सराज ने आगे बढ़कर धर्मपाल (770–810 ई) से युद्ध किया और उसे परास्त कर दिया। परन्तु उसी अवसर पर राष्ट्रकूट–शासक ध्रुव (780–793 ई) ने उत्तर–भारत में प्रवेश किया। ध्रुव का युद्ध गंगा–यमुना–दोआब में वत्सराज से हुआ, जिसमें उसकी विजय हुई। ध्रुव ने पाल–शासक धर्मपाल पर आक्रमण करके उसे भी परास्त किया और कन्नौज को अपने आधिपत्य में ले लिया। परन्तु ध्रुव को शीघ्र ही दक्षिण–भारत वापस जाना पड़ा। ध्रुव के इस आक्रमण से प्रतिहारों को तो हानि हुई परन्तु पाल शासक धर्मपाल को उससे लाभ हुआ। ध्रुव के वापस चले जाने और प्रतिहारों की शक्ति के दुर्बल हो जाने से धर्मपाल को कन्नौज पर आक्रमण करने का अवसर मिला। उसने इन्द्रायुध को हटाकर उसके भाई चक्रायुध को कन्नौज के सिंहासन पर बैठाया जिसने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया।

6.2.2 द्वितीय चरण (795 ई0 – 814 ई0)

कन्नौज पर धर्मपाल के प्रभाव की स्थापना प्रतिहार वंश के लिए एक चुनौती थी । वत्सराज की मृत्यु 805 ई. में हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (805–833 ई) प्रतिहार शासक बना। नागभट्ट द्वितीय ने अपने वंश की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया और निकट के क्षेत्रों में अपनी स्थिति को दृढ़ करके उसने कन्नौज पर आक्रमण किया। उसने चक्रायुध को परास्त करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया और धर्मपाल पर भी आक्रमण किया। उसने धर्मपाल को परास्त करके उसके राज्य की सीमाओं में मुंगेर तक घुसने में सफलता प्राप्त की । परन्तु नागभट्ट द्वितीय भी अधिक समय अपनी सफलता का उपभोग नहीं कर सका। उस समय राष्ट्रकूट–शासक गोविन्द तृतीय था ।

6.2.3 तृतीय चरण (814 ई0 – 833 ई0)

वह स्वयं महत्वाकांक्षी था, प्रतिहार–वंश से उसकी वंशानुगत शत्रुता चली आ रही थी और सम्भवतया, चक्रायुध और धर्मपाल ने नागभट्ट द्वितीय के विरुद्ध उससे सहायता भी माँगी थी। इस कारण, गोविन्द तृतीय (793–814 ई.) ने उत्तर–भारत पर आक्रमण किया । चक्रायुध और धर्मपाल ने बिना युद्ध किये ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और कन्नौज पर गोविन्द तृतीय का प्रभाव स्थापित हो गया। परन्तु नागभट्ट द्वितीय ने बुन्देलखण्ड में किसी स्थान पर उससे युद्ध किया। नागभट्ट द्वितीय उस युद्ध में परास्त हुआ (809–810 ई) । परन्तु गोविन्द तृतीय भी अधिक समय उत्तर भारत में नहीं रह सका। वह दक्षिण भारत वापस चला गया। इस कारण, प्रतिहार और पाल शासकों में कन्नौज को प्राप्त करने के लिए पुनः प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो गयी। गोविन्द तृतीय के वापस जाने के पश्चात् नागभट्ट द्वितीय और धर्मपाल दोनों को ही अपनी शक्ति को दृढ़ करने का अवसर मिला परन्तु दोनों में कोई युद्ध नहीं हुआ । सम्भवतया कन्नौज पर नागभट्ट का अधिकार हो गया।

6.2.4 चतुर्थ चरण (833 ई0 – 855 ई0)

परन्तु धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल (810–850 ई.) के शासन काल में यह संघर्ष पुनः आरम्भ हो गया। देवपाल ने नागभट्ट द्वितीय को पीछे हटने के लिए बाध्य किया, उत्तर– भारत में अपनी श्रेष्ठता को स्थापित किया तथा नवीन प्रतिहार–शासक मिहिरभोज (836–885 ई) को भी एक युद्ध में परास्त किया। परन्तु देवपाल के उत्तराधिकारी दुर्बल सिद्व हुए।

6.2.5 पाँचवा चरण (855–910 ई.)

बंगाल में देवपाल के उत्तराधिकारी क्रमशः विग्रहपाल और नारायणपाल बने, जिनकेसमय में पालों की शक्ति का पतन हुआ । इसी समय गुर्जर प्रतिहार वंश का शासक मिहिरभोज बना। उसने कन्नौज को अपने राज्य में शामिल किया। उसने राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष की दुर्बलता का लाभ उठाकर पश्चिमी भारत में काठियावाड़ तक अपने राज्य का विस्तार किया। विद्वानों का मत है है कि इस समय राष्ट्रकूट एवं पाल वंश के मध्य छोटे –मोटे संघर्ष हुए, किंतु कोई निर्णायक युद्ध नहीं हुआ। इन परिस्थितियों का लाभ मिहिरभोज ने अपने साम्राज्य विस्तार में किया और उत्तर भारत के एक बड़े भाग पर अपना अधिपत्य स्थापित किया। अतः इस चरण में गुर्जर–प्रतिहार वंश उत्तर भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली हो गए। मिहिरभोज के बाद उसका पुत्र महेंद्रपाल शासक बना और उसने भी प्रतिहार साम्राज्य को शक्तिशाली बनाए रखा।

6.2.6 छठा चरण (910 ई. से अन्त तक)

गुर्जर प्रतिहार वंश में महेन्द्रपाल के बाद महीपाल प्रथम शासक बना, किंतु वह राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय का सामना न कर सका। इन्द्र तृतीय ने कन्नौज को नष्ट कर दिया। इन्द्र तृतीय के बाद राष्ट्रकूट वंश का पतन आरंभ हो गया। गुर्जर–प्रतिहार शासक महीपाल ने राष्ट्रकूटों की निर्बलता का लाभ उठाया और पुनः कन्नौज पर अधिकार कर लिया, किंतु महीपाल के बाद प्रतिहार वंश में कमजोर शासक हुए। वे राज्य की रक्षा करने में असफल रहे और धीरे–धीरे इस वंश का पतन हो गया। नारायणपाल के बाद पालवंश का भी पतन आरंभ हो गया। अमोघवर्ष के बाद कृष्ण द्वितीय तक तो राष्ट्रकूट मजबूत रहे किन्तु कृष्ण तृतीय के समय राष्ट्रकूट वंश की निर्बलता उजागर हो गयी और धीरे–धीरे इस वंश का भी पतन हो गया।

त्रिपक्षीय संघर्ष में शामिल प्रमुख शासक		
गुर्जर प्रतिहार वंश	**राष्ट्रकूट वंश**	**पाल वंश**
वत्सराज (775–800ई0)	ध्रुव (780–793ई0)	धर्मपाल (770–810ई0)
नागभट्ट द्वितीय (800–833ई0)	गोविन्द तृतीय (793–814ई0)	देवपाल (810–850ई0)

रामचन्द्र (833–836ई0)	अमोघवर्ष (814–880ई0)	विग्रहपाल (850–854ई0)
मिहिरभोज (836–885ई0)	कृष्ण द्वितीय (880–914ई0)	नारायण पाल (854–915ई0)

6.3 राष्ट्रकूट वंश

इनका शासनकाल लगभग छठी से तेरहवीं शताब्दी के मध्य था। इस काल में उन्होंने परस्पर घनिष्ठ परन्तु स्वतंत्र जातियों के रूप में राज्य किया, उनके ज्ञात प्राचीनतम शिलालेखों में सातवीं शताब्दी का 'राष्ट्रकूट' ताम्रपत्र मुख्य है, जिसमे उल्लिखित है कि 'मालवा प्रान्त' के मानपुर में उनका साम्राज्य था (जोकि आज मध्य प्रदेश राज्य में स्थित है), इसी काल की अन्य 'राष्ट्रकूट' जातियों में 'अचलपुर' (जो आधुनिक समय में महारास्ट्र में स्थित एलिच्पुर है), के शासक तथा 'कन्नौज' के शासक भी शामिल थे। इनके मूलस्थान तथा मूल के बारे में कई भ्रांतियाँ प्रचलित है। एलिच्पुर में शासन करने वाले 'राष्ट्रकूट' 'बादामी चालुक्यों' के उपनिवेश के रूप में स्थापित हुए थे लेकिन 'दान्तिदुर्ग' के नेतृत्व में उन्होंने चालुक्य शासक 'कीर्तिवर्मन द्वितीय' को वहाँ से उखाड़ फेंका तथा आधुनिक 'कर्णाटक' प्रान्त के 'गुलबर्ग' को अपना मुख्य स्थान बनाया। यह जाति बाद में 'मान्यखेत के राष्ट्रकूटों ' के नाम से विख्यात हो गई, जो 'दक्षिण भारत' में ७५३ ईसवी में सत्ता में आई, इसी समय पर बंगाल का 'पाल साम्राज्य' एवं 'गुजरात के प्रतिहार साम्राज्य' 'भारतीय उपमहाद्वीप' के पूर्व और उत्तरपश्चिम भूभाग पर तेजी से सत्ता में आ रहे थे।

आठवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य के काल में गंगा के उपजाऊ मैदानी भाग पर स्थित 'कन्नौज राज्य' पर नियंत्रण हेतु एक त्रिदलीय संघर्ष चला, उस वक्त 'कन्नौज' 'उत्तर भारत' की मुख्य सत्ता के रूप में स्थापित था। प्रत्येक साम्राज्य उस पर नियंत्रण करना चाह रहा था। 'मान्यखेत के राष्ट्रकूटों' की सत्ता के उच्चतम शिखर पर उनका साम्राज्य उत्तर दिशा में 'गंगा' और 'यमुना नदी' पर स्थित दोआब से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक था। यह उनके राजनीतिक विस्तार, वास्तु कलात्मक उपलब्धियों और साहित्यिक योगदान का काल था। इस राजवंश के प्रारंभिक शासक हिंदू धर्म के अनुयायी थे, परन्तु बाद में यह राजवंश जैन धर्म के प्रभाव में आ गया था।

दक्षिण भारत एवं गुजरात में मिले क्रमशः 75 शिलालेख 8 शिलालेख से इनके वंश के बारे में प्रकाश पड़ता है कि राष्ट्रकूट अपने आपको सात्यकी जो यदुवंशी था। महाभारत में नारायणी सेना के प्रमुख सात सेनापतियों में से एक था उसी के वंश का नाम राष्ट्रकूट है। विद्वान एवं इतिहासकार समर्थन करते हैं कि राष्ट्रकूट यदुवंशी क्षत्रिय है। 860 ई० के पूर्व राष्ट्रकूट राजाओं के वंश के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था। गोविन्द तृतीय (880 ई०) द्वारा उत्कीर्ण एक शिलालेख में लिखा है कि ''इस महान राजा के जन्म से राष्ट्रकूट वंश वैसे ही अजेय हो गया जैसे भगवान कृष्ण के जन्म से यादव वंश हो गया था''। यह शिलालेख इस ओर स्पष्ट रूप से इशारा करते है कि राष्ट्रकूट यादव थे। हलायुध द्वारा लिखी गई किताब

'कविरहस्य' में भी राष्ट्रकूट राजाओं को यदुवंशी सात्यकी का वंशज लिखा गया है। अमोघवर्ष प्रथम द्वारा 950 ई० में लिखित एक ताम्र–पत्र में भी उन्होंने अपने आप को यादव बताया है। 914 ई० के ताम्र–पत्र में भी राष्ट्रकूट राजा'दन्तिदुर्ग' को यादव सात्यकी का वंशज लिखा गया है। इन बातों से सिद्ध होता है कि राष्ट्रकूट राजा यादव थे। ये कन्नड भाषा बोलते थे,लेकिन उन्हें उत्तर–ढक्कनी भाषा की जानकारी भी थी। अपने शत्रु चालुक्य वंश को पराजित करने वाले राष्ट्रकूट वंश के शासन काल में ही ढक्कन साम्राज्य भारत की दूसरी बड़ी राजनीतिक इकाई बन गया,जो मालवा से कांची तक फैला हुआ था । इस काल में राष्ट्रकूटों के महत्व का इस तथ्य से पता चलता है कि एक मुस्लिम यात्री ने यहाँ के राजा को दुनिया के चार महान शासकों में से एक बताया, अन्य तीन शासक खलीफा तथा बाइजंतिया और चीन के सम्राट थे।

प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में भारत के विभिन्न भागों में राष्ट्रकूटों की अनेक शाखाएँ थीं। राष्ट्रकूटों के सबसे पहले ज्ञात शासक परिवार की स्थापना मन्नक द्वारा मान्यखेत में की गई थी। इसके पास पालिध्वज और गरुड़–लांछन था। एक दूसरा राष्ट्रकूट परिवार मध्य प्रदेश के बैतूल जिले में शासन कर रहा था। गरुड़ मुहर वाले 757 ई. के एंट्रोली–छारोली शिलालेख में चार पीढ़ियों, कर्क प्रथम, उनके बेटे ध्रुव, उनके बेटे गोविंद और उनके बेटे कर्क द्वितीय का उल्लेख है। ये गुजरात के लाट देश पर राज्य करने वाली मान्यखेत शाखा की एक सहायक शाखा थी। दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट साम्राज्य के संस्थापक थे। ऐसा लगता है कि वह कर्क II का समकालीन था। मान्यखेत शाखा के साथ इन राजाओं का सटीक संबंध निश्चितता के साथ तय नहीं किया जा सकता हालांकि राज्य की स्थापना दंतिदुर्ग ने की थी। उसने अपनी राजधानी मान्यखेट अथवा मालखेड़ को बनाया, जो आधुनिक शोलापुर के पास है! राष्ट्रकूटों की मान्यखेत शाखा जल्द ही दूसरी शाखाओं को अपने साथ मिलाकर एक प्रमुख व शाही शाखा बन गयी।

6.4 पाल वंश

पाल साम्राज्य मध्यकालीन ''उत्तर भारत'' का सबसे शक्तिशाली और महत्वपूर्ण साम्राज्य माना जाता है, जो कि 750–1174 ईसवी तक चला। ''पाल राजवंश'' ने भारत के पूर्वी भाग में एक विशाल साम्राज्य बनाया। इस राज्य में वास्तु कला को बहुत बढावा मिला। पाल राजाओ के काल मे बौद्ध धर्म को बहुत बढावा मिला। पाल राजा हिन्दू थे, परन्तु वे बौद्ध धर्म को भी मानने वाले थे। पाल राजाओ के समय में बौद्ध धर्म को बहुत संरक्षण मिला। पाल राजाओं ने बौद्ध धर्म के उत्थान के लिए बहुत से कार्य किये जो कि इतिहास में अंकित है। पाल राजाओं ने हिन्दू धर्म को आगे बढ़ने के लिए शिव मंदिरों का निर्माण कराया और शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों का निर्माण करवाया। यह पूर्व–मध्यकालीन राजवंश था। जब हर्षवर्धन काल के बाद समस्त उत्तरी भारत में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक गहरा संकट उत्पनन्न हो गया, तब बिहार, बंगाल और उड़ीसा के सम्पूर्ण क्षेत्र में पूरी तरह अराजकत फैली थी। इसी समय गोपाल ने बंगाल में एक स्वतन्त्र राज्य घोषित किया। जनता द्वारा गोपाल को सिंहासन पर आसीन किया गया जो कि एक

गड़रिया था। वह योग्य और कुशल शासक था, जिसने ७५० ई. से ७७० ई. तक शासन किया। इस दौरान उसने ओदंतपुरी (बिहार शरीफ) में एक मठ तथा विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया।

6.5 गुर्जर प्रतिहार वंश

गुर्जर–प्रतिहार राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन एवं मध्यकालीन दौर के संक्रमण काल में साम्राज्य स्थापित करने वाला एक राजवंश था जिसके शासकों ने मध्य–उत्तर भारत के बड़े हिस्से पर मध्य–8वीं सदी से 11वीं सदी के बीच शासन किया। इस राजवंश का संस्थापक प्रथम नागभट्ट था, जिनके वंशजों ने पहले उज्जैन और बाद में कन्नौज को राजधानी बनाते हुए एक विस्तृत भूभाग पर शासन किया। नागभट्ट द्वारा 725 ईसवी में साम्राज्य की स्थापना से पूर्व भी गुर्जर–प्रतिहारों द्वारा मंडोर, मारवाड़ इत्यादि इलाकों में सामंतों के रूप में 6ठीं से 9वीं सदी के बीच शासन किया गया किंतु एक संगठित साम्राज्य के रूप में इसे स्थापित करने का श्रेय नागभट्ट को जाता है।

उमय्यद खिलाफत के नेतृत्व में होने वाले अरब आक्रमणों का नागभट्ट और परवर्ती शासकों ने प्रबल प्रतिकार किया। कुछ इतिहासकार भारत की ओर इस्लाम के विस्तार की गति के इस दौर में धीमी होने का श्रेय इस राजवंश की सबलता को देते हैं। दूसरे नागभट्ट के शासनकाल में यह राजवंश उत्तर भारत की सबसे प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन गया था। मिहिर भोज और उसके परवर्ती महेन्द्रपाल प्रथम के शासन काल में यह साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा और इस समय इस साम्राज्य की सीमाएँ पश्चिम में सिंध से लेकर पूर्व में आधुनिक बंगाल तक और हिमालय की तलहटी से नर्मदा पार दक्षिण तक विस्तृत थीं। यह विस्तार मानों गुप्तकाल के अपने समय के सर्वाधिक राज्यक्षेत्र से स्पर्धा करता हुआ सा प्रतीत होता है। इस विस्तार ने तत्कालीन भारतीय उपमहाद्वीप में एक त्रिकोणीय संघर्ष को जन्म दिया जिसमें गुर्जर–प्रतिहारों के अलावा राष्ट्रकूट और पाल वंश शामिल थे। इसी दौरान इस राजवंश के राजाओं ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की।

गुर्जर–प्रतिहार विशेषकर शिल्पकला के लिए जाने जाते हैं। इनके शासन काल में उत्कीर्ण पटलों वाले और खुले द्वारांगन वाले मंदिरों का निर्माण हुआ। इस शैली का चरमोत्कर्ष हमें खजुराहो के मंदिरों में देखने को मिलता है, जिन्हें आज यूनेस्को की विश्व विरासत में शामिल किया जा चुका है।

प्रतिहारों की शक्ति राज्य के लिए आपसी संघर्ष के चलते क्षीण हुई। इसी दौरान इनकी शक्ति और राज्यक्षेत्र में पर्याप्त ह्रास की वजह राष्ट्रकूट राजा तृतीय इन्द्र का आक्रमण भी बना। इन्द्र ने लगभग 916 ई. में कन्नौज पर हमला करके इसे ध्वस्त कर दिया। बाद में अपेक्षाकृत अक्षम शासकों के शासन में प्रतिहार अपनी पुरानी प्रभावशालिता पुनः नहीं प्राप्त कर पाए। इनके अधीन सामंत अधिकाधिक मजबूत होते गए और 10वीं सदी आते आते अधीनता से मुक्त होते चले गये। इसके बाद प्रतिहारों के पास गंगा–दोआब के क्षेत्र से कुछ ज्यादा भूमि राज्यक्षेत्र के रूप में बची। आखिरी महत्वपूर्ण राजा राज्यपाल को महमूद गजनी के

हमले के कारण 1018 ई. में कन्नौज छोड़ना पड़ा। उसे चंदेलों ने पकड़ कर मार डाला और उसके पुत्र त्रिलोचनपाल को एक प्रतीकात्मक राजा के रूप में राज्यारूढ़ करवाया। इस वंश का अंतिम राजा यशपाल था जिसकी 1036ई. में मृत्यु के बाद यह राजवंश समाप्त हो गया।

6.6 सारांश

इस प्रकार, गंगा–घाटी और कन्नौज को अधिकार में करने के प्रयलों के फलस्वरूप प्रतिहारों, पालों और राष्ट्रकूटों में जो त्रिदलीय संघर्ष हुआ उसमें प्रतिहारों को सफलता प्राप्त हुई। निस्सन्देह, राष्ट्रकूट–शासक इन्द्र तृतीय ने 915–918 ई. के मध्य एक बार पुनः उत्तर–भारत पर आक्रमण करके प्रतिहार–शासक महीपाल को परास्त किया और कन्नौज को भी लूटने में सफलता पायी परन्तु सदैव की भाँति राष्ट्रकूटों की यह सफलता भी अस्थायी रही।

उत्तर भारत में वे और विस्तार न कर सके। इस संघर्ष का अन्तिम परिणाम पाल–वंश का बंगाल तक सीमित हो जाना तथा प्रतिहार और राष्ट्रकूटों की शक्ति का दुर्बल हो जाना था। दसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में ही ये तीनों राजवंश पर्याप्त दुर्बल हो गये थे, जिसका परिणाम इन तीनों का पतन और भारत का विभिन्न राज्यों में बँट जाना था। प्रतिहारों के पश्चात् उत्तर–भारत को एक साम्राज्य में संगठित करने का प्रयल भी किसी ने नहीं किया। दूसरी तरफ 1000 ई. के पश्चात् भारत अपने आन्तरिक सामाजिक तनाव, नैतिक और धार्मिक पतन तथा राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को रोकने में असमर्थ हो गया। ऐसे ही समय में तुर्को के आक्रमण हुए और अपनी दुर्बलताओं से ग्रस्त भारत उनका मुकाबला करने में असमर्थ रहा। तथा भारत में तुर्की सत्ता स्थापित हो गयी । वास्तव में भारत की दुर्बलता हर्ष की मृत्यु के समय में नहीं अपितु 1000 ई. के लगभग गुर्जर–प्रतिहार साम्राज्य के नष्ट हो जाने के समय से आरम्भ हुई। उस समय से भारत राजनीतिक दृष्टि से विभक्त हो गया, चक्रवर्ती सम्राटों का आदर्श नष्ट हो गया, सामाजिक विभक्तीकरण और उससे उत्पन्न तनाव स्पष्ट रूप से सामने आ गया, सम्पूर्ण देश नैतिक और धार्मिक पतन से पूर्ण हो गया तथा भारत का विदेशों से सम्पर्क नष्ट हो गया और इन सभी के कारण भारत और उसकी संस्कृति पतन के मार्ग पर अग्रसर हुई।

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कन्नौज के लिए होने वाले त्रिकोणीय संघर्ष के बारे में प्रकाश डालिये।

   .....

2. त्रिकोणात्मक संघर्ष में कौन कौन से साम्राज्य सम्मिलित थे?

   .....

3. त्रिकोणात्मक संघर्ष मे सम्मिलित शासकों के विषय में वर्णन कीजिये।

6.8 संदर्भ ग्रन्थ

झा व श्रीमाली : प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली वि.वि. दिल्ली।

मजूमदार, आर.सी. : द ऐज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज।

मजूमदार, आर.सी. : द स्ट्रगल फॉर एम्पायर।

त्रिपाठी, आर.एस. : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू द मुस्लिम कनक्वेस्ट।

थापर, रोमिला : पूर्वकालीन भारत, दिल्ली वि.वि. दिल्ली।

शर्मा, प्रो0 कृष्णगोपाल : भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

इकाई 7—चन्देल वंश

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 इतिहास के स्रोत

7.3 प्रारम्भिक इतिहास

7.4 चन्देल वंश का उदय काल

- 7.4.1 हर्ष
- 7.4.2 यशोवर्मन
- 7.4.3 धंग
- 7.4.4 गण्ड
- 7.4.5 विद्याधर

7.5 पतन

7.6सारांश

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

7.0 प्रस्तावना

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के भूभाग पर चन्देल वंश के स्वतंत्र राजनीतिक इतिहास का प्रारम्भ हुआ। बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम जेजाकभुक्ति है। महोबा से प्राप्त एक लेख से पता चलता है कि इस वंश के तीसरे शासक जयशक्ति (जिसका प्राकृत रूप 'जेजा' या 'जेज्जा' मिलता है) ने अपने द्वारा शासित प्रदेश का नामकरण अपने नाम पर 'जेजाभुक्ति' अथवा जेजाकभुक्ति ठीक उसी प्रकार किया जिस प्रकार राजा पृथु के नाम पर पृथ्वी का नामकरण हुआ। कालान्तर में इसी का नाम जुझौती तथा बुन्देलों के नाम पर बुन्देलखण्ड भी पड़ गया। चन्देल शासन में यह भूभाग राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से उत्कर्ष की चोटी पर पहुंच गया।

जेजाकभूक्ति के चन्देल के नाम से विख्यात एक हिन्दू चन्देल राजपूत साम्राज्य था, जिन्होंने 09वीं से 15वीं शताब्दी तक भारत के पूर्वी, मध्य इत्यादि भागो पर शासन किया। उनके द्वारा शासित क्षेत्र को जेजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था। वे राजपूतों के हैहय–चन्देल कबीले के सबसे प्रमुख शासक परिवार थे। इस राजवंश की स्थापना हैहयवंशी चन्देल राजा चन्द्रवर्मन चन्देल ने की थी। चन्देल राजवंश की राजधानी महोबा तथा कालिंजर (जेजाकभूक्ति, उत्तर प्रदेश में) थी।

610 ईस्वी के अंत तक चेदी–चन्देल राजवंश पुष्यभूति राजवंश और कलचुरि राजवंश के सामंत राजा थे। 810 ईस्वी में चेदी–चन्देलो के राजा चन्द्रवर्मन ने प्रतिहार राजवंश को परास्त कर स्वतंत्र हुआ तथा नए राजवंश की नींव रखी। चन्देल साम्राज्य जहां भी फैलता वो जेजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था। जेजाभुक्ति चन्देल राज्य के प्रथम राजा जेजा या जयशक्ति के नाम पे पढ़ा इसी कारण इन्हें जेजाकभुक्ति के चन्देल कहा जाता है। चन्देल सम्राट ना ही सफल विजेता और कुशल शासक थे अपितु वास्तुकला तथा धर्म की और भी उनका रुझाव ज्यादा था। चन्देलो ने गजनवी, चौहानों, गोरी, दिल्ली सल्तनत, सूरी साम्राज्य इत्यादि अक्रमणकारियो का सफलता पूर्वक प्रतिरोध किया तथा 1545 ईस्वी तक राज्य किया। इन अक्रमणों से चन्देल राज्य कमजोर हो गया। 1545 के अंत में जो बचा हुआ चन्देल राज्य यानी जेजाकभुक्ति बुंदेलो के पास गया वो बुंदेलखंड हो गया। चन्देल वंश के शासकों की राजधानी बुंदेलखंड में थी, जिसके कारण बुंदेलखंड के इतिहास में विशेष योगदान रहा है। 1203 में चन्देल साम्राज्य के पतन के बाद चन्देलों ने लगभग चार शताब्दियों 1205–1545 तक कालिंजर से चंबल से विंध्य के छोर तक शासन किया।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको चन्देल वंश के इतिहास, स्रोत तथा उसके शासकों के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

7.2 इतिहास के स्रोत

चन्देल वंश के इतिहास के सर्वाधिक प्रामाणिक साधन उसके शासकों द्वारा उत्कीर्ण करवाये गए बहुसंख्यक अभिलेख हैं। इनका विवरण इस प्रकार है–

1. खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०) के विक्रम संवत 1011 (954 ई०) तथा विक्रम संवत 1059 अर्थात् 1002 ई० के लेख ।
2. नन्यौरा (हमीरपुर, उ० प्र०) से प्राप्त विक्रम संवत 1055 अर्थात् 998 ई० का लेख
3. मऊप्रस्तर अभिलेख ।
4. छतरपुर का लेख ।
5. महोबा के किले की दीवार पर अंकित विक्रम संवत 1240 अर्थात् 1183 ई० का लेख ।

उपर्युक्त लेखों में खजुराहो से प्राप्त हुए लेखों का सर्वाधिक महत्व है। ये दोनों चन्देल शासक धंग देव के समय के हैं। इनमें चन्देल शासकों की वंशावली तथा यशोवर्मा और धंग की उपलब्धियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस प्रकार ये लेख चन्देल वंश इतिहास का अध्ययन करने के लिए हमारे प्रमुख साधन है। चन्देल राजाओं ने ही सर्वप्रथम देवनागरी लिपि का प्रयोग अपने लेखों में करवाया था।

चन्देल वंश के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों में कृष्णमिश्र के प्रबोध–चन्द्रोदय, राजशेखर का प्रबन्धकोश, चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो, जगनिक कृत आल्हाखण्ड आदि महत्त्वपूर्ण हैं। प्रबोधचन्द्रोदय से चन्देल तथा चेदि–राजाओं के संघर्ष का ज्ञान होता है। प्रबन्धकोश के मदनवर्म–प्रबन्ध से चन्देल नरेश मदनवर्मा के विषय में सूचना मिलती है। चन्दबरदाई तथा जगनिक के ग्रन्थ चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय तथा चन्देल शासक परमर्दि के बीच संघर्ष आदि का रोचक विवरण प्रस्तुत करते हैं। ये ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति पर भी प्रकाश डालते हैं।

मुस्लिम लेखकों के विवरण भी चन्देल इतिहास के ज्ञान में सहायता देते हैं। इनमें इब्न–उल–अतहर, निजामुद्दीन हसन निजामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अतहर तथा निजामुद्दीन महमूद गजनवी तथा चन्देल शासक विद्याधर के बीच होने वाले संघर्ष का विवरण देते हैं तथा विद्याधर की शक्ति की प्रशंसा करते हैं। हसन निजामी के विवरण से कुतुबुद्दीन द्वारा चन्देल राज्य पर आक्रमण तथा उसे जीते जाने का वृत्तान्त ज्ञात होता है।

चन्देल शासकों द्वारा बनवाये गए अनेक मंदिर तथा मूर्तियाँ खजुराहो से मिलती हैं। इनसे जहाँ एक और उनके धार्मिक विचारों तथा विश्वासों का पता लगता है वहीं दूसरी ओर कला एवं स्थापत्य का ज्ञान करने में भी सहायता मिलती है।

7.3 प्रारम्भिक इतिहास

चन्देलों की उत्पत्ति अन्धकारपूर्ण है। लेखों में उन्हें चन्द्रात्रेय ऋषि का वंशज कहा गया है जो अत्रि के पुत्र थे। चन्देल अपना संबंध चन्द्रमा से जोड़ते हैं जो इस बात का सूचक है कि वे चन्द्रवंशी क्षत्रिय रहे होंगे। चन्देल वंश की स्थापना 831 ई० के लगभग नन्नुक नामक व्यक्ति ने की थी। उसकी उपाधि 'नृप' तथा 'महीपति' की मिलती है। इससे सूचित होता है कि वह स्वतंत्र शासक न होकर कोई सामन्त सरदार रहा होगा। इस समय की सार्वभौम सत्ता प्रतिहारों की थी। अतः नन्नुक ने उन्हीं के अधीन अपना शासन प्रारम्भ किया।

नन्नुक के बाद क्रमशः वाक्पति, जयशक्ति, विजयशक्ति तथा राहिल के नाम मिलते हैं। इनमें से प्रत्येक ने एक दूसरे के बाद सामन्त रूप में ही शासन किया तथा यथासंभव अपनी शक्ति का विस्तार करते रहे। प्रारम्भिक राजाओं में राहिल कुछ शक्तिशाली था। खजुराहों लेख में उसकी शक्ति एवं वीरता की प्रशंसा की गई है। वह एक निर्माता भी था जिससे मंदिर एवं तालाब बनवाये थे। इनमें अजयगढ़ का मंदिर तथा महोबा के समीप राहिल सागर तालाब विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

7.4 चन्देल वंश का उदय काल

आरम्भिक चंदेल शासक प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करते थे, लगभग 900 ई0 तक चन्देल शासक प्रतिहारों की अधीनता में शासन करते हुए धीरे–धीरे अपनी शक्ति का विस्तार करते रहे। 900 ई0 के बाद के काल को हम चन्देल वंश का उत्थान काल कह सकते हैं।

7.4.1 हर्ष

लगभग 900 ई० तक चन्देलों ने प्रतिहारों की अधीनता में शासन किया तथा धीरे–धीरे अपनी शक्ति का विस्तार करते रहे। राहिल का पुत्र तथा उत्तराधिकारी हर्ष (900–925 ई०) एक शक्तिशाली शासक था जिसके समय में चन्देलों ने प्रतिहारों की दासता से मुक्त हुए। खजुराहो लेख में उसे 'परमभट्टारक' कहा गया हैं जो उसकी स्वतन्त्र स्थिति का द्योतक है। नन्यौरा पत्र से पता चलता है कि हर्ष की भयानक सेना ने चारोंओर आतंक फैला दिया तथा अनेक राजाओं को करद बना लिया। यह भी कहा गया है कि अपने शत्रुओं को पराजित करने के उपरान्त हर्ष ने सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा की। इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि हर्ष अपने पूर्वगामियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था। खजुराहो लेख के अनुसार उसने प्रतिहार शासक क्षितिपाल (महीपाल) को पुनः कन्नौज की गद्दी पर बैठाया। ऐसा प्रतीत होता है कि महीपाल को राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय ने परास्त कर कन्नौज की गद्दी से उतार दिया था परन्तु चन्देल हर्ष की सहायता पाकर वह पुनः कन्नौज जीतने में सफल हुआ। इससे यह सूचित होता है कि प्रतिहार साम्राज्य उत्तरोत्तर निर्बल हो रहा था, तथा उसके स्थान पर चन्देल शक्ति उभर रही थी। यद्यपि हर्ष के कुछ समय बाद तक भी चन्देल प्रतिहारों के सामन्त बने रहे तथापि उनकी अधीनता नाममात्र की ही थी। हर्ष ने अपने समकालीन दो राजवंशों चौहान तथा कलचुरी के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। उसने

अपने वंश की कन्या नट्टादेवी का विवाह कलचुरी नरेश कोक्कल के साथ तथा स्वयं अपना विवाह चाहमान वंश की कन्या कंचुका के साथ किया था। कलचुरी राष्ट्रकूटों के भी सम्बन्धी थे और कोक्कल ने अपनी कन्या का विवाह राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय के साथ किया था। इस प्रकार हर्ष को कलचुरियों के साथ–साथ राष्ट्रकूटों का भी समर्थन प्राप्त हो गया। अपने प्रतिहार अधिपति को खुली चुनौती दिए बगैर ही हर्ष ने धीरे–धीरे अपनी आन्तरिक एवं बाह्य शक्ति काफी मजबूत बना लिया। वह वैष्णव धर्मावलम्बी था।

7.4.2 यशोवर्मन

हर्ष के बाद उसका पुत्र यशोवर्मन (लक्ष्मणवर्मन) 930 ई० में गद्दी पर बैठा। वह एक साम्राज्यवादी शासक था। सौभाग्यवश तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियां उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सर्वथा अनुकूल थी। राष्ट्रकूटों के आक्रमण ने प्रतिहार साम्राज्य को जर्जर बना दिया था। गोविन्द चतुर्थ के समय में आन्तरिक कलह के कारण राष्ट्रकूटों की स्थिति भी दयनीय हो गई तथा वे उत्तर की राजनीति में सबल भूमिका नही निभा सकते थे। ये स्थितियाँ यशोवर्मन के लिए लाभकारी सिद्ध हुई तथा वह अपनी शक्ति एवं साम्राज्य को बढ़ाने में तत्पर हुआ। सर्वप्रथम उसने कन्नौज पर आक्रमण कर प्रतिहार साम्राज्य को समाप्तप्राय कर दिया। इसके बाद उसने राष्ट्रकूटों से कालंजर का प्रसिद्ध दुर्ग जीत लिया। खजुराहो के लेख में यशोवर्मन् को गौड़, खस, कोसल, कश्मीर, मालव, चेदि, कुरु, गुर्जर आदि का विजेता बताया गया है। उसके अनुसार वह गौड़रूपी क्रीडालता के लिए तलवार था, खसों की सेनाओं का सामना किया, कोशलों को लूटा, कश्मीर के शासक का नाश किया, मिथिला नरेश को शिथिल किया, मालवों के लिए काल के समान था, उसके सामने चेदि का शासक काँपने लगा, वह कुरूपी वृक्ष के लिए औधी के समान था तथा गुर्जरों को जलाने वाला था।' आगे कहा गया है कि 'भय से रहित होकर उसने उस चेदि नरेश को युद्ध में बुरी तरह पराजित कर दिया जिसके पास अगणित सेना थी। क्षेत्रों की विजय के समय उसके सैनिक धीरे–धीरे उन बर्फीली चोटियों पर चढ़ने में सफल हुए जहाँ उमा ने स्वर्ग के प्रत्येक वृक्ष से लाकर फूल एकत्र कर रखा था तथा जहाँ गंगा की तेज धाराओं की ध्वनि से उसकी अश्व सेना भय के कारण अव्यवस्थित हो गई थी। उसने शिव के निवास स्थल कालंजर पर्वत को आसानी से जीत लिया जो इतना ऊँचा है कि दोपहर में सूर्य की गति को बाधित कर देता है। उसने कलिन्द तथा जह की पुत्रियों यमुना तथा गंगा को बारी–बारी से अपना क्रीड़ा–सरोवर बनाया तथा उनके तटों पर शिविर स्थापित किया, किसी भी शत्रु द्वारा अनादूत, उसके भयंकर हाथियों के स्नान द्वारा उनका जल मैला कर दिया गया।'

स्पष्टतः यशोवर्मा ने अपना प्रभाव हिमालय से लेकर मालवा तक तथा कश्मीर से लेकर बंगाल तक बढ़ा लिया। यद्यपि यह विवरण अतिरंजित लगता है तथापि इसमें संदेह नहीं कि उसने उत्तर भारत के एक बड़े क्षेत्र को रौंद डाला था। चेदि पर उसकी विजय एक वास्तविकता है। उसका समकालीन चेदि नरेश संभवतः लक्ष्मणराज अथवा उसका पूर्वगामी युवराज प्रथम था जिसकी अगणित सेनाओं को यशोवर्मन् ने

भीषण युद्ध में पराजित किया होगा। गौड़नरेश पालवंशी राज्यपाल अथवा उसका पुत्र गोपाल द्वितीय रहा होगा। कश्मीर तथा खस के शासक की पहचान असंदिग्ध रूप से नहीं की जा सकती। मालवा, कोशल तथा कुरु अब भी कन्नौज के गुर्जर शासकों के अधिकार में थे जबकि मिथिला पर बंगाल और बिहार के पालों का अधिकार रहा होगा। ऐसा लगता है कि यशोवर्मन् का अपने समकालीन प्रतिहार अधिपति के साथ भीषण संघर्ष हुआ होगा। किन्तु धंग के खजुराहों लेख (वि० सं० 1011) से पता चलता है कि यद्यपि चन्देल स्वतंत्र हो गए थे तथापि वे नाममात्र के लिए हो गुर्जर–प्रतिहारों की अधिसत्ता स्वीकार करते थे।

इस प्रकार यशोवर्मन् एक पराक्रमी राजा था। एक सामन्त स्थिति से ऊपर उठकर अपनी उपलब्धियों के द्वारा उसने सार्वभौम पद को प्राप्त किया। विजेता होने के साथ–साथ वह एक महान् निर्माता भी था जिसने खजुराहो के प्रसिद्ध विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया। इस मंदिर में उसने बैकुण्ठ की मूर्ति स्थापित करायी थी जिसे उसने प्रतिहार शासक देवपाल से प्राप्त किया था। कनिंघम ने इसकी पहचान खुजराहों स्थित 'चतुर्भुज' नाम से विख्यात मंदिर से की है। इसके अतिरिक्त यशोवर्मन ने एक विशाल जलाशय (तडागार्णव) का भी निर्माण करवाया था।

इस प्रकार उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। प्रजा उसके शासन से अत्यन्त संतुष्ट एवं प्रसन्न थी। अपने राज्य में उसने निर्धनों, निर्बलों एवं दीन दुःखियों की भरपूर सहायता की तथा शास्त्रों के आदेशानुसार शासन किया।

7.4.3 धंग

यशोवर्मन् ने 950 ई० तक शासन किया। उसके बाद उसका पुत्र और उत्तराधिकारी धंग (950–1102 ई०) चन्देलवंश का राजा बना। वह पुष्पादेवी से उत्पन्न हुआ था। दुधई पाषाण लेख से पता चलता है कि कृष्ण नामक धंग का कोई छोटा भाई भी था। चन्देलों की वास्तविक स्वाधीनता का जन्मदाता यही था। उसके शासन काल की घटनाओं के विषय में हमें उसके खजुराहों के लेख से विस्तृत जानकारी मिलती है। वहाँ स्थित लक्ष्मणनाथ मंदिर से प्राप्त लेख धंग की उपलब्धियों का विवरण देता है जिसके अनुसार 'उसने अपनी शक्ति एवं बाहुबल से खेल–खेल में कालंजर तक, मालव नदी के किनारे भास्वत तक, वहाँ से कालिन्दी नदी के किनारे तक वहाँ से चेदि राज्य की सीमा तक तथा वहाँ से गोपगिरि तक का क्षेत्र जीत लिया था।'

जैसा कि पहले देखा जा चुका है, इसमें से अधिकांश भाग की विजय धंग के पिता यशोवर्मा के समय में ही सम्पन्न की जा चुकी थी। धंग ने पुनः उन क्षेत्रों में अपनी पकड़ मजबूत की होगी। धंग के पूर्व चन्देल नरेश नाममात्र की प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करते थे। उसने कालिंजर पर अपना अधिकार सुदृढ़ किया तथा उसे अपनी राजधानी बनाई। तत्पश्चात् उसने ग्वालियर, बनारस तथा प्रयाग तक के क्षेत्र को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। ग्वालियर की विजय धंग की सबसे महत्वपूर्ण सफलता थी। ऐसा

लगता है कि इसी की विजय के बाद चन्देलों ने प्रतिहारों की अधीनता से अपने को मुक्त कर दिया था। खजुराहो लेख के अन्त में अंकित है कि 'यशस्वी विनायक पालदेव के पृथ्वी का पालन करते समय कोई भी शत्रु उस पर अधिकार नहीं कर पाया तथा सभी का उन्मूलन कर दिया गया था। इससे स्पष्ट है कि 954–55 ई० तक चन्देल, कन्नौज की संप्रभुता को नाममात्र के लिए ही स्वीकार कर रहे थे। किन्तु इस तिथि के बाद के किसी चन्देल लेख में प्रतिहारों का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे सूचित होता है कि इसके (954–55 ई०) बाद धंग कन्नौज का वास्तविक एवं वैधानिक सम्राट बन गया था। 1036 ई० के सासु–बहु लेख में वज्रदमन नामक एक कछवाहा शासक का उल्लेख मिलता है जिसके विषय में यह कहा गया है कि उसने कन्नौज (गाधिनगर) को जीता था। वह धंग का समकालीन था कच्छपघात अथवा कछवाहा वंश के लोग पहले प्रतिहारों की अधीनता में ग्वालियर में शासन करते थे। वज्रदमन् ने पहले तो प्रतिहारों से ग्वालियर को जीता किन्तु बाद में उसे चन्देलों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद कई वर्षों तक कछवाहे चन्देलों के सामन्त बने रहे। विद्याधर के समय में उनका शासक अर्जुन चन्देलों का सामन्त था। विद्याधर के पश्चात् उन्होंने मालवा के परमार वंश की अधीनता स्वीकार कर ली। आर० एस० त्रिपाठी का विचार है कि यह वज्रदमन धंग का सामन्त था तथा उसी रूप में उसने कन्नौज की विजय प्राप्त की थी।

खजुराहो शिलालेख में दावा किया गया है कि कौसल, क्रथ (बरार), कुंतल और सिंहल के शासक धंग की अधीनता स्वीकार करते थे। यह भी कहा गया है कि आंध्र, अंग, कांची और राहा के राजाओं की पत्नियाँ युद्धों में उसकी सफलता के परिणामस्वरूप उसकी जेलों में रहती थीं। मऊ शिलालेख के अनुसार उसने कन्नौज (कान्यकुब्ज) के राजा को पराजित कर सम्राट पद प्राप्त किया था।

इन प्रशंसात्मक अतिशयोक्तियों के बावजूद ऐसा लगता है कि धंग ने व्यापक सैन्य अभियान किया था। कलंजरा के दुर्ग पर अधिकार करके उसने 954 ई. के लगभग अपनी स्वाधीनता घोषित की थी। उसने कालिंजर को अपनी राजधानी बनाकर स्वयं कालंजराधिपति की उपाधि धाटण की थी। किंतु ऐसा लगता है कि बाद में धंग ने अपनी राजधानी कालिंजर से खजुराहो स्थानांतरित कर दिया, क्योंकि धंग तथा चंदेल वंश के अन्य राजाओं के प्राचीनतम अभिलेख कालिंजर से नहीं, खजुराहो से मिलते हैं।

ग्वालियर की विजय धंग की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता थी। सास–बहू मंदिर शिलालेख के अनुसार गोपाद्री दुर्ग (ग्वालियर किला) कच्छपघाटों के अधिकार में था। कच्छपघाट संभवत इस समय चंदेलों के सामंत थे, और उन्होंने प्रतिहारों के विरुद्ध चंदेलों की मदद की थी। नन्यौरा ताम्र अनुदानपत्र लेख से सकेत मिलता है कि वाराणसी (काशिका) क्षेत्र भी धंग के नियंत्रण में था।

पूर्वी भारत में धगदेव को अंग और राहा में सैनिक सफलता मिली थी। धंग द्वारा पराजित अंग का राजा कोई पाल रहा होगा, क्योंकि कंबोजों और चंद्रों की स्वतंत्रता की घोषणा के बाद पाल साम्राज्य का

पतन हो रहा था। यहां के शासक की पहचान पाल साम्राज्य से कंबोज हड़पने वाले राजा से की जा सकती है। किंतु इस अभियान से धंग को कोई भौगोलिक लाभ नहीं हुआ

दक्षिण में आंध्र, कांची, कुंतल और सिंहल में धंग की सफलता का दावा काव्यात्मक अतिशयोक्ति ही है। संभवतः उसने विंध्य के दक्षिण में कुछ क्षेत्रों पर आक्रमण किया था। इस समय कोसल (दक्षिणी कोसल) का शासक सोमवंशी राजा महाभावगुप्त जनमेजय रहा होगा।

दुधई पाषाणलेख से पता चलता है कि धंग का कृष्ण (कान्हपा) नामक एक छोटा भाई भी था जो राज्य के दक्षिण–पश्चिमी प्रांतों का राज्यपाल था। संभवत धंग के निर्देश पर कृष्ण के मंत्री कौहिन्य वाचस्पति ने मालवा के परमारों ओर चेदि के कलचुरियों को पराजित किया था। कौहिन्य द्वारा पराजित चेदि राजा शंकरगण तृतीय रहा होगा।

धंग वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। शिव उसके विशिष्ट आराध्य देव थे। किन्तु उसके लेखों में प्रायः सभी हिन्दू देवी–देवताओं की उपासना की गई है। स्वयं ब्राह्मण धर्मानुयायी होते हुए भी वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। खजुराहो में उसने जैन मतानुयायियों को भी अपने धर्म के प्रचार तथा मंदिर बनवाने की सुविधा प्रदान किया था। खजुराहो से प्राप्त एक लेख से उसके काल की धार्मिक सहनशीलता सूचित होती है। घंग एक महान निर्माता भी था जिसने खजुराहो में अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण करवाया। इनमें जिननाथ, विश्वनाथ, वैद्यनाथ आदि मंदिर विशेष उल्लेखनीय है। जिननाथ मंदिर से धंग के शासन काल का एक लेख मिला है जिसमें जैन उपासकों को उसके द्वारा दिए गए दान का विवरण सुरक्षित है। वैद्यनाथ मंदिर में उत्कीर्ण लेख से पता चलता है कि इसका निर्माण गहपति कोक्कल द्वारा करवाया गया था। खजुराहों से प्राप्त एक अन्य लेख से पता चलता है कि उसके समय में भगवान शम्भु का एक भव्य मंदिर बनवाया गया तथा उसमें मरकतमणि तथा प्रस्तर से बने हुए दो लिंग स्थापित किए गए थे।

इस प्रकार धंग का सुदीर्घ शासनकाल प्रत्येक दृष्टि से सफलताओं का काल रहा। उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की तथा 'जीवेम शरदः शतम' की उक्ति चरितार्थ करते हुए अन्ततः प्रयाग स्थित गंगा–यमुना के संगम के पवित्र जल में निमीलित नेत्रों से रुद्र का ध्यान करते हुए तथा पवित्र मंत्रों का जाप करते हुए शरीर त्यागकर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

7.4.4 गण्ड

धंग के पश्चात् उसका पुत्र गण्ड चन्देल वंश का राजा बना। वह भी एक शक्तिशाली शासक था। उसके समय का कोई भी लेख हमें नहीं मिलता। लगता है कि वह अधिक आयु में शासक बना था और इसी कारण उसने न तो कोई विजय की और न कोई लेख ही लिखवाये। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि गण्ड के काल में चन्देलों की शक्ति अक्षुण्ण रही। त्रिपुरी के कलचुरी चेदि तथा ग्वालियर के कच्छपघात शासक उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। गण्ड ने 1002 से 1019 ई० तक राज्य किया।

गण्ड अपने पिता धंग के समान ही वीर एवं पराक्रमी शासक था जब महमूद गजनवी ने सिन्धु नदी पारकर पंजाब पर आक्रमण किया तो गण्ड ने अन्य भारतीय नरेशों के साथ मिलकर एक संघ बनाया जिसमें कन्नौज, ग्वालियर, कालिंजर अजमेर और मालवा के शासक सम्मिलित थे।

फरिश्ता के अनुसार इस संघ के सभी शासक मुसलमानों को देश से बाहर निकालना अपना परम् कर्तव्य समझते थे। युद्ध आनन्दपाल के नेतृत्व में लड़ा गया लेकिन आनन्द पाल का हाथी भड़क गया जिससे संघ की सेना में भगदड़ मच गयी और महमूद की विजय हुई।

यद्यपि गण्ड को महमूद के सामने पराजय झेलनी पड़ी लेकिन गण्ड बड़ा वीर और साहसी शासक था। उसने महमूद से जमकर संघर्ष किया जब तुर्क सेना के सामने बड़े–बड़े राजा–महाराजा धूल के समान उड़ रहे थे तब चन्देल नरेश गण्ड द्वारा महमूद की सेना से लोहा लेना वास्तव में उसकी वीरता और पराक्रम की कहानी कहता है। गण्ड एक योद्धा ही नहीं बल्कि निर्माणकर्ता भी था। खजुराहो में जगदम्बा और चित्रगुप्त मन्दिर का निर्माण उसी ने कराया था। निःसन्देह वह एक महान चन्देल शासक था। सन् 1017 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी।

7.4.5 विद्याधर

गण्ड के पश्चात् उसका पुत्र विद्याधर (1019–1029 ई०) शासक बना। वह चन्देल शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था। उसके शासन काल की घटनाओं के विषय में हम तत्कालीन लेखों तथा मुसलमान लेखकों के विवरण से जानकारी प्राप्त करते हैं। मुसलमान लेखक उसका उल्लेख 'नन्द' तथा 'विदा' नाम से करते हैं तथा उसे तत्कालीन भारत का सबसे शक्तिशाली राजा मानते हैं। अली–इन–उल–अतहर लिखता है कि उसके पास सबसे बड़ी सेना थी तथा उसके देश का नाम खजुराहो था । विद्याधर के राजा बनते ही महमूद गजनवी के नेतृत्व में तुर्कों के हिन्दू राजाओं पर आक्रमण तेज हो गए। किन्तु योग्य और साहसी विद्याधर विचलित नहीं हुआ तथा तुर्की से कड़ी मुठभेड़ के लिए प्रस्तुत हुआ । उसे अपने वंश की मर्यादा पर बड़ा गर्व था। 1019 ई० में महमूद ने कन्नौज के प्रतिहार शासक राज्यपाल के ऊपर आक्रमण किया। राज्यपाल ने डरकर बिना युद्ध के ही आत्मसमर्पण कर दिया। जब विद्याधर को इस घटना की सूचना मिली तो वह अत्यन्त कुछ हुआ तथा उसने राज्यपाल को दण्डित करने का निश्चय किया। मुस्लिम लेखक इब्न–उल–अतहर हमें बताता है कि विद्याधर ने कन्नौज पर आक्रमण किया तथा एक दीर्घकालीन युद्ध के पश्चात वहाँ के राजा राज्यपाल की इस कारण हत्या कर दी थी कि वह मुसलमानों के विरुद्ध भाग खड़ा हुआ तथा अपना. राज्य उन्हें समर्पित कर दिया था।' इस विवरण की पुष्टि कुछ अभिलेखों से भी होती है। इस बात का पहले उल्लेख किया जा चुका है कि ग्वालियर के कछवाहा नरेश चन्देलों के सामन्त थे। इस वंश के विक्रम सिंह के दूबकुन्ड लेख (1088 ई०) से पता लगता है कि उसके एक पूर्वज अर्जुन ने विद्याधर की ओर से युद्ध करते हुए कन्नौज के राजा राज्यपाल को मार डाला था। चन्देल वंश का एक लेख महोबा

से मिलता है। उससे भी विद्याधर द्वारा राज्यपाल के मारे जाने की बात पुष्ट होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि विद्याधर ने अपने पिता गण्ड के काल में सेनापति के रूप में ही राज्यपाल का वध किया था, न कि राजा होने के बाद। इस मत के पोषक लोग मुसलमानों के 'नन्द' की पहचान 'गण्ड' से करते हैं। किन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता । दूबकुन्ड के लेख से स्पष्ट है कि उस समय विद्याधर ही शासन कर रहा था। उसमें उसे 'विद्याधरदेव' कहा गया है तथा उसके पिता गण्ड का नामोल्लेख नहीं मिलता। राज्यपाल का वध करने से विद्याधर को ख्याति चतुर्दिक् फैल गई तथा वह उत्तर भारत का सार्वभौम सम्राट बन गया। कन्नौज में उसने अपनी ओर से राज्यपाल के पुत्र त्रिलोचनपाल को राजा बनाया तथा उसने विद्याधर की अधीनता स्वीकार कर ली। अन्य हिन्दू शासकों ने भी उसका लोहा मान लिया। यह महमूद गजनवी को खुली चुनौती थी जिसका सामना करने के लिए वह प्रस्तुत हुआ।

चन्देलों पर महमूद का प्रथम आक्रमण 1019–20 ई० में हुआ। मुस्लिम स्रोतों से पता चलता है कि दोनों के बीच किसी नदी के किनारे भीषण युद्ध हुआ किन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। इस युद्ध में विद्याधर ने राजनीतिक सूझ–बूझ का परिचय दिया तथा रात्रि के अन्धकार में युद्ध स्थल उपयुक्त न होने के कारण अपनी सेना को हटा लिया। महमूद भी गजनी वापस लौट गया। मुस्लिम लेखक विद्याधर के मैदान से हटने को ही महमूद की विजय मानते हैं जो उचित नहीं लगता। यदि महमूद ने वास्तव में विद्याधर को पराजित किया होता तो वह उसका पीछा करते हुए उसके राज्य में लूट–पाट एवं कल्लेयाम करता, न कि युद्ध क्षेत्र से ही गजनी वापस लौटता। अतः दुबारा शक्ति जुटाकर उसने 1022 ई० में विद्याधर के राज्य पर आक्रमण किया। सबसे पहले उसने ग्वालियर के दुर्ग का घेरा डाला जो चार दिनों तक चलता रहा। अन्ततोगत्वा दुर्गपाल ने 35 हाथियों की भेंट कर उससे पीछा छुड़ाया। तत्पश्चात् उसने कालिंजर के दुर्ग का घेरा डाला। शक्ति तथा अभेद्यता में वह दुर्ग सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में बेजोड़ था। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद दुर्ग को जीत नहीं सका तथा दोनों में संधि हो गयी। स्वयं महमूद भी विद्याधर की शक्ति से सशंकित था। मुसलमान लेखकों के विवरण से ऐसा आभास मिलता है कि दीर्घकालीन घेराबन्दी के बाद भी महमूद को कोई सफलता नहीं प्राप्त हुई। अतः मजबूर होकर उसे उससे संधि करनी पड़ी तथा महमूद वापस लौट गया। इसके बाद उसकी चन्देल राज्य पर आक्रमण करने की दुबारा हिम्मत नहीं पड़ी तथा विद्याधर और महमूद परस्पर मित्र बन गए। दोनों के बीच यह मित्रता कम से कम 1029 ई० तक बनी रही जबकि महमूद ने अपने शत्रु सेल्जुक के एक पुत्र को बन्दी बनाकर भारत में कालंजर के दुर्ग में भेज दिया था। इस प्रकार विद्याधर ही अकेला ऐसा भारतीय नरेश था जिसने महमूद गजनवी की महत्वाकांक्षाओं का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। इस वीरतापूर्वक कार्य ने उसे तत्कालीन भारत के शासकों में सिरमौर बना दिया। इसके अतिरिक्त विद्याधर ने मालवा के परमार शासक भोज तथा कलचुरी शासक गांगेयदेव को भी पराजित कर अपनी अधीनता में किया। चन्देल वंश के एक अभिलेख से पता चलता है कि उपर्युक्त दोनों ही नरेश शिष्य

के समान डरकर विद्याधर की पूजा किया करते थे। मदनवर्मा के समय के मऊ प्रस्तर लेख से पता चलता है कि शिवनाग उसका यशस्वी मंत्री था जो गण्ड एवं धंग के मुख्यमंत्री प्रभास का पुत्र था। बताया गया है कि सचिव पद प्राप्त करते ही उसने अपने उत्कृष्ट आचरण से पृथ्वी के समस्त राजाओं को विद्याधर का करद बना दिया तथा उसका शासन पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ हो गया था। इस प्रकार वह निश्चय ही अपने समय का एक महान शासक था। उसके पितामह धंग ने जिस विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था, विद्याधर ने अपने वीरतापूर्वक कृत्यों द्वारा उसे गौरवान्वित कर दिया। मुस्लिम लेखकों ने भी उसकी शक्ति एवं उसके साम्राज्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उसका शासन–काल चन्देल साम्राज्य के चरम उत्कर्ष को व्यक्त करता है।इस प्रकार धंग तथा विद्याधर चन्देल शक्ति के आधार स्तम्भ तथा साम्राज्य के मुख्य निर्माता थे।

7.5 पतन

1162 में सम्राट यशोवर्मन द्वीतीय और उनके भतीजे दस्सराज और वत्सराज की हत्या हो गई और यशोवर्मन के पुत्र परमर्दीदेव उस समय मात्र 5 साल के थे, जिसके चलते चन्देल साम्राज्य के कुछ सामंत राजा परिस्थिति का लाभ उठा स्वतंत्र हो गए।

परमर्दिदेव (शासनकाल 1165–1203 ईस्वी) छोटी उम्र में चन्देल राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। परमर्दिदेव ने सभी विद्रोही राजाओं को हराकर उन्हे पुनः चन्देल साम्राज्य का सामंत राजा बना दिया। अब परमर्दिदेव के सामने दो राजा थे, एक काशी के राजा जयचंद और दूसरा अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान, जिसमे जयचंद उनके परममित्र थे इसीलिए मित्र राज्य बन गए वही पृथ्वीराज चौहान से जयचंद के साथ की वजह से दुश्मनी हुए। परमर्दिदेव का पुत्र ब्रम्हजित एवम पृथ्वीराज की पुत्री बेला एक दूसरे से प्रेम करते थे परंतु काशी के गहरवारो से चन्देलो की मित्रता होने के कारण पृथ्वीराज ने विवाह के लिए मना कर दिया। अब युवराज ब्रम्हजित और सेनापति आल्हा चन्देल जो की परमर्दिदेव का भतीजे था, उन्होंने दिल्ली पे चढ़ाई कर दी। दिल्ली के युद्ध (1180) में पृथ्वीराज को हरा ब्रम्हजित ने बेला से विवाह किया। गौने के वक्त पृथ्वीराज के पुत्रो ने ब्रम्हजित को घायल कर मारने का प्रयास किया जिसके बाद युद्ध की परिस्थिति अब बदले में बदल गई। अब परमर्दिदेव, आल्हा और ऊदल ने अजमेर पे हमला किया और पृथ्वीराज के पुत्रो को बंदी बना महोबा ले आए। पृथ्वीराज ने 1182 में महोबा पे हमला किया, महोबा के युद्ध में जिसमे सेनापति ऊदल और युवराज ब्रम्हजित, राजकुमार इंद्रजीत और गहड़वाल के राजकुमार लक्ष्मणचंद्र धोखे मारे गए वहीं चौहान पक्ष के 2 लाख सैनिकों को मार दिया गया। युद्ध में आल्हा ने पृथ्वीराज चौहान की टुकड़ी पर हमला कर दिया। युद्ध में आल्हा ने पृथ्वीराज को बुरी तरह पराजित कर मूर्छित कर दिया, लेकिन पृथ्वीराज के निहत्था होने के कारण उन्हें गुरु के आज्ञा वश जीवनदान देना पड़ा। इस प्रकार महोबा के युद्ध में विजय चन्देलो की हुई एवं पृथ्वीराज मदनपुर में छुपते हुए अपने ननिहाल के रास्ते दिल्ली चला गया।

आल्हा के सन्यास के बाद चन्देलों और चौहानों में युद्ध फिर से शुरू हुआ। 1187 में युद्ध हुआ, इस बार युद्ध का नेतृत्व खुद परमर्दिदेव कर रहा था। कीर्तिसागर के युद्ध में परमर्दिदेव चन्देल ने पृथ्वीराज चौहान को बुरी तरह परास्त किया जाता उसे बेइज्जत कर रणभूमि से भागने पर विवश किया।

परमर्दिदेव 1203 में कुतुबद्दीन ऐबक के विरुद्ध लड़ा परंतु युद्ध में सेना के समय पे ना पहुँचने के कारण युद्ध करते हुए मारा गया। कुछ मुस्लिम स्त्रोत कहते है की सेनापति अजय देव ने परमर्दिदेव को मार दिया और चन्देल साम्राज्य पर कब्जा कर लिया, सम्राट परमर्दिदेव की मृत्यु होते हुई महोबा की सेना तुर्क सेना से हार गई।

7.6 सारांश

चन्देल राजाओं का शासन काल कला की उन्नति के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस युग की कला के इतिहास–प्रसिद्ध उदाहरण आज भी खजुराहो (छतरपुर, म०प्र०) में विद्यमान हैं। यहाँ लगभग 30 मंदिर खड़े हैं जो विष्णु, शिव तथा जैन तीर्थंकरों की उपासना में निर्मित कराये गए हैं। मंदिरों में 'कन्डारिया महादेव' का मंदिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मंदिर के गर्भगृह में शिव, गणेश तथा प्रमुख हिन्दू देवियों की मूर्तियाँ बनी हैं। यहाँ के अनेक प्रमुख मंदिरों में जगदम्बिका मंदिर, चित्रगुप्त मंदिर, विश्वनाथ मंदिर तथा पार्श्वनाथ का मंदिर विशेषरूप से उल्लेखनीय है। सभी मंदिरों के भीतरी तथा बाहरी दीवारों पर अनेक भव्य मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। देवी–देवताओं के अतिरिक्त अनेक अप्सराओं, नायिकाओं तथा सामान्य नारियों की मूर्तिया भी खजुराहो से प्राप्त होती हैं। कुछ मूर्तियाँ अत्यन्त अश्लील हो गई हैं जो धर्म पर तांत्रिक विचारधारा के प्रभाव को व्यक्त करती हैं। समग्ररूप से खजुराहो की कला अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह चन्देल नरेशों की अमर कीर्ति का प्रतीक है।

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4. चन्देल वंश के इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

5. चन्देल वंश के इतिहास के स्रोतों के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

6. चन्देल वंश के शक्तिशाली शासकों के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये। चन्देल वंश के उदय के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिये।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

बी.ए. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया

सी.वी.वैद्य : हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिंदू इंडिया

एन.एस. बोस : हिस्ट्री ऑफ दि चंदेलाज

केशवचंद्र मिश्र : चन्देल और उनका राजत्वकाल

हेमचंद्र रे, मजुमदार तथा पुसालकर : दि स्ट्रगिल फॉर दि एंपायर

कृष्णदेव : दि टेंपुल ऑफ खजुराहो ऐंशेंट इंडिया, भाग15

नेमाई साधन बोस : हिस्ट्री ऑफ दि चंदेलाज

इकाई 8—परमार वंश

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 परमार वंश के इतिहास के स्रोत

8.3 प्रारम्भिक इतिहास

- 8.3.1 हर्ष अथवा सीयक द्वितीय (945ई0—972ई०)
- 8.3.2 वाक्पति मुंज
- 8.3.3 सिन्धुराज
- 8.3.4 भोज

8.4 भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

8.5 परमार सत्ता का अन्त

8.6 सारांश

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 प्रस्तावना

अग्निकुण्ड से जिन राजपूत वंशों की उत्पत्ति वर्णित है, उनमें धारा अथवा मालवा के परमार प्रमुख हैं। इस वंश के साहित्य तथा लेखों में स्पष्टतः अग्निकुण्ड की कथा का उल्लेख किया गया है। पद्मगुप्त, जो परमार काल के प्रसिद्ध कवि थे, के ग्रन्थ 'नवसाहसांकचरित' में परमार वंश की उत्पत्ति आबू पर्वत से बताई गई है। तदनुसार ऋषि वशिष्ठ इक्ष्वाकुवंश के पुरोहित थे। उनकी कामधेनु नामक गाय को विश्वामित्र ने चुरा लिया। वशिष्ठ ने गाय प्राप्त करने के लिए आबू पर्वत पर यज्ञ किया। अग्नि में डाली गई आहुति से एक धनुर्धर वीर उत्पन्न हुआ जिसने विश्वामित्र को परास्त कर गाय को पुनः वशिष्ठ को समर्पित कर दिया। प्रसन्न होकर ऋषि ने इस वीर का नाम 'परमार' रखा जिसका अर्थ है 'शत्रु का नाश करने वाला' इसी द्वारा स्थापित वंश परमार कहा गया। इस कथानक का उल्लेख धनपाल कृत तिलकमंजरी तथा परमार वंश के उदयपुर, आबूपर्वत, वसन्तगढ़ आदि स्थानों से प्राप्त लेखों में भी हुआ है। परमारों की उत्पत्ति संबंधी इस अनुश्रुति पर टिप्पणी करते हुए गौरीशंकर ओझा ने मत व्यक्त किया है कि चूंकि इस वंश के आदि पूर्वज धूमराज के नाम का संबंध अग्नि से था, इसी कारण विद्वानों ने इस वंश को अग्निवंशी स्वीकार कर लिया। किन्तु यह पूर्णतया अनुमानपरक है जिसका कोई आधार नहीं मिलता। हलायुध की 'पिंगल सूत्रवृत्ति' में परमारों को 'ब्रह्मक्षत्र कुलीन' बताया गया है। परमार भी अपना संबंध ऋषि वशिष्ठ से जोड़ते हैं। ऐसी स्थिति में यही मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है कि परमार पहले ब्राह्मण थे जो बाद में शासन करने के कारण क्षत्रियत्व को प्राप्त हुए। उल्लेखनीय है कि इस वंश के प्रथम शासक उपेन्द्रराज को उदयपुर लेख में 'द्विजवर्गरत्न' कहा गया है। पूर्व मध्यकाल में ब्रह्मक्षत्र परम्परा के व्यापक प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको परमार वंश के उदय के कारणों, उनके शासकों, कार्यशैली के बारे में जानकारी प्रदान करना है।

8.2 परमार वंश के इतिहास के स्रोत

परमार वंश का इतिहास हम अभिलेख, साहित्य तथा विदेशी विवरण के आधार पर ज्ञात करते हैं। इस वंश के अभिलेख में सर्वप्रथम सीयक द्वितीय का हरसौल अभिलेख (948 ई०) है जिससे परमार वंश का प्रारंभिक इतिहास ज्ञात होता है। अन्य लेखों में वाक्पति मुंज का उज्जैन अभिलेख (980 ई०), भोज के बांसवाड़ा तथा बेतमा के अभिलेख, उदयादित्य के समय की उदयपुर–प्रशस्ति, लक्ष्मदेव की नागपुर– प्रशस्ति आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदयपुर–प्रशस्ति है जो भिलसा के समीप उदयपुर नामक स्थान के नीलकण्ठेश्वर मंदिर के एक शिलापट्ट के ऊपर उत्कीर्ण है। यह परमार वंश के शासकों के नाम तथा उनकी उपलब्धियों को ज्ञात करने का प्रमुख साधन है तथा इस प्रकार का विवरण अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

परमार वंश के इतिहास का ज्ञान हमें विभिन्न साहित्यिक ग्रन्थों से भी प्राप्त होता है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है पद्मगुप्त द्वारा विरचित नवसाहसाङ्कचरित। पद्मगुप्त परमार नरेशों वाक्पतिमुंज तथा सिन्धुराज का राजकवि था । यद्यपि इस ग्रन्थ में उसने मुख्यतः अपने आश्रयदाता राजाओं के जीवन तथा कृतियों का ही वर्णन किया है तथापि इसमें परमार वंश के इतिहास से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथ्य भी लिखित हैं। हर्षचरित की प्रकृति का यह एक चरित काव्य ही है। इसके अतिरिक्त जैन लेख मेरुतुंग के प्रबन्धचिन्तामणि से भी परमार वंश के इतिहास, विशेषकर गुजरात के चालुक्य शासकों के साथ उनके सम्बन्धों का ज्ञान होता है। वाक्पतिमुंज तथा भोज स्वयं विद्वान् तथा विद्वानों के संरक्षक थे। उनके काल में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। उनके अध्ययन से हम तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

मुसलमान लेखकों तथा ग्रन्थों के विवरण से भी परमार वंश के कुछ शासकों के विषय में कुछ बातें ज्ञात होती हैं। इनमें अबुलफजल की आइन–ए–अकबरी, अलबरूनी तथा फरिश्ता के विवरण आदि उल्लेखनीय हैं। मुसलमान लेखक भोज की शक्ति तथा विद्वता की प्रशंसा करते हैं।

8.3 प्रारम्भिक इतिहास

परमार वंश की स्थापना दसवीं शताब्दी ई० के प्रथम चरण में उपेन्द्र अथवा कृष्ण राज नामक व्यक्ति ने की थी। धारा नामक नगरी परमार वंश की राजधानी थी। उदयपुर लेख से पता चलता है कि उसने स्वयं अपने पराक्रम से राजत्व का उच्च पद प्राप्त किया था (शौर्याज्जितोत्तुंगनृपत्वमाणः)। लेकिन यह निश्चित नहीं हैं कि कब और किन परिस्थितियों में उपेन्द्र ने मालवा पर अधिकार किया। इस समय का राजनीतिक वातावरण काफी अशान्तपूर्ण था तथा प्रतिहारों एवं राष्ट्रकूटों में संघर्ष चल रहा था। प्रतिपाल भाटिया का अनुमान है कि वत्सराज की ध्रुव द्वारा पराजय के बाद उपेन्द्र को अपनी शक्ति विस्तार का अवसर मिला होगा । गोविन्द तृतीय के उत्तरी अभियान के दौरान उसने राष्ट्रकूटों की अधीनता स्वीकार कर लिया। किन्तु नागभट्ट के समय में प्रतिहारों के शक्तिशाली हो जाने पर उपेन्द्र तथा उसके उत्तराधिकारी उनके अधीन हो गए।' पद्मगुप्त, उपेन्द्र की प्रशंसा में लिखता है कि उसने प्रजा के अनेक करों में छूट कर दी तथा वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया। उपेन्द्र के बाद कई छोटे–छोटे शासक हुए। इनमें वैरिसिंह प्रथम, सीयक प्रथम, वाक्पति प्रथम तथा वैरिसिंह द्वितीय के नाम मिलते हैं जिन्होंने 790 ई० के लगभग से 945 ई० तक शासन किया। इनकी स्थिति अधीन अथवा सामन्त शासकों जैसी थी जिनकी किसी विशेष उपलब्धि के विषय में हमें ज्ञात नहीं है। ये सभी राष्ट्रकूटों तथा प्रतिहारों की अधीनता में राज्य करते थे।

8.3.1 हर्ष अथवा सीयक द्वितीय (945ई0–972ई०)

परमार वंश को स्वतंत्र स्थिति में लाने वाला पहला शासक हर्ष अथवा सीयक द्वितीय वैरिसिंह द्वितीय का पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसके पिता के समय में प्रतिहारों ने मालवा पर अधिकार कर लिया था तथा परमारों को माण्डू तथा धारा से निर्वासित कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय परमारों ने भागकर राष्ट्रकूटों के यहाँ शरण ले ली थी। अस्तु परमार तथा राष्ट्रकूट सत्ता से अपने वंश को

मुक्त कराना सीयक की प्राथमिकता थी। प्रतिहार साम्राज्य इस समय पतनोन्मुख स्थिति में था। इसका लाभ उठाते हुए सीयक ने मालवा तथा गुजरात में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। तत्पश्चात् उसने अन्य क्षेत्रों में अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया। उसके हर्सोल लेख से पता चलता है कि योगराज नामक किसी शत्रु को उसने जीता था। इसकी पहचान संदिग्ध है। संभवतः वह गुजरात के चालुक्यवंश से संबंधित प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल प्रथम का कोई सामन्त था। नवसाहसांकचरित उसे हूणमण्डल की विजय का श्रेय प्रदान करता है। तदनुसार सीयक ने हूण राजकुमारों की हत्या कर उनकी रानियों को विधवा बना दिया था। हूणमण्डल से तात्पर्य मध्य प्रदेश के इन्दौर के समीपवर्ती प्रदेश से है जिसे जीतकर सीयक ने अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था। किन्तु उसकी बढ़ती हुई शक्ति पर जेजाकभुक्ति के चन्देलों ने अंकुश लगाया। खुजराहों लेख से पता चलता है कि चन्देल शासक यशोवर्मन ने सीयक को पराजित किया था। उसे 'मालवों के लिए काल के समान' (काल–वन्मालवानाम) कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यशोवर्मन ने परमार राज्य के किसी भाग पर अधिकार नहीं किया तथा उसका युद्ध केवल परमारों को आतंकित करने के लिए ही था।

सीयक को सबसे महत्वपूर्ण सफलता राष्ट्रकूटों के विरुद्ध मिली तथा उसने अपने वंश को राष्ट्रकूटों की अधीनता मुक्त कराया। नर्मदा नदी के तट पर राष्ट्रकूट नरेश खोटिंग की सेनाओं के साथ युद्ध हुआ जिसमें सीयक की विजय हुई। उसने राष्ट्रकूट नरेश का उसकी राजधानी मान्यखेत तक पीछा किया तथा वहाँ सेबहुत अधिक सम्पत्ति लूट कर लाया। वह अपने साथ ताम्रपत्रों की अभिलेखागार में सुरक्षित प्रतियां भी उठा ले गया। इन्हीं में से एक लेख गोविन्द चतुर्थ का था जिसपर बाद में एक ओर मुंज ने अपना लेख खुदवाया था। राष्ट्रकूटों के साथ संघर्ष में सीयक का एक सेनापति भी मारा गया। उदयपुर लेख में इस विजय का उल्लेख अत्यन्त काव्यात्मक ढंग से करते हुए कहा गया है कि सीयक ने 'भयंकरता में गरुड़ की तुलना करते हुए खोट्टिग की लक्ष्मी को युद्ध में छीन लिया।' उसकी इस विजय के परिणामस्वरूप परमार राज्य की दक्षिणी सीमा ताप्ती नदी तक जा पहुँची। इस प्रकार सीयक एक शक्तिशाली सम्राट सिद्ध हुआ जिसकी विजयों ने परमार साम्राज्य की सुदृढ़ आधारशिला प्रस्तुत किया।

8.3.2 वाक्पति मुंज

सीयक के दो पुत्र थेः मुंज तथा सिन्धुराज। इनमें पहला उसका दत्तक पुत्र था, लेकिन सीयक की मृत्यु के बाद वही गद्दी पर बैठा। इतिहास में वह वाक्पति मुंज तथा उत्पलराज के नाम से भी प्रसिद्ध है। प्रवन्धचिन्तामणि में उसके जन्म के विषय में एक अनोखी कथा मिलती है। इसके अनुसार सीयक को बहुत दिन तक कोई पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। संयोगवश उसे एक दिन मुंज घास में पड़ा एक नवजात शिशु मिला। सीयक उसे उठाकर घर लाया तथा पालन पोषण करके बड़ा किया। बाद में उसकी अपनी पत्नी से सिन्धुराज नामक पुत्र भी उत्पन्न हो गया। किन्तु वह अपने दत्तक पुत्र से पूर्ववत् स्नेह करता रहा। मूंज में

पड़े होने से ही उसका नाम मुंज रखा गया। सीयक ने स्वयं उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। किन्तु कुछ विद्वान इस कथानक की ऐतिहासिकता में संदेह व्यक्त करते हुए मत देते हैं कि मुंजराज नाम की व्याख्या ढूंढ़ने के उद्देश्य से इसका सृजन किया गया है।

वाक्पति मुंज एक शक्तिशाली शासक था। राज्यारोहण के पश्चात् वह अपने साम्राज्य को विस्तृत करने में जुट गया। इस उद्देश्य से उसने अनेक युद्ध किए। मुंज ने कलचुरी शासक युवराज द्वितीय को हराकर उसकी राजधानी त्रिपुरी को लूटा उदयपुर लेख में इसका विवरण सुरक्षित है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुंज त्रिपुरी पर अधिक समय तक अधिकार नहीं रख पाया तथा उसने कलचुरी राज्य से संधि कर उसकी राजधानी वापस कर दिया। हूण मण्डल के हूणों ने उसकी अधीनता स्वीकार की। इसमें मालवा क्षेत्र सम्मिलित था। गाओनी लेख से पता चलता है कि मुंज ने इस क्षेत्र में स्थित वणिका नामक ग्राम ब्राह्मणों को दान में दिया था। यह उसकी हूण क्षेत्र पर विजय एवं अधिकार का स्पष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार उसने मेवाड़ के गुहिल वंशी शासक शक्तिकुमार को हराकर उसकी राजधानी आघाट (उदयपुर स्थित अहर) को लूटा। राष्ट्रकूट वंशी धवल के बीजापुर लेख से पता चलता है कि गुहिल नरेश ने भागकर धवल के दरबार में शरण ली। इस युद्ध में गुर्जर वंश का कोई शासक भी शक्तिकुमार की ओर से लड़ा था किन्तु वह भी मुंज द्वारा पराजित किया गया। इस गुर्जर नरेश की पहचान के विषय में मतभेद है। दशरथ शर्मा तथा एच० सी० राय इसे चालुक्य नरेश मूलराज मानते हैं। मजूमदार तथा भाटिया के अनुसार वह कन्नौज के प्रतिहारों का कोई सामन्त था। नड्डुल के चौहानोंसे भी उसका युद्ध हुआ। चौहान शासक बलिराज को हराकर उसने आबू पर्वत तथा जोधपुर के दक्षिण का भाग छीन लिया। पश्चिम में उसने लाट राज्य पर आक्रमण किया। इस समय लाट प्रदेश पर कल्याणी के चालुक्यों का अधिकार था जहाँ तेल द्वितीय का सामन्त वारप्य तथा उसका पुत्र गोग्गौराज शासन करते थे। मुंज ने वारप्प को परास्त किया। परिणामस्वरूप उसका चालुक्य नरेश तैल से संघर्ष छिड़ गया। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि मुंज ने छः बार तैल की सेनाओं को पराजित किया और अन्त में अपने मंत्री रुद्रादित्य के परामर्श की उपेक्षा करते हुए उसने गोदावरी नदी पारकर स्वयं राष्ट्रकूट राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसे राष्ट्रकूटों की शक्ति का सही अन्दाजा नहीं था। मुंज राष्ट्रकूट सेनाओं द्वारा पराजित किया गया तथा बन्दी बना लिया गया। तैल ने नर्मदा नदी तक परमार राज्य के दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया। उसने कारागार में ही परमार नरेश मुंज का वध करवा दिया। प्रवन्धचिन्तामणि के अतिरिक्त कैथोम तथा गड़ग जैसे चालुक्य लेखों से भी तैल द्वारा मुंज के वध की सूचना मिलती है। इस प्रकार उसका दुःखद अन्त हुआ।

मुंज ने 992 ई० से 998 ई० तक राज्य किया। विजेता होने के साथ–साथ वह स्वयं एक उच्चकोटि का कवि एवं विद्या और कला का उदार संरक्षक था। पद्मगुप्त, धनंजय, धनिक, हलायुध, अमितगति जैसे विद्वान् उसकी राजसभा को सुशोभित करते थे। पद्मगुप्त उसको विद्वता एवं विद्या के प्रति अगाध प्रेम

कीचर्चा करते हुए लिखता है कि 'विक्रमादित्य के चले जाने तथा सातवाहन के अस्त हो जाने पर सरस्वती को कवियों के मित्र मुंज के यहाँ ही आश्रय प्राप्त हुआ था। वह महान् निर्माता भी था जिसने अनेक मंदिरों तथा सरोवरों का निर्माण करवाया था। अपनी राजधानी में उसने 'मुंजसागर' नामक एक तालाब बनवाया तथा गुजरात में मुंजपुर नामक नये नगर की स्थापना करवायी थी। उज्जैन, धर्मपुरी, माहेश्वर आदि में उसने कई मंदिरों का निर्माण भी करवाया। इस प्रकार उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। श्रीवल्लभ, पृथ्वीवल्लभ, अमोघवर्ष आदि उसकी प्रसिद्ध उपाधियां थी।

8.3.3 सिन्धुराज

मुंज के कोई पुत्र नहीं था, अतः उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई सिन्धुराज शासक बना। उसने कुमारनारायण तथा साहसाङ्क जैसी उपाधियां धारण की। वह भी महान् विजेता और साम्राज्य निर्माता था। राजा बनने के पश्चात् वह अपने साम्राज्य की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के कार्य में जुट गया। उसका सबसे पहला कार्य कल्याणी के चालुक्यों से अपने उन क्षेत्रों को जीतना था जिन पर मुंज को हराकर तैलप ने अधिकार कर लिया था। उसका समकालीन चालुक्य नरेश सत्याश्रय था। नवसाहसांकचरित से पता चलता है कि सिन्धुराज ने कुन्तलेश्वर द्वारा अधिग्रहीत अपने राज्य को तलवार के बल पर पुनः अपने अधिकार में किया। यहां कुन्तलेश्वर से तात्पर्य सत्याश्रय से ही है। तत्पश्चात् उसने अन्य स्थानों की विजय का कार्य प्रारम्भ किया। उसकी कुछ विजयों के विषय में पद्मगुप्त सूचना देता है। वह उसे कोशल, लाट, अपरान्त तथा मुरल का विजेता बताता है। यहां कौशल से तात्पर्य दक्षिणी कोशल से हैं जो वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य में स्थित (रायपुर विलासपुर क्षेत्र) था। लाट प्रदेश गुजरात में था जहां कल्याणी के चालुक्य सामन्त गोग्गीराज शासन कर रहा था। सिन्धुराज ने उस पर आक्रमण कर उसे परास्त किया तथा वहीं से अपरान्त (कोकण) की विजय की जहां शिलाहार वंश का शासन था। शिलाहरों ने उसकी अधीनता मान ली। मुरल की पहचाननिश्चित नहीं है। यह राज्य संभवतः अपरान्त और केरल के बीच स्थित था। पता चलता है कि बस्तर राज्य के नलवंशी शासक ने वज्र (वैरगढ़, म० प्र०) के अनार्थ शासक वज्रकुश के विरुद्ध सिन्धुराज से सहायता की याचना की। परिणामस्वरूप सिन्धुराज ने विद्याधरों को साथ लेकर गोदावरी पार किया तथा अनार्य शासक के राज्य में जाकर उसकी हत्या कर दी। अनुग्रहीत नलशासक ने सिन्धुराज के साथ अपनी कन्या शशिप्रभा का विवाह कर दिया। विद्याधर थाना जिले के शिलाहार थे जिनका शासक अपराजित था। उत्तर की ओर उसने हुण मण्डल के शासक को हराया। उदयपुर लेख तथा नवसाहसांकचरित दोनों में हूणों का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धुराज ने हूणों का पूर्णरूपेण दमन कर दिया तथा बाद में विद्रोह खड़ा करने की हिम्मत उनमें नहीं रही। इसी समय वागड के परमार सामन्त चण्डप ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया किन्तु सिंधुराज ने उसके विद्रोह को शान्त किया। किन्तु गुजरात के चालुक्य शासक मूलराज प्रथम के पुत्र चामुण् डराज के हाथों सिन्धुराज को पराजित होना

पड़ा। जयसिंह सूरि की कुमारभूपालचरित तथा वाडनगर लेख से इसकी सूचना मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धुराज को पराजित हो जाने के बाद युद्धभूमि से भागकर अपनी जान बचानी पड़ी। किन्तु इस असफलता के बावजूद वह एक योग्य शासक था जिसने अपने भाई मुंज के काल में लुप्त हुई परमार वंश की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। उसकी मृत्यु 1000 ई० के लगभग हुई।

8.3.4 भोज

इन्द्ररथ, सिन्धुराज के पश्चात् उसका पुत्र भोज परमार वंश का शासक हुआ। यह इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक था जिसके समय में राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से परमार राज्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। भोज के शासन काल की घटनाओं की सूचना देने वाले आठ अभिलेख मिलते हैं जो 1011 ई० से 1046 ई० तक के हैं। उदयपुर प्रशारित से हम उनकी राजनैतिक उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके अनुसार उसने 'चेदिश्वर, तोग्गल, राजा भीम, कर्नाट, लाट और गुर्जर, के राजाओं तथा तुर्की को पराजित किया।

उसका सर्वप्रथम संघर्ष कल्याणी के चालुक्यों के साथ हुआ। प्रारम्भ में उसे कुछ सफलता मिली तथा गोदावरी के आस–पास का क्षेत्र उसने जीत लिया। इस युद्ध में त्रिपुरी के कलचुरी नरेश गांगेयदेव विक्रमादित्य तथा चोलनरेश राजेन्द्र से भोज को सहायता प्राप्त हुई थी। कल्वन लेख, जो भोज के सामन्त यशोवर्मा का है. से सूचित होता है कि उसने कर्नाटक, लाट तथा कोंकण को जीता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे कर्नाटक से होकर ही कोंकण को जीता था जिसमें चालुक्य साम्राज्य के उत्तर का गोदावरी का समीपवर्ती कुछ भाग उसके अधिकार में आ गया था। उसके लेखों से इसकी सूचना मिलती है। बेलगाँव लेख में बताया गया है कि वह 'भोजरूप कमल के लिए चन्द्र के समान था। मीराज लेख में पता चलता है कि उसने कोकण नरेश की समस्त सम्पति छीन लिया तथा कोल्हापुर में सैनिक शिविर लगाकर उत्तर भारत की विजय के निमित योजनाएं तैयार किया था। परन्तु चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय ने उसे हरा दिया। भोजने लाट के शासक कीर्तिराज के ऊपर आक्रमण किया। वह पराजित हुआ तथा आत्मसमर्पण करने को विवश हुआ भोज के सामन्त यशोवर्मा का कल्वन से प्राप्त लेख लाट प्रदेश पर उसके अधिकार की पुष्टि करता है। ऐसा लगता है कि कीर्तिवर्मा को हटाकर भोज ने यशोवर्मा को लाट का शासक बनाया था। बताया गया है कि वह भोज की ओर से नासिक में 1500 ग्रामों पर शासन कर रहा था। लाट को जीतने के बाद उसने कोंकण प्रदेश की विजय की जहाँ शिलाहार वंश का शासन था। किन्तु कोंकण पर उसकी विजय स्थायी नहीं हुई तथा शीघ्र ही चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया। भोज ने उड़ीसा की भी विजय की जहाँ का शासक इन्द्ररथ था। उसकी राजधानी आदिनगर में थी । इन्द्ररथ का उल्लेख चोल शासक राजेन्द्र के तिरुमले लेखों में भी मिलता है। कुछ विद्वानों के अनुसार उसी के सहयोग से भोज ने इन्द्ररथ को जीता होगा। उदयपुर तथा कल्वन लेखों से सूचना मिलती है कि भोज

ने चेदिवंश के राजा को जीता था। यह पराजित नरेश गांगेयदेव रहा होगा जो भोज का समकालीन था। पहले गांगेयदेव तथा भोज के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिहार क्षेत्रों पर अधिकार को लेकर दोनों में अनबन हो गई तथा भोज ने उसे पराजित कर खुशियाँ मनायी। उदयपुर लेख से पता चलता है कि उसने तोग्गल तथा तुरुष्क को जीता था। कुछ विद्वान् इसका तात्पर्य मुसलमानों की विजय से लेते हुए प्रतिपादित करते हैं कि भोज ने महमूद गजनवी के किसी सरदार को युद्ध में हराया था। लेकिन यह निष्कर्ष संदिग्ध है। हूणों के विरुद्ध भी उसे सफलता प्राप्त हुई।

जिस समय भोज मालवा में अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा था. उसी समय बुन्देलखण्ड में चन्देल भी अपनी सत्ता सुदृढ़ करने में लगे हुए थे। भोज का समकालीन चन्देल सम्राट विद्याधर उससे बढ़कर महत्वाकांक्षी एवं पराक्रमी था। ग्वालियर तथा दूवकुण्ड में उसके कछवाहा वंशी सामन्त शासन करते थे। ऐसी स्थिति में दोनों के बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि भोज विद्याधर की बढ़ती हुई शक्ति के आगे मजबूर हो गया तथा उसके सामन्तों से उसे पराजित भी होना पड़ा। चन्देल वंश के एक लेख में कहा गया है कि ''कलचुरी चन्द्र तथा भोज विद्याधर की गुरु के समान पूजा करते थे।''

भोज की अतिशय महत्वाकांक्षा एवं युद्ध प्रियता ही अंततः उसके पतन का कारण सिद्ध हुई। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भोज अपने साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सका तथा उसे भारी असफलताओं का सामना करना पड़ा। सर्वप्रथम चालुक्य नरेश सोमेश्वर द्वितीय ने भी उसकी राजधानी धारा पर आक्रमण किया। भोज पराजित हुआ तथा भाग खड़ा हुआ। चालुक्यों ने उनकी राजधानी धारा को खूब लूटा। आक्रमणकारियों ने धारा नगरी को जला दिया। सोमेश्वर की इस विजय की चर्चा नगाई लेख (1058 ई०) में मिलती है। विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित से भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें कहा गया है कि भोज ने भाग कर अपनी जीवन रक्षा की। आक्रमणकारियों के लौट जाने के बाद ही वह अपनी राजधानी पर अधिकार कर सका। भोज के शासन काल के अन्त में चालुक्यों तथा चेदियों ने उसके विरुद्ध एक संघ बनाया। इस संघ ने भोज की राजधानी पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का नेता कलचुरी नरेश लक्ष्मीकर्ण था। भोज चिन्ता में बीमार पड़ा था तथा अन्ततः उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरते ही कर्ण धारा पर टूट पड़ा तथा लूट–पाट कर प्रचुर सम्पत्ति अपने साथ लेता गया। चालुक्य भीम ने भी दूसरी ओर से धारा नगरी पर आक्रमण कर उसे ध्वस्त किया। इस प्रकार परमार साम्राज्य का अन्त हो गया। भोज का अन्त यद्यपि दुखद रहा तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह अपने युग का एक पराक्रमी नरेश था। उसके उत्कर्ष काल में उत्तर तथा दक्षिण की सभी शक्तियों ने उसका लोहा माना था। उसने परमार सत्ता को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया । उदयपुर लेख में उसकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है– "पृथु की तुलना करने वाले भोज ने कैलाश से मलय पर्वत तक तथा उदयांचल से अस्तांचल तक की समस्त पृथ्वी पर शासन किया। उसने अपने धनुष बाण से पृथ्वी के समस्त राजाओं को उखाड़ कर उन्हें विभिन्न दिशाओं में

बिखेर दिया तथा पृथ्वी का परम प्रीतिदाता बन गया।'' हमें पता चला है कि भोज ने पूर्व में उड़ीसा, पश्चिम में गुजरात और लाट तथा दक्षिण में कोंकण को जीता था। कन्नौज के उत्तर में उसकी सेवायें हिमगिरि तक गई थी। अतः प्रशस्ति का उपर्युक्त विवरण अतिश्योक्ति नहीं कहा जा सकता।

8.4 भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

भारतीय इतिहास में भोज की ख्याति उसकी विद्वता तथा विद्या एवं कला के उदार संरक्षक के रूप में अधिक है। उदयपुर लेख में कहा गया है कि उसने सब कुछ साधा, सम्पन्न किया, दिया और जाना, जो अन्य किसी के द्वारा संभव नहीं था। इससे अधिक कविराज भोज की प्रशंसा क्या हो सकती है। उसने अपनी राजधानी धारा नगर में स्थापित किया तथा उसे विविध प्रकार से अलंकृत करवाया। यह विद्या तथा कला का सुप्रसिद्ध केन्द्र बन गया। यहाँ अनेक महल एवं मंदिर बनवाये गए जिनमें सरस्वती मंदिर सर्वप्रमुख था। वह स्वयं विद्वान् था तथा उसकी उपाधि कविराज की थी। उसने ज्योतिष, काव्य शास्त्र, वास्तु आदि विषयों पर महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की तथा धारा के सरस्वती मंदिर में एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय की स्थापना करवायी। उसकी राजसभा पंडितों एवं विद्वानों से अलंकृत थी। उसकी राजधानी धारा विद्या तथा विद्वानों का प्रमुख केन्द्र थी। आइने अकबरी के अनुसार उसकी राजसभा में पाँच सौ विद्वान् निवास करते थे। भोज की रचनाओं में सरस्वतीकण्णभरण, श्रृंगारप्रकाश प्राकृत व्याकरण कूर्मशतक श्रृंगारमंजरी, भोजचम्पू युक्तिकल्पतरु, समरांगणसूत्रधार, तत्वप्रकाश, शब्दानुशासन, राजमृगांक आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये विविध विषयों से संबंधित है। युक्तिकल्पतरु एवं समरांगणसूत्रधार वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ है। इनसे पता चलता है कि भोज की काव्यात्मक प्रतिभा उच्चकोटि की थी। बताया गया है कि वह अच्छी कविताओं पर विद्वानों को पुरस्कार देता था। वह इतना बड़ा दानी था कि उसके नाम से यह अनुश्रुति चल पड़ी कि वह हर कवि को हर श्लोक पर एक लाख मुद्रायें प्रदान करता था।' इससे उसकी दानशीलता सूचित होती है। उसके दरबारी कवियों एवं विद्वानों में भास्करभट्ट दामोदरमिश्र, धनपाल आदि प्रमुख थे। वह विद्वानों को उनकी विद्वता पर प्रसन्न होकर उपाधियाँ भी देता था। उसकी मृत्यु पर पण्डितों को महान् दुःख हुआ था, तभी तो एक प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार उसकी मृत्यु से विद्या और विद्वान दोनों ही निराश्रित हो गए। भोज एक महान निर्माता भी था। भोपाल के दक्षिण–पूर्व में उसने 250 वर्ग मील लम्बी एक झील का निर्माण करवाया था जो आज भी 'भोजसर' नाम से प्रसिद्ध है। यह परमारकालीन अभियांत्रिक कुशलता एवं कारीगरी का अद्भुत नमूना प्रस्तुत करता है। धारा में सरस्वती मंदिर के समीप उसने एक विजय स्तम्भ स्थापित किया तथा भोजपुर नामक नगर की स्थापना करवाई। चित्तौड़ में उसने त्रिभुवन नारायण का मंदिर बनवाया तथा मेवाड़ के नागोद क्षेत्र में भूमि दान में दिया। इसके अतिरिक्त उसने अन्य अनेक मंदिरों का भी निर्माण करवाया था। इस प्रकार भोज की प्रतिभा बहमुखी थी। निश्चय वह अपने वंश का सर्वाधिक यशस्वी शासक

था। उसका शासन–काल राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से परमार वंश के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है।

8.5 परमार सत्ता का अन्त

भोज ने 1010 ई० से 1060 ई० तक शासन किया। उसकी मृत्यु के साथ ही परमार वंश के गौरव का भी अन्त हो गया। भोज के उत्तराधिकारी लगभग 1210 ई० तक स्थानीय शासकों की हैसियत से शासन करते रहे परन्तु उनके शासन काल का कोई महत्व नहीं है। भोज का पुत्र जयसिंह प्रथम (1055–1070 ई०) उसके बाद गद्दी पर बैठा। इस समय धारा पर कलचुरी कर्ण तथा चालुक्य भीम प्रथम का अधिकार था। जयसिंह ने कल्याणी नरेश सोमेश्वर प्रथम के पुत्र विक्रमादित्य की सहायता प्राप्त की तथा अपनी राजधानी को शत्रुओं से मुक्त करा लिया। वह सोमेश्वर प्रथम का आश्रित राजा बन गया। किन्तु जब कल्याणी का शासक सोमेश्वर द्वितीय हुआ तो स्थिति बदल गयी। उसने कर्ण तथा कुछ अन्य राजाओं के साथ मिलकर मालवा पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में जयसिंह पराजित हुआ तथा मार डाला गया। आक्रमणकारियों ने उसकी राजधानी को लूटने के बाद ध्वस्त कर दिया। तत्पश्चात् उदयादित्य राजा बना। प्रारम्भ में तो उसे कलचुरी कर्ण के विरुद्ध संघर्ष में सफलता नहीं मिली किन्तु बाद में उसने मेवाड़ के गुहिलोत, नाडोल तथा शाकम्भरी के चाहमान वंशों की सहायता प्राप्त कर अपनी स्थिति मजबूत बना ली। इनमें शाकम्भरी के चाहमान नरेश विग्रहराज की सहायता विशेष कारगर सिद्ध हुई तथा उदयादित्य ने कर्ण को पराजित कर अपनी राजधानी को मुक्त करा लिया। तत्पश्चात् उदयादित्य ने कुछ समय तक शान्तिपूर्वक शासन किया तथा अपना समय राजधानी के पुनरुद्धार में लगाया। उसने भिलसा के पास उदयपुर नामक नगर बसाया तथा वहाँ नीलकण्ठ के मंदिर का निर्माण करवाया।

उदयादित्य का बड़ा पुत्र लक्ष्मदेव उसके बाद राजा बना। नागपुर से उसका लेख मिलता है जिसमें उसकी उपलब्धियों का अतिश्योक्तिपूर्ण विवरण दिया गया है। इसे यथार्थ नहीं माना जा सकता। ऐसा लगता है कि मालवा के समीपवर्ती कुछ क्षेत्रों में उसे सफलता प्राप्त हुई हो। इस समय पालों की स्थिति निर्बल थी जिसका लाभ उठाते हुए लक्ष्मदेव ने बिहार तथा बंगाल में स्थित उनके कुछ प्रदेशों पर आक्रमण किया होगा। इसी प्रकार उसने कलचुरी नरेश यशःकर्ण को भी युद्ध में पराजित किया था। किन्तु मुसलमानों के विरुद्ध उसे सफलता नहीं मिली तथा महमूद ने उज्जैन पर आक्रमण कर वहाँ अधिकार जमा लिया। लक्ष्मदेव के बाद उसका छोटा भाई नरवर्मा (1094–1113 ई०) राजा बना। वह एक निर्बल शासक था जो अपने साम्राज्य को सुरक्षित नहीं रख पाया। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से उसका शासन काल उल्लेखनीय माना जा सकता है। वह स्वयं एक विद्वान तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। निर्माण कार्यों में भी उसने रुचि ली तथा मंदिर एवं तालाब बनवाये। उसने 'निर्वाण नारायण' की उपाधि धारण की थी। राजनीतिक मोर्चे पर उसे असफलता मिली। पूर्व में चन्देल शासक मंदनवर्मा ने भिलसा क्षेत्र के परमार राज्य पर अधिकार कर

लिया। उत्तर पश्चिम में चाहमान शासक अजयराज तथा उसके पुत्र अर्णोराज ने नरवर्मा को हराया। अन्हिलवाड़ के चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने उसके राज्य पर कई आक्रमण किए जिसमें अन्ततः नरवर्मा पराजित हो गया।

नरवर्मा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र यशोवर्मा (1133–1142 ई०) हुआ उसके समय चालुक्यों के आक्रमण के कारण मालवा की स्थिति काफी खराब हो गई थी। यशोवर्मा अपने साम्राज्य को व्यवस्थित नहीं रख पाया तथा साम्राज्य बिखरता गया। भिलसा क्षेत्र पर चन्देल मदनवर्मा ने अधिकार कर लिया। चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने नाडोल के चाहमान आशाराज के साथ मिलकर मालवा पर आक्रमण कर दिया। यशोवर्मा बन्दी बना लिया गया, सम्पूर्ण मालवा पर जयसिंह का अधिकार हो गया तथा उसने 'अवन्तिनाथ' की उपाधि धारण की। यशोवर्मा के अन्तिम दिनों के विषय में ज्ञात नहीं है। उसका पुत्र जयवर्मन् जयसिंह के शासन काल के अन्त में मालवा का उद्धार करने में सफल हुआ लेकिन उसका शासन भी अल्पकालिक ही रहा। कल्याणी के चालुक्य शासक जगदेकमल्ल एवं होयसल शासक नरसिंहवर्मन् प्रथम ने मालवा पर आक्रमण कर उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया तथा अपनी ओर से बल्लाल को वहां का राजा बना दिया। किन्तु 1143 ई० के तुरन्त बाद जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल ने बल्लाल को अपदस्थ कर भिलसा तक का सम्पूर्ण मालवा का क्षेत्र अपने साम्राज्य में मिला लिया। लगभग बीस वर्षो तक मालवा गुजरात राज्य का अंग बना रहा। इस बीच वहाँ 'महाकुमार' उपाधिधारी कुछ राजकुमार शासन करते थे जो अर्धस्वतंत्र थे। 1175–1195 ई० के बीच विन्ध्यवर्मन, जो परमार जयवर्मन् का पुत्र था, ने चालुक्य मूलराज द्वितीय को हराकर मालवा पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की लेकिन वह उसके पुराने गौरव को कभी वापस नहीं ला सका। उसका पुत्र सुभटवर्मन् शक्तिशाली राजा था जिसने गुजरात पर आक्रमण कर चालुक्यों के लाट के सामन्त सिंह को अपनी अधीनता मानने के लिए विवश कर दिया। डभोई तथा काम्बे में कई जैन मंदिरों को उसने लूटा. अन्हिलवाड़ को आक्रान्त किया तथा सेना के साथ सोमनाथ तक बढ़ गया। लेकिन भीम के मंत्री लवणप्रसाद ने उसे वापस लौटने को मजबूर किया तथा यादव जैतुगी ने भी सुभटवर्मन् को पराजित कर दिया। उसके बाद उसका पुत्र अर्जुनवर्मन् मालवा का राजा बना। उसने गुजरात के जयसिंह को पराजित कर उसकी कन्या से विवाह किया। किन्तु यादव वंशी सिंघन ने उसे हरा दिया। अर्जुनवर्मन् विद्वान् तथा विद्या प्रेमी था। मदन, आशाराम जैसे विद्वान उसकी सभा में रहते थे।

अर्जुनवर्मन् के बाद क्रमशः देवपाल, जैतुगिदेव, जयवर्मन् द्वितीय तथा कई छोटे–छोटे राज्य हुए जिनके शासन काल की कोई उपलब्धि नहीं है। क्रमशः परमार वंश तथा उसके गौरव का नाश हो गया। 1305 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा को जीतकर वहाँ मुस्लिम सत्ता स्थापित कर दी।

8.6 सारांश

परमार सिन्धुराज के दरबारी कवि पद्मगुप्त परिमल ने अपनी पुस्तक 'नवसाहसांकचरित' में एक कथा का वर्णन किया है। ऋषि वशिष्ठ ने ऋषि विश्वामित्र के विरुद्ध युद्ध में सहायता प्राप्त करने के लिये आबु पर्वत पर यज्ञ किया। उस यज्ञ के अग्निकुंड से एक पुरुष प्रकट हुआ । दरअसल ये पुरुष वे थे जिन्होंने ऋषि वशिष्ठ को साथ देने का प्रण लिया जिनके पूर्वज अग्निवंश के क्षत्रिय थे। इस पुरुष का नाम प्रमार रखा गया, जो इस वंश का संस्थापक हुआ और उसी के नाम पर वंश का नाम पड़ा। परमार के अभिलेखों में बाद को भी इस कहानी का पुनरुल्लेख हुआ है। इससे कुछ लोग यों समझने लगे कि परमारों का मूल निवासस्थान आबू पर्वत पर था, जहाँ से वे पड़ोस के देशों में जा जाकर बस गए। किंतु इस वंश के एक प्राचीन अभिलेख से यह पता चलता है कि परमार दक्षिण के राष्ट्रकूटों के उत्तराधिकारी थे।

परमार परिवार की मुख्य शाखा आठवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल से मालवा में धारा को राजधानी बनाकर राज्य करती थी और इसका प्राचीनतम ज्ञात सदस्य उपेन्द्र कृष्णराज था। इस वंश के प्रारंभिक शासक दक्षिण के राष्ट्रकूटों के सामन्त थे। राष्ट्रकूटों के पतन के बाद सिंपाक द्वितीय के नेतृत्व में यह परिवार स्वतंत्र हो गया। सिपाक द्वितीय का पुत्र वाक्पति मुंज, जो १०वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में हुआ, अपने परिवार की महानता का संस्थापक था। उसने केवल अपनी स्थिति ही सुदृढ़ नहीं की वरन् दक्षिण राजपूताना का भी एक भाग जीत लिया और वहाँ महत्वपूर्ण पदों पर अपने वंश के राजकुमारों को नियुक्त कर दिया। उसका भतीजा भोज, जिसने सन् 1000 से 1055 तक राज्य किया और जो सर्वतोमुखी प्रतिभा का शासक था, मध्युगीन सर्वश्रेष्ठ शासकों में गिना जाता था। भोज ने अपने समय के चौलुभ्य, चंदेल, कालचूरी और चालुक्य इत्यादि सभी शक्तिशाली राज्यों से युद्ध किया। बहुत बड़ी संख्या में विद्वान् इसके दरबार में दयापूर्ण आश्रय पाकर रहते थे। वह स्वयं भी महान लेखक था और इसने विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखी थीं, ऐसा माना जाता है। उसने अपने राज्य के विभिन्न भागों में बड़ी संख्या में मंदिर बनवाए।

राजा भोज की मृत्यु के पश्चात चालुक्य कर्ण और कर्णाटों ने मालव को जीत लिया, किंतु भोज के एक संबंधी उदयादित्य ने शत्रुओं को बुरी तरह पराजित करके अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। उदयादित्य ने मध्यप्रदेश के उदयपुर नामक स्थान में नीलकंठ शिव के विशाल मंदिर का निर्माण कराया था। उदयादित्य का पुत्र जगद्देव बहुत प्रतिष्ठित सम्राट् था। वह मृत्यु के बहुत काल बाद तक पश्चिमी भारत के लोगों में अपनी गौरवपूर्ण उपलब्धियों के लिय प्रसिद्ध रहा। मालव में परमार वंश के अंत अलाउद्दीन खिलजी द्वारा 1305 ई. में कर दिया गया।

परमार वंश की एक शाखा आबू पर्वत पर चंद्रावती को राजधानी बनाकर, 10वीं शताब्दी के अंत में 13वीं शताब्दी के अंत तक राज्य करती रही। इस वंश की दूसरी शाखा वगद (वर्तमान बाँसवाड़ा) और डूंगरपुर रियासतों में उद्दतुक बाँसवाड़ा राज्य में वर्त्तमान अर्थुना की राजधानी पर 10वीं शताब्दी के

मध्यकाल से 12वीं शताब्दी के मध्यकाल तक शासन करती रही। वंश की दो शाखाएँ और ज्ञात हैं। एक ने जालोर में, दूसरी ने बिनमाल में 10वीं शताब्दी के अंतिम भाग से 12वीं शताब्दी के अंतिम भाग तक राज्य किया।

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परमार वंश के इतिहास के विभिन्न स्रोतों की व्याख्या कीजिये।

   .....

2. परमार वंश के प्रारम्भिक इतिहास का वर्णन कीजिये।

   .....

3. परमार वंशी शासक भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।

   .....

4. परमार वंश के पतन के मुख्य कारणों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

   .....

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

मित्तल,अमरचन्द : परमार अभिलेख, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर पृ0 108।

अग्रवाल, कृष्ण चन्द्र : पृथ्वीराज रासों के पात्रों की ऐतिहासिकता।

गांगुली, डी.सी. : हिस्ट्री ऑफ परमार डायनिस्टी।

प्रसाद, ईश्वरी : मिडिवल इंडिया।

मजूमदार, आर.सी. (एड.): दि क्लासिकल एज।

इकाई 9– गाहड़वाल वंश

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रारंभिक इतिहास

9.2.1 प्रमुख स्रोत

9.2.2 प्रारंभिक इतिहास

9.3 गोविन्दचन्द्र

9.4 विजयचन्द्र

9.5 जयचन्द्र

9.6 सारांश

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 प्रस्तावना

गाहड़वाल राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप की एक राजपूत शक्ति थी, जिसने 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान उत्तर प्रदेश और बिहार के वर्तमान भारतीय राज्यों के कुछ हिस्सों पर शासन किया था। उनकी राजधानी वाराणसी में स्थित थी, और एक संक्षिप्त अवधि के लिए उन्होंने कान्यकुब्ज (आधुनिक कन्नौज) पर भी शासन किया। गहड़वाल शासकों को 'काशी नरेश' के रूप में भी जाना जाता था, क्योंकि बनारस इनके राज्य की पूर्वी सीमा के निकट था।

प्रतिहार–साम्राज्य के पतन के बाद जो अराजकता फैली, उससे गंगा–यमुना के दोआब में बहुधा आक्रमण होने लगे। पंजाब के शासक निआल्तिगिन ने काशी तक आक्रमण किया। कलचुरी गंग और उसके पुत्र कर्ण ने उत्तर की ओर से कुछ देश जीते। परमारभोज ने कन्नौज पर आक्रमण किया। जब इस प्रकार देश आक्रांत था, तभी गाहड़वाल वंश का उदय हुआ। गाहड़वाल प्राचीन प्रतिष्ठान अथवा कौशांबी के चन्द्रवंशियों की संतान थे और इस समय मिर्जापुर की पहाड़ियों के प्रदेश में राजनीतिक शक्ति के रूप में प्रकट हुए। उनकी उत्पत्ति के संबंध में ठीक–ठीक पता नहीं है। कुछ लोग उन्हें राष्ट्रकूट अथवा राठौर की शाखा मानते हैं। गहड़वाल– अनुश्रुतियों में ययाति के किसी दूरवंशज से उनका संबंध जोड़ा जाता है। कुछ लोग उसे दक्षिणी आक्रमण के फलस्वरूप स्थापित सामंतों का वंश मानते हैं। इसके संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गाहड़वालों के इतिहास, स्रोत व उनके कुछ मुख्य शासकों से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

9.2 प्रारंभिक इतिहास

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात कन्नौज तथा बनारस में जिस राजवंश का शासन स्थापित हुआ उसे गहड़वाल वंश कहा जाता है । इस वंश की उत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित सूचना किसी भी साक्ष्य से नहीं मिलती है । कुछ लेख इसे 'क्षत्रिय' कहते है ।

कुछ विद्वान इस वंश का संबंध राष्ट्रकूटों से जोड़ते है किन्तु यह काल्पनिक है क्योंकि स्वयं इस वंश के सारनाथ से प्राप्त लेख में राष्ट्रकूट तथा गहड़वाल, दोनों का पृथक–पृथक उल्लेख मिलता है । वास्तविकता जो भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि इस वंश के शासक हिन्दू धर्म और संस्कृति के पोषक थे तथा पूर्वमध्यकाल में इनकी गणना प्रसिद्ध राजपूत कुलों में की जाती थी ।

9.2.1 प्रमुख स्रोत

गाहड़वाल वंश का इतिहास मुख्यतः हम अभिलेख तथा साहित्य से ज्ञात करते हैं । इस वंश के प्रमुख लेखों का विवरण इस प्रकार है –

(1) चन्द्रदेव का चन्द्रावली (वाराणसी) दानपत्र

(2) मदनपाल के राहन तथा बसही अभिलेख

(3) गोविन्दचन्द्र के वाराणसी तथा कमौली के ताम्रपत्राभिलेख

(4) गोविन्दचन्द्र का लार (देवरिया) से प्राप्त अभिलेख

(5) कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख

उपर्युक्त लेखों के अतिरिक्त कुछ अन्य लेख भी मिलते हैं । ये अधिकतर दानपरक हैं तथा इनसे राजनैतिक महत्व की बहुत कम बातें ज्ञात हो पाती हैं। समकालीन साहित्यिक कृतियाँ भी इस वंश के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालती हैं। इनमें सर्वप्रमुख चन्दबरदाई का पृथ्वीराजरासो है जो गाहड़वाल शासक जयचन्द्र तथा चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है, किन्तु इसका विवरण अधिकांशतः अनैतिहासिक तथा काल्पनिक है। मेरुतुंग द्वारा रचित प्रबन्ध–चिन्तामणि में भी जयचन्द्र के विषय में कुछ सूचनायें दी गयी हैं।

गोविन्दचन्द्र का मन्त्री लक्ष्मीधर राजनीतिशास्त्र का प्रकाण्ड पंडित था जिसने 'कृत्यकल्पतरु' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इससे तत्कालीन राजनीति, समाज तथा संस्कृति पर सुन्दर प्रकाश पडता है। मुसलमान लेखकों के विवरण से गहड़वाल तथा मुसलमानों के बीच संघर्ष का ज्ञान होता है।

फरिश्ता जयचन्द्र की सैनिक शक्ति का विवरण देता है। हसन निजाम के विवरण से जयचन्द्र तथा मुहम्मद गोरी के बीच होने वाले संघर्ष तथा मुहम्मद गोरी के विजय की सूचना मिलती है। इन सभी साक्ष्यों के आधार पर गहडवाल वंश के इतिहास का वर्णन किया जायेगा।

9.2.2 प्रारंभिक इतिहास

चन्द्रदेव

प्रतिहार–साम्राज्य के विघटन से फैली हुई अव्यवस्था का लाभ उठाकर 1090 ईस्वी के लगभग चन्द्रदेव नामक व्यक्ति ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसके पूर्वजों में महीचन्द्र तथा यशोविग्रह के नाम मिलते हैं। इनमें यशोविग्रह इस वंश का प्रथम पुरुष था जो कलचुरि शासन में कोई अधिकारी था।

उसका पुत्र महीचन्द्र, चन्द्रदेव का पिता था। उसकी उपाधि 'नृप' की मिलती है जिसमें सूचित होता है कि वह एक सामन्त शासक था जो संभवतः कलचुरियों के अधीन था। गाहड़वाल वंश की स्वतंत्रता का जनक चन्द्रदेव ही था। कन्नौज से उसके चार अभिलेख मिलते हैं जो दानपत्र के रूप में हैं। इनसे पता चलता है कि उसने वाराणसी, अयोध्या तथा दिल्ली आदि स्थानों पर भी अपना अधिकार दृढ़ कर लिया।

अभिलेखों में उसे परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। उसके पुत्र मदनपाल तथा पौत्र गोविन्दचन्द्र का बसही से लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि 'भोज की मृत्यु हो जाने तथा कर्ण के यशमात्र शेष बच जाने के बाद विपत्तिग्रस्त पृथ्वी ने चन्द्रदेव राजा को अपना रक्षक चुना।' इस विवरण से स्पष्ट है कि चन्द्रदेव ने कर्ण की मृत्यु (1073 ईस्वी) के बाद ही कन्नौज पर अधिकार किया था।

चन्द्रदेव ने चंदेल राजा कीर्तिवर्मा के सेनापति गोपाल को परास्त कर अपने राज्य की नींव रखी थी, जैसा कि एक शिलालेख से ज्ञात होता है। उसमे उसे काशी, कन्नौज, दिल्ली आदि हिंदूधर्म के पवित्र स्थानों का परित्राता कहा गया है। गहड़वालों की प्रथम राजधानी वाराणसी थी। चन्द्रदेव ने अपने राज्य का विस्तार पश्चिम की ओर करते हुए कान्यकुब्ज के राजा गोपाल को 1085 ई० में हराया और कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसने समस्त उत्तर–प्रदेश पर अपना अधिकार कायम किया और पूर्व में बंगाल के सेनों के बढ़ाव को भी रोका। उसकी 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज' और 'परमेश्वर' उपाधि थी।

पृथ्वी के विपत्ति में पड़ने का कारण संभवतः तुर्क आक्रमण था। आक्रमणकारी लूटपाट करते हुए आगरा तक आ पहुँचे तथा उन्हें रोकने वाली कोई प्रबल शक्ति दोआब में नहीं रही। इसी आक्रमण से भारी अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी जिसका लाभ चन्द्रदेव को मिला तथा उसने काशी, कन्नौज, कोशल और इन्द्रप्रस्थ के ऊपर अधिकार जमा लिया। इस विजय की प्रक्रिया में उसे कई शक्तियों से युद्ध करने पड़े होंगे। उसके चन्द्रावती लेख (1093 ई.) में बताया गया है कि उसने नरपति, गजपति, गिरिपति एवं त्रिशंकुपति को जीता था। इनमें प्रथम दो कलचुरि राजाओं की उपाधियां थीं। इस आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकाला जाता है कि चन्द्रदेव ने कलचुरि नरेश यशःकर्ण को पराजित कर अन्तर्वेदी (गंगा–यमुना का दोआब) का प्रदेश जीत लिया था।

काशी, कन्नौज, कोशल तथा इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार कर लिया। आर. एस. त्रिपाठी का विचार है कि कन्नौज को चन्द्रदेव ने गोपाल नामक राजा से छीना था जिसे बदायूं तथा सेतमाहेत लेखों में 'कान्नोज का राजा' (गाधिपुराधिप) कहा गया है। कन्नौज पर अधिकार हो जाने से उसका पान्चाल प्रदेश पर भी अधिकार हो गया होगा।

इन्द्रप्रस्थ दिल्ली तथा उसका समीपवर्ती प्रदेश था। यहाँ संभवतः तोमरवंशी राजाओं का शासन था जिन्होंने चन्द्रदेव की अधीनता स्वीकार की होगी। कुछ विद्वानों ने 'रामचरित' के आधार पर यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि चन्द्रदेव ने बंगाल में भी अधि पहर किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली तथा पालनरेश रामपाल के सामन्त भीमशय ने उसे पराजित कर दिया।

किन्तु इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। चन्द्रदेव ने 1103 ईस्वी तक शासन किया। निःसंदेह वह एक शक्तिशाली राजा था जिसने अनेक राज्यों को जीत कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया तथा अपने साम्राज्य को शक्ति और सुव्यवस्था प्रदान की।

उसने तुरुष्कदंड नामक एक विशेष कर लगाया था, जिससे या तो मुसलमानों के आक्रमण रोकने के लिए सेना का खर्च चलाया जाता था या उन्हें कर देने की व्यवस्था की जाती थी। उसका पुत्र मदनपाल था, जो आयुर्वेद का अच्छा ज्ञाता था। मदनपाल के संबंध में कोई जानकारी नहीं है। उसने ताम्र एवं रजत के सिक्के जारी किए। वह शैव मतावलंबी था और एक लेखक था।

मदनपाल

चन्द्रदेव का पुत्र तथा उत्तराधिकारी मदनपाल एक निर्बल शासक था जिसकी उपलब्धियों के विषय में हम कुछ भी नहीं जानते। उसकी रानी के एक दानपत्र में उसे 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' की उपाधि प्रदान की गयी है। किन्तु यह निश्चित नहीं है कि उसकी उपलब्धियां क्या थीं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि मदनपाल के समय में शासन की वास्तविक सत्ता एक संरक्षक समिति के हाथ में थी तथा वह नाममात्र का ही राजा था। ज्ञात होता है कि उसे तुर्क आक्रमणकारियों ने कन्नौज पर आक्रमण कर बन्दी बना लिया तथा उसके पुत्र गोविन्दचन्द्र ने कड़े संघर्ष के बाद उसे मुक्त कराया था।

राहन लेख में कहा गया है कि बारम्बार वीरता प्रदर्शित करते हुए उसने अपने युद्ध कौशल से हम्मीर को शत्रुता त्यागने के लिये विवश कर दिया था (हम्मीरन्यस्तबैर मुहुरसमरक्रीडया यो विधत्ते)। यहाँ 'हम्मीर' से तात्पर्य 'अमीर' से है जो संभवत मसूद तृतीय का कोई सैनिक सरदार रहा होगा।

ऐसा लगता है कि गोविन्दचन्द्र को तुर्कों से लम्बा संघर्ष करना पड़ा था। एच. सी. रे का विचार है कि गोविन्दचन्द्र को अपने पिता को छुड़ाने के लिये तुर्क आक्रान्ता को धन देना पड़ा था। इस प्रकार गोविन्द चन्द्र युवराज के रूप में ही काफी प्रसिद्ध हो गया था।

9.3 गोविन्दचन्द्र

मदनपाल के पश्चात उसकी रानी राल्हादेवी से उत्पन्न पुत्र गोविन्दचन्द्र (1114–1155 ई.) गहड़वाल वंश का शासक बना। वह इस वंश का सर्वाधिक योग्य एवं शक्तिशाली शासक था। उसने कन्नौज के प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। इस उद्देश्य से उसने कई स्थानों की विजय की।

अपने पिता के शासनकाल में ही तुर्क आक्रमणकारियों का सफल प्रतिरोध कर वह अपनी वीरता का परिचय दे चुका था। उसकी पत्नी कुमारदेवी के सारनाथ लेख में कहा गया है कि 'दुष्ट तुरुष्क वीर से वाराणसी की रक्षा करने के लिये शिव द्वारा भेजा गया विष्णु का मानो वह अवतार ही था।'उसके राजा बनने के बाद तुर्कों को आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ। गोविन्दचन्द्र ने विभिन्न दिशाओं में सैनिक अभियान

किया तथा विजयें भी प्राप्त की। गोविन्दचन्द्र की विजयों की सूचना उसके कुछ लेखों से मिलती है। पालि लेख (1114 ई.) में कहा गया है कि उसने 'नवराज्यगज' पर अधिकार किया।

किन्तु इस शब्द के वास्तविक समीकरण के विषय में मतभेद है। वी. एन. पाठक का विचार है कि संभव है कि गोविन्दचन्द्र ने घाघरा नदी के उत्तर के क्षेत्रों (सरयूपार) को जीतकर वहाँ एक नया राज्य स्थापित किया हो। गोरखपुर से प्राप्त एक दूसरे लेख में दरदगण्डकी देश (घाघरा तथा बड़ी गण्डक के बीच स्थित प्रदेश) के शासक कीर्त्तिपाल की चर्चा है।

संभव है गोविन्दचन्द्र ने उसे ही पराजित कर पूर्वोत्तर में बड़ी गण्डक नदी तक अपनी सीमा विस्तृत कर लिया हो। लार (देवरिया) लेख से पता चलता है कि उसने ब्राह्मणों को भूमिदान में दिया था। इससे भी सरयूपार क्षेत्र पर गोविन्दचन्द्र का अधिकार प्रमाणित होता है । पूर्वी भारत अर्थात् विहार और बंगाल में इस समय पाल राजाओं का शासन था।

गोविन्दचन्द्र का रामपाल के साथ संघर्ष पहले से ही चल रहा था। राजा बनने के बाद उसने बिहार के कुछ पाल क्षेत्रों को विजित कर लिया जैसा कि उसके कुछ लेखों से सिद्ध होता है। पटना के समीप मनेर नामक स्थान से उसका एक लेख मिलता है जिसमें मालयारी पत्तला के गुणाव एवं पडाली गाँवों को दान में देने का उल्लेख है।

उसी प्रकार लार लेख से भी पता चलता है कि मुगेर में निवास के समय उसने पोटाचवाड नामक ग्राम दान में दिया था। ऐसा लगता है कि गोविन्दचन्द्र ने मदनपाल को हराकर मुंगेर क्षेत्र को जीत लिया था जबकि पटना क्षेत्र की विजय उसने रामपाल के समय में ही की होगी। किन्तु यह अधिकार स्थायी नहीं रहा तथा मदनपाल ने पुनः वहाँ अपना अधिकार जमा लिया। संभव है गोविन्दचन्द्र के बाद ही पाली ने मुंगेर क्षेत्र पर अपना अधिकार किया हो। इसी प्रकार कलचुरियों को पराजित कर गिबिंदचन्द्र ने यमुना तथा सोन नदियों के बीच स्थित उनके कुछ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिये थे।

उसी ने सबसे पहले कलचुरि राजाओं द्वारा धारण की जाने वाली उपाधियां– अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति धारण किया था। उसके एक लेख से विदित होता है कि करण्ड तथा करण्डतल्ल नामक ग्राम जो पहले कलचुरि नरेश यशकर्ण के अधीन थे, को गोविन्दचन्द्र ने एक ब्राह्मण को दान में दिया था। रंभामखरी नाटक जिसकी रचना जयचन्द्र ने की थी, से पता लगता है कि गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण को जीता था। इससे तात्पर्य पूर्वी मालवा प्रदेश से है। यहाँ पहले परमारवंश का शासन था। संभवतः परमारवंशी राज्य यशोवर्मा को पराजित कर गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण पर अधिकार किया था।

जयचन्द्र लिखता है कि जिस दिन उसने दशार्ण को जीता उसी दिन उसके पौत्र का जन्म हुआ। इसी कारण उसका नाम जयचन्द्र रखा गया। इस प्रकार गोविन्दचन्द्र ने एक विशाल साम्राज्य पर शासन

किया। विजेता होने के साथ–साथ वह एक महान् कूटनीतिज्ञ भी था। उसका चन्देल, चोल, कलचुरि, चालुक्य तथा कश्मीर के शासकों के साथ मैत्री–सम्बन्ध था।

पालों तथा उनके सामन्तों से मैत्री सबध सुदृढ़ करने के उद्देश्य से गोविन्दचन्द्र ने पीठी के चिक्कोरवंशी देवरक्षित की पुत्री तथा रामपाल के मामा मथनदेव राष्ट्रकूट की दौहित्री कुमारदेवी के साथ अपना विवाह किया। इस वैवाहिक संबंध से सरयूपार के क्षेत्रों की विजय में उसे सहायता प्राप्त हुई।

एच. सी. रे का अनुमान है कि कलचुरियों के विरुद्ध गाहड़वालों तथा चोलों के बीच परस्पर मैत्री संबंध स्थापित हुआ था। इसी का प्रमाण त्रिचनापल्ली के गंगैकोंडचोलपुरम् मन्दिर से प्राप्त वह गहड़वाल लेख है जिसमें यशोविग्रह से लेकर चन्द्रदेव तक की वंशावली अंकित है।

तुम्माण के कलचुरि शासक जाज्जलदेव प्रथम, जो पहले त्रिपुरी के कलचुरियों के अधीन था, को गोविन्दचन्द्र ने अपनी ओर मिला लिया था। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने अपना एक दूत कन्नौज के दरबार में भेजा था। यह कन्नौज नरेश गोविन्दचन्द्र ही था। कल्हण के विवरण से ज्ञात होता है कि कश्मीर तथा कन्नौज के बीच मैत्री संबंध था।

इस प्रकार विविध राजनयिक संबंधों द्वारा गोविन्दचन्द्र ने अपनी स्थिति मजबूत बना ली। गोविन्दचन्द्र के अनेक दान–पत्र तथा सिक्के मिलते है, जो इस बात के प्रमाण हैं कि उसके समय में कन्नौज पुनः एक महत्वपूर्ण नगर बन गया था। वहाँ अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् निवास करते थे। उसके कुछ सिक्के जो कलचुरियों के सिक्कों के अनुकरण पर ढाले गये हैं 'बैठी हुई लक्ष्मी' शैली के हैं।

गोविन्दचन्द्र को उसके लेखों में 'विविधविद्याविचारवाचस्पति' कहा गया है जो इस बात का सूचक है कि वह स्वयं बहुत बड़ा विद्वान् था। उसका मन्त्री लक्ष्मीधर भी शास्त्रों का प्रकाण्ड पंडित था जिसने 'कृत्यकल्पतरु' नामक ग्रंथ लिखा था। इसमें चौदह अध्याय हैं। प्रत्येक को 'कल्पतरु' कहा गया है। इसका राजधर्म कल्पतरु तथा व्यवहार कल्पतरु क्रमशः राजनीति एवं विधि से संबंधित है। लक्ष्मीधर को यंत्र महिमा का आश्चर्य कहा गया है जिसकी सहायता एवं परामर्श से ही गोविन्दचन्द्र को सफलता प्राप्त हुई थी।

उसके एक अभिलेख से पता चलता है कि उसने सूर्य, शिव, वासुदेव आदि देवताओं की पूजा की थी तथा उत्कल के बौद्ध भिक्षु शाक्यरक्षित तथा चोल देश के उनके शिष्य वागेश्वररक्षित का सम्मान करने के लिये उनके द्वारा संचालित जेतवन विहार को गाँव दान में दिया था। उसकी पत्नी कुमारदेवी बौद्ध मतानुयायी थी।

9.4 विजयचन्द्र

गोविन्दचन्द्र के पश्चात् उसका पुत्र विजयचन्द्र (1155–1169 ईस्वी) शासक हुआ। उसके दो अन्य नाम मल्लदेव तथा विजयपाल भी मिलते है। गोविन्दचन्द्र के दो अन्य पुत्रों, अस्फोटचन्द्र तथा राज्यपालदेव, के नाम भी लेखों से मिलते हैं किन्तु वे शासक नहीं बन पाये।

या तो उनकी मृत्यु पिता के समय में ही हो गयी अथवा विजयचन्द्र ने उन्हें उत्तराधिकार युद्ध में पराजित कर मार डाला। उसने लाहौर के मुसलमान शासक को परास्त किया था। उसके पुत्र जयचन्द्र के कमौली (बनारस) लेख में इसका विवरण मिलता है जिसमें कहा गया है कि उसने पृथ्वी का करते हुए हम्मीर की स्त्रियों के आंखों के आसूओं से, जो बादलों से गिरते हुए जल के समान थे, पृथ्वी के ताप का हरण किया।

यह हम्मीर लाहौर के तुर्क शासक खुशरी शाह अथवा खुशरोमलिक का कोई अधिकारी था जिसने पूर्व की ओर अपना राज्य विस्तृत करने का प्रयास किया होगा तथा इसी क्रम में गहड़वाल नरेश ने उसे पराजित कर दिया होगा। हम्मीर से तात्पर्य अमीर अथवा तुर्क शासक से ही है।

उत्तर में विजयचन्द्र के फंसे रहने के कारण पूर्व से सेनों को उसके राज्य पर आक्रमण करने का अच्छा मौका मिल गया। इसका लाभ उठाते हुए बंगाल के सेनवंशी शासक लक्ष्मणसेन ने आक्रमण कर दिया। माधाइ नगर लेख में कहा गया है कि उसने काशी नरेश को पराजित किया था (येनाड सौ काशीराज समरभुवि विजिता)। लेकिन लक्ष्मण सेन को गहड़वाल साम्राज्य के किसी भी भाग पर अधिकार करने में सफलता नहीं मिल सकी। कमौली लेख से पता चलता है कि काशी के ऊपर विजयचन्द्र का अधिकार पूर्ववत् बना हुआ था।

बिहार में सहसाराम क्षेत्र तक उसका अधिकार कम से कम 1168–69 ई. तक बना रहा जैसा कि वहाँ से प्राप्त ताराचण्डी प्रतिमालेख से विदित होता है। किन्तु पश्चिम की ओर विजयचन्द्र को मात खानी पड़ी। दिल्ली में इस समय तोमरवंश का शासन था। वे पहले गहड़वालों के सामन्त के रूप में शासन करते थे।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अब उन्होंने गाहड़वाल सत्ता का जुआ उतार फेका तथा उसके स्थान पर चाहमानों को अपना संप्रभु स्वीकार कर लिया। शाकम्भरी के चाहमान शासक वीसलदेव (1153–1163 ई.) ने दिल्ली तथा हांसी को जीतकर अपने अधिकार में ले लिया। ये प्रदेश पहले गहड़वालों की अधीनता में थे। इस प्रकार विजयचन्द्र के समय में गहड़वाल साम्राज्य की सीमायें संकुचित हो गयी।

9.5 जयचन्द्र

विजयचन्द्र का पुत्र जयचन्द्र (1170–1194 ईस्वी) गाहड़वाल वंश का अन्तिम शासक था। भारतीय लोक साहित्य तथा कथाओं में वह राजा जयचन्द्र के नाम से विख्यात है। मुस्लिम स्रोतों से पता चलता है कि कन्नौज तथा वाराणसी का वह सार्वभौम शासक था।

मुसलमान इतिहासकार उसे भारत का सबसे बड़ा राजा बताते है जिसका साम्राज्य चीन से मालवा तक फैला था। उसके पास एक विशाल सेना थी जिसमें हाथी, घुड़सवार, धनुर्धारी, सैनिक, पदाति सभी सम्मिलित थे। उसकी सेना की विशालता का संकेत चन्द्रवरदायी भी करता है। लेकिन ये विवरण कोरी अतिरंजना लगते हैं।

यह सही है कि जयचन्द्र को उत्तराधिकार में एक विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ जो शक्ति एवं संसाधनों की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न था। किन्तु राजनीतिक सूझ–बूझ एवं दूरदर्शिता की कमी के कारण जयचन्द्र उसकी सुरक्षा नहीं कर सका।

उसका समकालीन दिल्ली तथा अजमेर का चौहान नरेश पृथ्वीराज तृतीय था। चन्दबरदाई के 'पृथ्वीराजरासो' से दोनों की पारस्परिक शत्रुता का पता चलता है। इसके अनुसार पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का अपहरण कर लिया था। अनेक विद्वान् रासो की सत्यता में संदेह व्यक्त करते है तथापि जयचन्द्र तथा पृथ्वीराज के बीच शत्रुता की बात सही लगती है।

रासो से यह भी पता चलता है कि पृथ्वीराज के विरुद्ध जयचन्द्र ने चन्देल शासक परमदि की सहायता प्राप्त की थी। पूर्व की ओर सेनवंश के साथ भी जयचन्द्र की शत्रुता थी तथा उसका समकालीन सेनवंशी शासक लक्ष्मणसेन था। सेनवंश के लेखों से पता चलता है कि लक्ष्मणसेन ने काशी के राजा को जीता तथा काशी और प्रयाग में उसने विजय–स्तम्भ स्थापित किये थे।

मजूमदार का विचार है कि लक्ष्मणसेन द्वारा पराजित काशी नरेश जयचन्द्र ही था जिससे उसने कुछ प्रदेश जीत लिया होगा। जब मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तब जयचन्द्र तटस्थ रहा। कुछ विद्वानों के अनुसार स्वयं जयचन्द्र ने ही गोरी को पृथ्वीराज के राज्य पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित भी किया था।

पृथ्वीराज को जीतने के पश्चात् 1194 ईस्वी में मुहम्मद गोरी ने जयचन्द्र के राज्य पर भी आक्रमण किया। कुछ भारतीय ग्रन्थों जैसे विद्यापति कृत पुरुषपरीक्षा, नयचन्द्र कृत रम्भामंजरी नाटक आदि में कहा गया है कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को पहले कई बार हराया था। संभव है कुछ प्रारम्भिक भावों में उसे एकाध बार सफलता मिली हो।

अन्तिम मुठभेड़ चन्दावर (एटा जिला) के मैदान में हुई जहाँ कुतुबउद्दीन के नेतृत्व में पचास हजार सैनिकों का जयचन्द्र की विशाल सेना से सामना हुआ। दुर्भाग्यवश हाथी पर सवार जयचन्द्र की आंख में

एक तीर लग जाने से वह गिर पड़ा तथा उसकी मृत्यु हो गयी। सेना में भगदड़ मच गयी तथा मुसलमानों की विजय हुई।

गोरी ने असनी (फतेहपुर) स्थित जयचन्द्र के राजकोष पर अधिकार कर लिया। आक्रमणकारियों ने स्त्रियों तथा बच्चों को छोडकर सबकी हत्या कर दी। मुहम्मद गोरी ने कन्नौज तथा बनारस को खूब लूटा बनारस के लगभग एक हजार मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया गया तथा उनके स्थान पर मस्जिदें बनवायी गयी।

आक्रमणकारियों के हाथ लूट की भारी सम्पत्ति एवं बहुमूल्य वस्तुयें लगीं। इस प्रकार गाहड़वाल साम्राज्य का पतन हुआ। ऐसा लगता है कि चन्दावर के युद्ध के बाद भी कुछ समय तक कन्नौज पर गाहड़वालों की सत्ता बनी रही तथा मुसलमानों ने वहाँ अधिकार नहीं किया। मात्र फरिश्ता ही ऐसा लेखक है जो मुसलमान सेनाओं के कन्नौज पर अधिकार करने की बात करता है।

किन्तु वह बाद का लेखक होने के कारण विश्वसनीय नहीं लगता। कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र ने कुछ समय तक अपने पिता के बाद कन्नौज पर शासन किया।

मछलीशहर (जौनपुर) से प्राप्त उसके एक लेख (1198 ई०) में उसे "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वराश्वपति गजपति–राजत्रयाधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्री हरिश्चन्द्र देव" कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वह एक स्वतंत्र शासक की हैसियत से शासन कर रहा था। लेख से पता चलता है कि उसने पमहई नामक गाँव दान में दिया था। हरिश्चन्द्र के पश्चात कन्नौज के गाहड़वाल साम्राज्य का अन्त हो गया तथा वहाँ चन्देलों का अधिकार स्थापित हुआ।

9.6 सारांश

गहड़वाल राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप की एक शक्ति थी, जिसने 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान उत्तर प्रदेश और बिहार के वर्तमान भारतीय राज्यों के कुछ हिस्सों पर शासन किया था। उनकी राजधानी वाराणसी में स्थित थी, और एक संक्षिप्त अवधि के लिए उन्होंने कान्यकुब्ज (आधुनिक कन्नौज) पर भी शासन किया। गहड़वाल शासकों को काशी नरेश के रूप में भी जाना जाता था, क्योंकि बनारस इनके राज्य की पूर्वी सीमा के निकट था।

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गाहड़वाल कौन थे? उनकी उत्पत्ति के बारे में प्रकाश डालिये।

   .....

2. गाहड़वालों के प्रमुख शासकों के बारे में विस्तार पूर्वक लिखिये।

   .....

3. गाहड़वाल सम्राज्य के इतिहास के विभिन्न स्रोतों के बारे में वर्णन कीजिये।

.....

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

इलिएट एण्ड डाउसन	: हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्ज अवन हिस्टोरिअन
मजूमदार, आर.सी.	: द ऐज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज।
मजूमदार, आर.सी.	: द स्ट्रगल फॉर एम्पायर।
त्रिपाठी, आर.एस.	: हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू द मुस्लिम कनक्वेस्ट।
शास्त्री, के.ए. नीलकण्ठ	: ए कॉम्परीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
स्मिथ, वी.ए.	: अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

इकाई 10 कलचुरि वंश

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 कलचुरि वंश के इतिहास के स्रोत

10.3 त्रिपुरी के कलचुरि वंश का प्रारम्भिक इतिहास

- 10.3.1 शंकरगण
- 10.3.2युवराज प्रथम
- 10.3.3 लक्ष्मणराज

10.4 कलचुरि सत्ता का उत्कर्ष : गांगेयदेव विक्रमादित्य (1019–1041 ई0)

10.5 कर्ण अथवा लक्ष्मीकर्ण (1041–1070 ई0)

10.6कलचुरि वंश का पतन

10.7 सारांश

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 प्रस्तावना

कलचुरि प्राचीन भारत का विख्यात आभीर–त्रैकूटक राजवंश था। इस वंश की शुरुआत राजा ईश्वरसेन उर्फ महाक्षत्रप ईश्वरदत्त ने की थी। 'कलचुरि' नाम से भारत में दो राजवंश थे–एक मध्य एवं पश्चिमी भारत (मध्य प्रदेश तथा राजस्थान) में जिसे 'चेदी', 'हैहय' या 'उत्तरी कलचुरि' कहते हैं तथा दूसरा 'दक्षिणी कलचुरि' जिसने वर्तमान कर्नाटक के क्षेत्रों पर राज्य किया। चेदि प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों में से एक था। इसका शासन क्षेत्र मध्य तथा पश्चिमी भारत था। आधुनिक बुंदेलखंड तथा उसके समीपवर्ती भूभाग तथा मेरठ इसके आधीन थे। शक्तिमती या संथिवती इसकी राजधानी थी।

कलचुरि शब्द के विभिन्न रूप– कटच्छुरी, कलत्सूरि, कलचुटि, कालच्छुरि, कलचुर्य तथा कलिचुरि प्राप्त होते हैं। विद्वान इसे संस्कृत भाषा न मानकर तुर्की के 'कुलचुर' शब्द से मिलाते हैं, जिसका अर्थ उच्च उपाधियुक्त होता है। अभिलेखों में ये अपने को हैहय नरेश अर्जुन का वंशधर बताते हैं। इन्होंने 248–49 ई. से प्रारंभ होनेवाले संवत् का प्रयोग किया है, जिसे कलचुरि संवत् कहा जाता है। पहले वे मालवा के आसपास रहनेवाले थे। छठी शताब्दी के अंत में बादमी के चालुक्यों के दक्षिण के आक्रमण, गुर्जरों का समीपवर्ती प्रदेशों पर आधिपत्य, मैत्रकों के दबाव तथा अन्य ऐतिहासिक कारणों से पूर्व जबरपुर (जाबालिपुर?) के आसपास बस गए। यहीं लगभग नवीं शताब्दी में उन्होंने एक छोटे से राज्य की स्थापना की। अभिलेखों में कृष्णराज, उसके पुत्र शंकरगण, तथा शंकरगण के पुत्र बुधराज का नाम आता है। उसकी मुद्राओं पर उसे 'परम माहेश्वर' कहा गया है। शंकरगण शक्तिशाली नरेश था। इसने साम्राज्य का कुछ विस्तार भी किया था। बड़ौदा जिले से प्राप्त एक अभिलेख में निरिहुल्लक अपने को कृष्णराज के पुत्र शंकरगण का सांमत बतलाता है। लगभग 595 ई. के पश्चात शंकरगण के बाद उसका उतराधिकारी उसका पुत्र बुधराज हुआ। राज्यारोहण के कुछ ही वर्ष बाद उसने मालवा पर अधिकार कर लिया। महाकूट–स्तंभ–लेख से पता चलता है कि चालूक्य नरेश मंगलेश ने इसी बुधराज को पराजित किया था। इस प्रदेश से कलचुरी शासन का ह्रास चालुक्य विनयादित्य (681–96 ई.) के बाद हुआ।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको कलचुरि वंश से संबंधित जानकारी प्रदान करना है। कलचुरि वंश के ऐतिहासिक स्रोत, प्रारंभिक इतिहास तथा उसके शासकों के विषय में विस्तृत जानकारी इस इकाई में प्रदान की जायेगी।

10.2 कलचुरि वंश के इतिहास के स्रोत

कलचुरि–चेदि वंश के इतिहास को हम उसके लेखों तथा साहित्यिक ग्रन्थों से ज्ञात करते हैं। इस वंश के प्रमुख लेख इस प्रकार हैं:

1. युवराज का बिलहारी का लेख
2. लक्ष्मणराज द्वितीय का कारीतलाई अभिलेख
3. कोक्कल द्वितीय के मुकुन्दपुर तथा प्यावां के लेख

4. कर्ण का रीवां (1948–49 ई०) का लेख
5. कर्ण के वाराणसी तथा गोहरवा (प्रयाग) से प्राप्त ताम्रपत्र–अभिलेख
6. यशः कर्ण के खैरा तथा जबलपुर के लेख

कुछ लेखों में कलचुरि चेदि संवत की तिथि दी गई है। इनमें कर्ण के लेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं,जो उसकी उपलब्धियों का विवरण देने के साथ–साथ इस वंश के इतिहास का भी बोध कराते हैं।

कलचुरी नरेश युवराज के दरबार में राजशेखर ने कुछ काल तक निवास किया तथा वहीं उसने अपने दो ग्रन्थों 'काव्यमीमांसा' तथा 'विद्धशालभंजिका' की रचना की थी। इनके अध्ययन से हम तत्कालीन संस्कृति का ज्ञान कर सकते हैं। इन ग्रन्थों में राजशेखर युवराज की मालवा तथा कलिंग की विजय का उल्लेख करते हुए उसे चक्रवर्ती राजा बताता है। हेमचन्द्र के द्वाश्रयकाव्य से कर्ण तथा पाल शासक विग्रहपाल के बीच संघर्ष की सूचना मिलती है। विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित से कर्ण तथा चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है।

पूर्व मध्यकालीन भारत में कलचुरि वंश की कई शाखाओं के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। कलचुरियों की प्राचीनतम शाखा छठीं शती में माहिष्मती में शासन करती थी। इसका संस्थापक कृष्णराज था। उसका वर्ग एवं बादामी के चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय का समकालीन था। उसके पूर्वजों कृ ष्णराज एवं शंकरगण का महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, कोंकण आदि पर अधिकार था। पुलकेशिन् के सैनिक अभियान ने उन्हें उत्तर भारत की ओर विस्थापित कर दिया। इसके बाद कुछ समय तक कलचुरियों का इतिहास अन्धकारपूर्ण हो गया। चालुक्यों तथा प्रतिहारों के दबाव के कारण कलचुरी बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड की ओर बढ़े तथा कालंजर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। किन्तु शीघ्र ही प्रतिहारों ने उन्हें वहाँ से भी हटा दिया। तत्पश्चात कलचुरी गोरखपुर तथा देवरिया जिलों को भूमि पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में फैल गए। यहाँ उनकी सत्ता का संस्थापक राजा राजपुत्र था। कहला तथा कसिया लेखों में पता चलता है कि यहाँदो कलचुरी वंश शासन कर रहे थे। गोरखपुर क्षेत्र में इस वंश के शासन का प्रारम्भ नवीं शती के प्रारम्भ में हुआ। राजपुत्र की दसवीं पीढ़ी में सोददेव राजा हुआ। राजपुत्र के बाद शिवराज तथा शंकरगण प्रथम राजा बने। इनकी किसी भी उपलब्धि के विषय में पता नहीं चलता। शंकरगण को ही संभवतः त्रिपुरी के कलचुरी नरेश कोक्कल प्रथम ने अभयदान दिया था। उसका उत्तराधिकारी गुणाम्बोधि हुआ। बताया गया है कि उसने भोजदेव से कुछ भूमि प्राप्त की तथा युद्ध में गौड़ की लक्ष्मी का अपहरण कर लिया। ऐसा लगता है कि उसने प्रतिहार नरेश भोज की ओर से पालों के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गुणाम्बोधि तथा उसके उत्तराधिकारी गुर्जर प्रतिहारों के अधीन सामन्त थे। अगला राजा भामान ने प्रतिहारों के सामन्त रूप में धारा के परमार राजा से युद्ध कर ख्याति प्राप्त किया। इस वंश का दसवाँ राजा सोढ़देव हुआ जिसका लेख मिलता है। वह एक स्वतंत्र शासक था जैसा कि उसको राजकीय उपाधियों से प्रकट होता हैं। इस समय तक गंगा–यमुना घाटी में तुर्कों के आक्रमण तथा चन्देलों के विस्तार

के कारण प्रतिहार साम्राज्य विनष्ट हो गया था, जिससे सोढ़देव को स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सहायता मिली। उसने घाघरा तथा गंडक के किनारे एक स्वाधीन राज्य कायम कर लिया। 'परम माहेश्वर' की उपाधि से उसका शैव होना सूचित होता है। सोढ़देव के उत्तराधिकारियों के विषय में हमें पता नहीं है। संभवतः वह इस वंश का अन्तिम स्वतंत्र राजा रहा हो। ग्यारहवीं शती में कन्नौज के गाहड़वालों के उत्कर्ष के साथ ही कचुरी सत्ता का अन्त हो गया तथा बनारस तथा कन्नौज से लेकर अयोध्या तक का क्षेत्र गाहड़वालों के अधीन आ गया। इस प्रकार सरयू पार में गोरखपुर एवं देवरिया के कलचुरियों की शाखाएं समाप्त हो गयी। अब त्रिपुरी अथवा डाहल का कलचुरी वंश शक्तिशाली हुआ।

10.3 त्रिपुरी के कलचुरि वंश का प्रारम्भिक इतिहास

कलचुरी वंशों में यह सबसे प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली सिद्ध हुआ। इसने मध्य भारत पर तीन शताब्दियों तक शासन किया। इस कलचुरी वंश का पहला राजा कोक्कल प्रथम था, जो संभवतः 845 ई० में गद्दी पर बैठा। उसका अपना कोई लेख तो नहीं मिलता किन्तु उसकी उपलब्धियों के विषय में हम उसके उत्तराधिकारियों के लेखों से जानते है। इनमें युवराजदेव का बिलहरी तथा कर्ण के बनारस लेख उल्लेखनीय है। ज्ञात होता है कि वह अपने समय का महान् सेनानायक था। उसने कन्नौज के प्रतिहार शासक भोज तथा उसके सामन्तों को युद्ध में पराजित किया। बिल्हारी लेख में कहा गया है कि 'समस्त पृथ्वी को जीतकर उसने दक्षिण दिशा में कृष्णराज तथा उत्तर दिशा में भोज को अपने दो कीर्ति स्तम्भों के रूप में स्थापित किया था।'' बनारस लेख में कहा गया है कि उसने भोज, बल्लभराज, चित्रकूट भूपाल, हर्ष तथा शंकरगण, नामक राजाओं को अभयदान दिया था। यहाँ भोज से तात्पर्य प्रतिहार भोज तथा कृष्णराज से तात्पर्य राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय से है। हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि इन दोनों राजाओं को उसने किसी युद्ध में जीता था अथवा वे उसका प्रभाव मात्र स्वीकार करते थे। हर्ष, चित्रकूट भूपाल एवं शंकरगण की पहचान निश्चित नहीं है। संभवतः हर्ष प्रतिहार भोज प्रथम का गुहिल सामन्त था जो चित्तौड़ में शासन करता था। शंकरगण, गोरखपुर की कलचुरी शाखा का सामन्त शासक था। तुम्माणवंशी पृथ्वीदेव के अमोदा लेख में वर्णित है कि कोक्कल ने कर्नाटक, वंग, कोंकण, शाकम्भरी, तुरुष्क तथा रघुवंशी राजाओं को जीता था। लेकिन यह विवरण अतिश्योक्तिपूर्ण है जिसकी पुष्टि का कोई आधार नहीं है। इन सभी विजयों के फलस्वरूप वह अपने समय का एक शक्तिशाली शासक बन बैठा। उसने चन्देल वंश की राजकुमारी नट्टादेवी के साथ अपना विवाह तथा राष्ट्रकूट वंश के कृष्ण द्वितीय के साथ अपनी एक पुत्री का विवाह किया था। इन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप उसने अपने साम्राज्य की पश्चिमी तथा दक्षिणी–पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित कर लिया।

10.3.1 शंकरगण

कोक्कल के 18 पुत्र थे। इनमें उसका ज्येष्ठ पुत्र शंकरगण उसकी मृत्यु के बाद (878 से 888 ई० के बीच) चेदि वंश का राजा बना। उसने दक्षिणी कोशल के सोमवंशी शासक को हराकर पाली पर अधिकारकर लिया तथा अपने एक छोटे भाई को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। इस समय राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय वेंगी के पूर्वी चालुक्य नरेश विजयादित्य तृतीय के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था। शंकरगण एक सेना के साथ कृष्ण द्वितीय की सहायता के लिए गया परन्तु विजयादित्य ने दोनों की सम्मिलित सेनाओं को किरणपुर में परास्त कर दिया। तत्पश्चात् चालुक्यों ने किरणपुर (बालाघाट, म० प्र०) को जला दिया। इस पराजय से शंकरगण को गहरा धक्का लगा। बिल्हारी अभिलेख शंकरगण को मलय देश पर आक्रमण करने का श्रेय प्रदान करता है परन्तु यह उल्लेख संदिग्ध है कि उसने अपनी पुत्री लक्ष्मी का विवाह राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय के पुत्र जगत्तुंग के साथ किया था।

10.3.2 युवराज प्रथम

शंकरगण के दो पुत्र थे– बालहर्ष और युवराज प्रथम बालहर्ष का शासन अल्पकालीन था और उसके विषय में हमें कुछ भी पता नहीं है। दसवीं शताब्दी के मध्य युवराज प्रथम शासक हुआ। वह एक विजेता था जिसने बंगाल के पाल तथा कलिंग के गंग शासकों को पराजित किया। परन्तु चन्देल नरेश यशोवर्मन से वह पराजित हो गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय ने उसके राज्य पर आक्रमण किया। इसमें कलचुरियों को करारी हार हुई तथा उनके राज्य पर कुछ काल के लिए राष्ट्रकूटों का अधिकार हो गया। परन्तु शीघ्र ही युवराज प्रथम ने इस पराजय का बदला लिया तथा एक सेना के साथ उसने राष्ट्रकूटों को परास्त कर अपने राज्य से बाहर भगा दिया। बिल्हारी अभिलेख से पता चलता है कि उसने कर्नाटक तथा लाट को जीता था। धंग के खजुराहो लेख में भी उसकी शक्ति की प्रशंसा करते हुए उसे 'प्रसिद्ध राजाओं के मस्तक पर पैर रखनेवाला' कहा गया है। राजशेखर के ग्रन्थ 'विशालभंजिका' में युवराज को 'उज्जयिनीभुजंग' कहा गया है जो इस बात का सूचक है कि उसने मालवा को जीता था। युवराज के शासन काल में ही राजशेखर कन्नौज छोड़कर त्रिपुरी आया। वहीं रहते हुए उसने अपने दो ग्रन्थों काव्यमीमांसा तथा विद्धशालभंजिका की रचना की थी। युवराज शेव मतानुयायी था। उसने शैव सन्तों को दान दिया तथा उनके निवास के लिए गुर्गों में एक मंदिर तथा मठ बनवाया था। एक लेख में कहा गया है कि उसने डाहलमण्डल के शेव सन्त सद्भावशम्भु को तीन लाख गाँव भिक्षा में दिया था। उसकी पत्नी नोहला चालुक्य वंशीया कन्या थी जिसने बिल्हारी के निकट शिव का एक विशाल मंदिर बनवाया तथा उसके लिए कई गाँव दान में दिये। भारद्वाज वंशी ब्राह्मण भाकमिश्र युवराज का प्रधानमंत्री था। भेड़ाघाट (जबलपुर) का प्रसिद्ध 'चौसठ योगिनी मंदिर' का निर्माण भी युवराज के समय में ही हुआ था।

10.3.3 लक्ष्मणराज

युवराज प्रथम के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणराज शासक बना। वह भी एक शक्तिशाली राजा था जिसने कलचुरी साम्राज्य का चतुर्दिक् विस्तार किया। बिल्हारी तथा गोहरवा के लेखों से उसकी विजयों के विषय में सूचना प्राप्त होती है। बिल्हारी लेख के अनुसार युवराज ने 'कोशलराज को जीतते हुए आगे बढ़कर उड़ीसा के राजा से रत्न और स्वर्ण से जटिल कलिय (नाग) की प्रतिभा प्राप्त की। इससे उसने सोमनाथ की पूजा की।' इसी प्रकार बिल्हारी लेख में कहा गया है कि उसने बंगाल के राजा को पराजित किया, पाण्ड्यराज को पराभूत किया, लाट के राजा को लूटा, गुर्जर नरेश को जीता तथा कश्मीर के राजा ने मस्तक झुकाकर उसके चरणों की पूजा किया। इन लेखों का विवरण यद्यपि प्रशस्ति प्रकार का है जिसमें अतिरंजना का पुट मिलता है तथापि इसमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य निहित है। उसका सोमनाथ तक अभियान तथ्य पर आधारित प्रतीत होता है। दसवीं शती के द्वितीयार्ध में गुर्जर तथा लाट भारी अव्यवस्था के शिकार थे। लाट प्रदेश पर राष्ट्रकूटों के सामन्त शिलाहार वंश तथा उत्तरी गुजरात पर कन्नौज के प्रतिहारों का अधिकार था। इन दोनों शक्तियों के पतन के दिनों में इन प्रदेशों में अव्यवस्था फैल गई, जिसका लाभ उठाते हुए लक्ष्मणराज ने इन प्रदेशों से होते हुए सोमनाथ तक सफल अभियान किया होगा। कोशल से तात्पर्य दक्षिण कोशल से है। यहाँ संभवतः उड़ीसा केसोमवंशी राजा राज्य करते थे। जहाँ तक बंगाल का प्रश्न है, हमें ज्ञात है कि दसवीं शती के द्वितीयार्ध से वहाँ शासन करने वाले पालवंश की स्थिति निर्बल पड़ गई थी। ग्यारहवीं शती के प्रथमार्ध में कलचुरी बंगाल के शासकों के घनिष्ठ सम्पर्क में थे। संभव है इसी का लाभ उठाते हुए लक्ष्मणराज ने वहाँ सैनिक अभियान कर सफलता प्राप्त की हो। यहाँ तक हम कुछ ठोस आधार पर है, लेकिन जहाँ तक कश्मीर तथा पाण्ड्य राज्य की विजय का प्रश्न है, यह शुद्ध रूप से काव्यात्मक प्रतीत होता है।

लक्ष्मणराज ने अपनी पुत्री का विवाह चालुक्य नरेश विक्रमादित्य चतुर्थ के साथ किया। अपने पिता के समान लक्ष्मणराज भी शैव मत का पोषक था। उसने शैव सन्तों को संरक्षण प्रदान किया तथा हृदयशिव के लिए बहुमूल्य उपहारों सहित वैद्यनाथ मठ का दान किया। उसका प्रधान सचिव सोमेश्वर था जिसने विष्णु का एक मंदिर बनवाया था।

लक्ष्मणराज के बाद उसका पुत्र शंकरगण तृतीय राजा बना। उसकी कोई उपलब्धि नहीं है। उसके बाद उसका छोटा भाई युवराज द्वितीय राजा बना। गोहरवा लेख में उसे 'चेदीन्द्रचन्द्र' अर्थात् चेदिवंश के राजाओं में चन्द्र कहा गया है। उसने परमेश्वर की उपाधि धारणा की। किन्तु सैनिक दृष्टि से वह निर्बल शासक था जिसे वेंगी के चालुक्य नरेश तैल द्वितीय तथा परमार नरेश मुंज ने पराजित कर दिया। त्रिपुरी पर मुख्ज ने कुछ समय तक अधिकार बनाए रखा। उसके हटने के बाद मन्त्रियों ने युवराज द्वितीय को हटाकर उसके पुत्र कोक्कल द्वितीय को राजा बना दिया। उसके समय में कलचुरियों ने अपनी शक्ति एवं मर्यादा को पुनः प्राप्त कर लिया। कोक्कल द्वितीय ने गुर्जरदेश (गुजरात) पर आक्रमण कर चालुक्य नरेश

चामुण्डराज को पराजित किया। उसने कुन्तल तथा गौड़ शासकों के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त की। उसने 1019 ई० तक राज्य किया।

10.4 कलचुरि सत्ता का उत्कर्ष : गांगेयदेव विक्रमादित्य (1019–1041 ई0)

कोक्कल द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी गांगेयदेव विक्रमादित्य कलचुरिवंश का एक प्रतापी राजा हुआ। उसके राज्यारोहण के समय कलचुरी राज्य की स्थिति अत्यन्त निर्बल थी। परमार भोज तथा चन्देल विद्याधर उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। अतः उनके विरुद्ध अपने वंश की सत्ता सुदृढ़ बनाना गांगेयदेव का प्रमुख कर्तव्य था।

ऐसा लगता है कि अपने शासन के प्रारम्भ में वह चन्देल नरेश विद्याधर की अधीनता स्वीकार करता था। खजुराहो से प्राप्त एक चन्देल लेख से इसकी सूचना मिलती है जिसके अनुसार कलचुरि नरेश विद्याधर की गुरु के समान पूजा करता था। यहाँ कलचुरि नरेश से तात्पर्य गांगेयदेव से ही है। मिराशी का विचार है कि गांगेयदेव ने राज्यपाल के विरुद्ध अभियान में विद्याधर की ओर से भाग लिया था। चूंकि परमार भोज भी विद्याधर से आतंकित था, अतः वह गांगेयदेव का स्वभाविक मित्र बन गया। भोज ने कल्याणी के चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय के विरुद्ध जो सैनिक अभियान किया था. गांगेयदेव भी उसमें शामिल हुआ था। किन्तु जयसिंह ने उसे पराजित कर दिया। इसके साथ ही भोज के साथ उसको मित्रता भी समाप्त हो गयी। मध्य भारत पर प्रभुत्व के लिए दोनों के बीच एक युद्ध भी हुआ जिसमें गांगेयदेव पराजित हो गया। किन्तु इससे गांगेयदेव हताश नहीं हुआ। विद्याधर की मृत्यु के बाद उसने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दिया तथा इस अवधि में उत्तरी भारत का सार्वभौम शासक बनने के लिए उसने अनेक विजय की। उसने अंग, उत्कल, काशी तथा प्रयाग को जीता तथा प्रयाग में उसने अपना एक निवास स्थान बनाया। काशी का क्षेत्र संभवतः उसने पाल शासकों से छीना था। प्रयाग पर उसके अधिकार की पुष्टि खैरा और जबलपुर के लेखों से होती नै दिन गांगेयदेव ने बटवृक्ष के नीचे निवास करते हुए अपनी एक सौ रानियों के साथप्राणोत्सर्ग कर मुक्ति प्राप्त किया था। इससे तथा उत्तर भारत में प्राप्त उसके बहुसंख्यक सिक्कों से वहाँ उसका अधिकार प्रमाणित होता है। सम्पूर्ण कलचुरी वंश में सिक्के प्रवर्ति्त करने वाला गांगेयदेव पहला और शायद अन्तिम राजा था। ये सिक्के लक्ष्मी शैली के हैं। राजपूत राजाओं में सर्वप्रथम उसी ने स्वर्ग सिक्के प्रचलित करवाए थे। बनारस पर गांगेयदेव के अधिकार का परोक्ष रूप से समर्थन बेहको के विवरण सेभी होता है जिसमें बताया गया है कि 1033 ई० में अहमद नियाल्तगीन ने जब बनारस पर आक्रमण किया तो वहाँ का शासक गंग (गांगेयदेव) था। गांगेयदेव ने उत्तर–पश्चिम में पंजाब तथा दक्षिण में कुन्तल तक सैनिक अभियान किया। एक नेपाली पाण्डुलिपि में उसे तीरभुक्ति (तिरहुत) का स्वामी बताया गया है। पूर्व की ओर उसने उड़ीसा तक अभियान कर विजय प्राप्त की थी। गोइखा लेख से सूचना मिलती है कि उसने उत्कल के राजा को जीतकर अपनी भुजाओं को एक विजयस्तम्भ बना दिया था।

इस प्रकार गांगेयदेव एक विस्तृत साम्राज्य का शासक बना तथा महाराजाधिराज, परमेश्वर, महामण्डलेश्वर जैसी उच्च सम्मानपरक उपाधियों को ग्रहण किया। खैरालेख से पता चलता है कि उसने 'विक्रमादित्य' की भी उपाधि ग्रहण की थी। अपने पूर्वजों की भाँति गांगेयदेव भी शैव मतानुयायी था तथा उसने भी शैव मंदिरों एवं मठों का निर्माण करवाया था।

10.5 कर्ण अथवा लक्ष्मीकर्ण (1041–1070 ई0)

गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्णदेव अथवा लक्ष्मीकर्ण शासक बना। वह अपने वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था। उसके कुल आठ अभिलेख मिलते हैं, जिनसे हम उसकी उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। उसने अनेक सैनिक अभियान किए। गुजरात के चालुक्य नरेश भीम के साथ मिलकर उसने मालवा के परमार वंशी शासक भोज को पराजित किया। रासमाला से पता चलता है कि कर्ण ने धारा को ध्वस्त करने के बाद राजकोष पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में भोज मारा गया। प्रबन्धचिन्तामणि से भी इसका समर्थन होता है। भेड़ाघाट अभिलेख में कहा गया है कि 'कर्ण की वीरता के सामने वंग तथा कलिंग के शासक कांपने लगे। बंगाल में इस समय जातवर्मन् नामक कोई राजा शासन कर रहा था। कर्ण ने अपनी कन्या वीरश्री का विवाह उसके साथ कर दिया। कर्ण ने कलिंग की विजय की तथा 'त्रिकलिंगाधिपति' को उपाधि धारण की। पूर्व की ओर गौड़ तथा मगध के पाल शासकों को उसने पराजित किया। तिब्बती परम्परा से पता चलता है कि मगध में उसने बहुसंख्यक बौद्ध मंदिरों तथा मठों को नष्ट कर दिया था। पाल नरेश विग्रहपाल तृतीय को उसने युद्ध में पराजित किया। कर्ण के पैकोर (वीरभूमि जिला) लेख से पता चलता है कि उसने वहाँ की देवी को स्तम्भ समर्पित किया था। हेमचन्द्र भी कर्ण द्वारा विग्रहपाल की पराजय का उल्लेख करता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कर्ण ने उसके साथ सन्धि कर ली तथा अपनी कन्या का विवाह कर उसे अपना मित्र बना लिया।

कर्ण का सबसे प्रसिद्ध संघर्ष बुन्देलखण्ड के चन्देल वंश के साथ हुआ। विद्याधर की मृत्यु वहाँ का शासन निर्बल राजाओं के हाथ में आ गया जो अपनी रक्षा करने में सक्षम नहीं थे। इसका लाभ उठाते हुए कर्ण ने चन्देल नरेश देववर्मन पर आक्रमण कर उसे परास्त कर उसके राज्य के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया। चन्देल लेखों से भी पता चलता है कि कुछ समय के लिए उनका राज्य कर्ण के आक्रमणों से पूर्णतया विनष्ट कर दिया गया था। विल्हण कर्ण को 'कालंजर गिरि के अधिपतियों का काल' कहता है।

इस प्रकार विविध स्रोतों से स्पष्ट होता है कि कर्ण तत्कालीन मध्य भारत का सर्वशक्तिमान सम्राट बन गया। परमार तथा चन्देल राजाओं का उन्मूलन करके उसने अपनी स्थिति सार्वभौम बना ली। उसके लेखों की प्राप्ति स्थानों–पैकोर, बनारस, गोहरवा आदि से भी पता चलता है कि वह एक विस्तृत भूभाग का स्वामी था। कभी–कभी कुछ यूरोपीय इतिहासकार कर्ण की उपलब्धियों की तुलना फ्रांसीसी सेनानायक नेपोलियन से करते हैं।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कर्ण अपनी अजेयता अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रख सका तथा अपने शासन के अन्तिम दिनों में उसे पराजय उठानी पड़ी। चन्देल नरेश कीर्तिवर्मन् द्वारा वह पराजित कर दिया गया। इससे कर्ण की शक्ति अत्यन्त निर्बल पड़ गयी। पूर्व में विग्रहपाल तृतीय के पुत्र नयपाल, पश्चिममें परमार नरेश उदयादित्य उससे पश्चिम में अन्हिलवाड़ के चालुक्य भीम प्रथम तथा दक्षिण में कल्याणी के चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम ने भी कर्ण को कई युद्धों में पराजित कर उसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। 1073 ई0 के लगभग उसका शासन समाप्त हो गया।

कर्ण भी अपने पिता के समान शैव मतानुयायी था तथा बनारस में उसने कर्णमेरु नामक शैवमंदिर बनवाया था। उसने त्रिपुरी के निकट कर्णावती (आधुनिक कर्णबेल) नामक नगर की स्थापना भी करवायी थी। उसका विवाह हूणवंशीया कन्या आवल्लदेवी के साथ हुआ था। सारनाथ के बौद्ध भिक्षुओं को भी उसने सुविधाएं प्रदान की थी। प्रयाग तथा काशी में वह दान वितरित करता था।

10.6 कलचुरि वंश का पतन

कर्ण की मृत्यु के बाद कलचुरियों की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। उसके बाद उसकी पत्नी आवल्लदेवी से उत्पन्न पुत्र यशः कर्ण राजा बना। उसके जबलपुर तथा खैरा लेखों से पता चलता है कि स्वयं लक्ष्मीकर्ण ने ही उसका राज्याभिषेक किया था। वह अपने पिता के समान शक्तिशाली नहीं था। उसकी एकमात्र सफलता, जिसका उल्लेख उसके लेखों में किया गया है, यह थी कि वह आन्ध्र के राजा को जीतकर गोदावरी नदी तट तक पहुंच गया तथा वहाँ भीमेश्वर मंदिर में पूजा की। यह पराजित राजा वेंगी का पूर्वी चालुक्य वंशी विजयादित्य सप्तम था। किन्तु वह अधिक समय तक अपना राज्य सुरक्षित नहीं रख सका। उसे गम्भीर 'चुनौती काशी–कन्नीज क्षेत्र के गाहड़वालों द्वारा मिली. जिनका उत्कर्ष चन्द्रदेव के नेतृत्व में तेजी से हुआ। उसने काशी, कन्नौज तथा दिल्ली के समीपवर्ती सभी क्षेत्रों को जीतकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर दिया। इनस्थानों को उसने यशः कर्ण से ही जीता होगा। इसके अतिरिक्त परमार लक्ष्मदेव, कल्याणी के चालुक्य नरेश विक्रमादित्य पष्ठ, चन्देल नरेश सल्लक्षणवर्मा आदि ने भी कई युद्धों में यशः कर्ण को पराजित कर दिया।

यशः कर्ण के बाद उसका पुत्र गयाकर्ण (1123–1151 ई०) राजा बना। वह भी एक निर्बल राजा था जो अपने वंश की प्रतिष्ठा एवं साम्राज्य को सुरक्षित नहीं रख सका। चन्देल नरेश मदनवर्मा ने उसे बुरी तरह पराजित किया गया कर्ण इतना भयाक्रान्त था कि उसका नाम सुनकर ही भाग खड़ा होता था। दक्षिणी कोशल के कलचुरी सामन्तों ने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी तथा उनके शासक रत्नदेव द्वितीय ने भी गयाकर्ण को पराजित किया। गयाकर्ण के बाद नरसिंह, जयसिंह तथा विजयसिंह के नाम मिलते हैं जिन्होंने बारी–बारी से शासन किया। वे भी अपने साम्राज्य को विघटन से बचा नहीं सके। बारहवीं शती के अन्त तक इस वंश ने महाकोशल में किसी न किसी प्रकार अपनी सत्ता कायम रखी। अन्ततोगत्वा तेरहवीं शती के

प्रारम्भ में इस वंश के अन्तिम शासक विजयसिंह को चन्देल शासक त्रैलोक्यवर्मन् परास्त कर त्रिपुरी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार कलचुरी–चेदिवंश का अन्त हुआ।

10.6 सारांश

कर्ण, यशःकर्ण और जयसिंह ने सम्राट की प्रचलित उपाधियों के अतिरिक्त अश्वपति, गजपति, नरपति और राजत्रयाधिपति की उपाधियाँ धारण की। कोक्कल्ल प्रथम के द्वारा अपने 17 पुत्रों की राज्य के मंडलों में नियुक्ति चेदि राज्य के शासन में राजवंश के व्यक्तियों को महत्वपूर्ण स्थान देने के चलन का उदाहरण है। राज्य को राजवंश का सामूहिक अधिकार माना जाता था। राज्य में महाराज के बाद युवराज अथवा महाराजपुत्र का स्थान था। महारानियाँ भी राज्यकार्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती थीं। मंत्रिमुख्यों के अतिरिक्त अभिलेखों में महामंत्रि, महामात्य, महासांधिविग्रहिक, महाधर्माधिकरण, महापुरोहित, महाक्षपटलिक, महाप्रतीहार, महासामंत और महाप्रमातृ के उल्लेख मिलते हैं। मंत्रियों का राज्य में अत्यधिक प्रभाव था। कभी–कभी वे सिंहासन के लिए राज्य परिवार में से उचित व्यक्ति का निर्धारण करते थे। राजगुरु का भी राज्य के कार्यों में गौरवपूर्ण महत्व था। सेना के अधिकारियों में महासेनापति के अतिरिक्त महाश्वसाधनिक का उल्लेख आया है जो सेना में अश्वारोहियों के महत्व का परिचायक है। कुछ अन्य अधिकारियों के नाम हैं : धर्मप्रधान, दशमूलिक, प्रमत्तवार, दुष्टसाधक, महादानिक, महाभांडागारिक, महाकरणिक और महाकोट्टपाल। नगर का प्रमुख पुर प्रधान कहलाता था। पद वंशगत नहीं थे, यद्यपि व्यवहार में किसी अधिकारी के वंशजों को राज्य में अपनी योग्यता के कारण विभिन्न पदों पर नियुक्त किया जाता था। धर्माधिकरण के साथ एक पंचकुल (समिति) संयुक्त होता था। संभवतः ऐसी समितियाँ अन्य विभागों के साथ भी संयुक्त है। राज्य के भागों के नामों में मंडल और पत्तला का उल्लेख अधिक थी। चेदि राजाओं का अपने सामंतों पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण था। राज्य–करों की सूची में पट्टकिलादाय और दुस्साध्यादाय उल्लेखनीय हैं, ये संभवः इन्हीं नामों के अधिकारियों के वेतन के रूप में एकत्रित किए जाते थे। इसी प्रकार घट्टपति और तरपति भी कर उगाहते थे। शौल्किक शुल्क एकत्रित करनेवाला अधिकारी था। विषयादानिक भी कर एकत्रित करनेवाला अधिकारी था। विक्रय के लिए वस्तुएँ मंडपिका में आती थीं जहाँ उनपर कर लगाया जाता था।

ब्राह्मणों में सवर्ण विवाह का ही चलन था किंतु अनुलोम विवाह अज्ञात नहीं थे। कुछ वैश्य क्षत्रियों के कर्म भी करते थे। कायस्थ भी समाज के महत्वपूर्ण वर्ग थे। कलचुरि नरेश कर्ण ने हूण राजकुमारी आवल्लदेवी से विवाह किया था, उसी की संतानयशः कर्ण था। बहुविवाह का प्रचलन उच्च कुलों में विशेष रूप से था। सती का प्रचलन था किंतु स्त्रियाँ इसके लिए बाध्य नहीं थीं। संयुक्त–परिवार–व्यवस्था के कई प्रमाण मिलते हैं। व्यवसाय और उद्योग श्रेणियों के रूप में संगठित थे। नाप की इकाइयों में खारी, खंडी, गोणी, घटी, भरक इत्यादि के नाम मिलते हैं। गांगेयदेव ने बैठी हुई देवी की शैली के सिक्के चलाए। ये

तीनों धातुओं में उपलब्ध हैं। यह शैली उत्तरी भारत की एक प्रमुख शैली बन गई और कई राजवंशों ने इसका अनुकरण किया।

धर्म के क्षेत्र में सामान्य प्रवृत्ति समन्वयवादी और उदार थी। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की समान पूजा होती थी। जैन धर्म भी बहु विख्यात था। विष्णु के अवतारों में कृष्ण के स्थान पर बलराम की अंकित किए जाते थे। विष्णु की पूजा का अत्यधिक प्रचलन था किंतु शिव–पूजा उससे भी अधिक जनप्रिय थी। चेदि राजवंश के देवता भी शिव थे। युवराज देव प्रथम के समय में शैवधर्म का महत्व बढ़ा। उसने मत्तमयूर शाखा के कई शैव आचार्यों को चेदि देश में बुलाकर बसाया और शैव मंदिरों और मठों का निर्माण किया। कुछ शैव आचार्य राजगुरु के रूप में राज्य के राजनीतिक जीवन में महत्व रखते थे। गोलकी मठ में 64 योगिनियों और गणपति की मूर्तियाँ थीं। वह मठ दूर–दूर के विद्वानों और धार्मिकों के आकर्षण का केंद्र था और उसकी शाखाएँ भी कई स्थानों में स्थापित हुई थीं। ये मठ शिक्षा के केंद्र थे। इनमें जनकल्याण के लिए सत्र तो थे ही, इनके साथ व्याख्यानशालाओं का भी उल्लेख आता है। गणेश, कार्तिकेय, अंबिका, सूर्य और रेवंत की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। बौद्ध और जैन धर्म भी समृद्ध दशा में थे। जगह जगह आज भी अत्याधिक संख्या में कल्चुरी कालीन जैन तीर्थंकर और जैन देवी–देवता यक्ष यक्षी की प्रतिमाएं भूगर्भ से प्राप्त होती रहती है। लेकिन जैन मंदिर अवशेष कम देखने में आते है। कुछ इतिहासकारों का मानना है की जैन और शैव धर्मों के देवस्थान पहले एक ही रहें होंगे।

चेदि नरेश दूर–दूर के ब्राह्मणों को बुलाकर उनके अग्रहार अथवा ब्रह्मस्तंब स्थापित करते थे। इस राजवंश के नरेश स्वयं विद्वान् थे। मायुराज ने उदात्ताराघव नाम के एक नाटक और संभवमः किसी एक काव्य की भी रचना की थी। भीमट ने पाँच नाटक रचे जिनमें स्वप्नदशानन सर्वश्रेष्ठ था। शंकरगण के कुछ श्लोक सुभाषित ग्रंथों में मिलते हैं। राजशेखर के पूर्वजों में अकालजलद, सुरानंद, तरल और कविराज चेदि राजाओं से ही संबंधित थे। राजशेखर ने भी कन्नौज जाने से पूर्व ही छः प्रबंधों की रचना की थी और बालकवि की उपाधि प्राप्त की थी। युवराजदेव प्रथम के शासनकाल में वह फिर त्रिपुरी लौटा जहाँ उसने विद्धशालभंजिका और काव्यमीमांसा की रचना की। कर्ण का दरबार कवियों के लिए पसिद्ध था। विद्यापति और गंगाधर के अतिरिक्त वल्लण, कर्पूर और नाचिराज भी उसी के दरबार में थे। बिल्हण भी उसके दरबार में आया था। कर्ण के दरबार में प्रायः समस्यापूरण की प्रतियोगिता होती थी। कर्ण ने प्राकृत के कवियों को भी प्रोत्साहन दिया था।

कलचुरि नरेशों ने, विशेष रूप से युवराजदेव प्रथम, लक्ष्मणराज द्वितीय और कर्ण ने, चेदि देश में अनेक भव्य मंदिर बनवाए। इनके उदाहरण पर कई मंत्रियों और सेनानायकों ने भी शिव के मंदिर निर्मित किए। इनमें से अधिकांश की विशेषता उनका वृत्ताकार गर्भगृह है। इनकी मूर्तियों की कला पर स्थानीय जन का प्रभाव स्पष्ट है। ये मूर्तिफलक विषय की अधिकता और भीड़ से बोझिल से लगते हैं।

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1) कलचुरि वंश के इतिहास के विभिन्न स्रोतों के विषय में वर्णन कीजिये।

.....

2) कलचुरि वंश के शासकों के बारे में विस्तार पूर्वक विवेचना कीजिये।

.....

3) कलचुरि वंश के प्रारम्भिक इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

.....

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

वासुदेव विष्णु मिराशी : इंसक्रिप्शंस ऑव दि कलचुरि–चेदि इरा

आर.डी.बनर्जी :*दि हैहयाज ऑव त्रिपुरी ऐंड देयर मान्यूमेंट्स*

महाजन, वी.डी. : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (647 ई0 – 1200 ई0)

मजूमदार, आर.सी. : एनयिेण्ट इण्डिया।

मध्य प्रदेश देवास : गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल प्रेस, 1993

सिंह, नागेन्द्र कुमार : इनसायक्लोपीडिया ऑफ जैनिज्म

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 इतिहास के स्रोत

11.3 राजनीतिक इतिहास

- 11.3.1 मूलराज
- 11.3.2 चामुण्डराज
- 11.3.3 भीमदेव प्रथम
- 11.3.4 कर्ण
- 11.3.5 जयसिंह सिद्धराज
- 11.3.6 कुमारपाल
- 11.3.7 अजयपाल
- 11.3.8 भीमदेव द्वितीय

11.4 सारांश

11.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.6 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 प्रस्तावना

सोलंकी अग्निकुल से उत्पन्न राजपूतों में से एक थे। वाडनगर लेख में इस वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक अथवा कमण्डलु से बताई गई है। उन्होंने गुजरात में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक शासन किया। उनकी राजधानी अन्हिलवाड़ में थी। यह निश्चित नहीं है कि दक्षिण के चालुक्य वंश से इसका कोई संबंध था या नहीं। उल्लेखनीय है कि दक्षिण के वंश का नाम 'चालुक्य' था जबकि गुजरात के वंश को 'चालुक्य' कहा गया है। इस वंश के शासक जैन धर्म के पोषक तथा संरक्षक थे।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गुजरात के चालुक्य वंश के इतिहास तथा उसके शासकों के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

11.2 इतिहास के स्रोत

गुजरात के चालुक्य वंश का इतिहास हम मुख्य रूप से जैन लेखकों के ग्रन्थों से ज्ञात करते हैं। ये लेखक चालुक्य शासकों की राजसभा में निवास करते थे। इन ग्रन्थों में हेमचन्द्र का द्वाश्रयकाव्य, मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि. सोमेश्वरकृत कीर्तिकौमुदी, जयसिंहरि का कुमारभूपालचरित, आदि का उल्लेख किया जा सकता है जिनके अध्ययन से हम इस वंश के शासकों की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों का विवरण प्राप्त करते हैं। भारतीय साहित्य के अतिरिक्त मुसलमान लेखकों अलगर्दीजी, इब्न–उल–अतहर, हसन निजामी आदि के विवरणों से तुर्कों तथा चालुक्यों के संघर्ष का परिचय प्राप्त होता है।

चालुक्य राजाओं के लेख भी मिलते हैं जो न्यूनाधिक रूप से उनके इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण लेख कुमारपाल की वाडनगर प्रशस्ति (971 ई०) है जिसकी रचना श्रीपाल ने की थी। इसके अतिरिक्त तलवाड़ा, उदयपुर (भिलसा), कादि आदि के लेखों से जयसिंह, कुमारपाल, भीम द्वितीय आदि चालुक्य राजाओं की उपलब्धियों का विवरण मिलता है। सोलंकी वंश के कुछ प्रमुख इतिहास जानने के स्रोत निम्न हैं –

वाडनगर अभिलेख– कुमारपाल से सम्बंधित
उज्जैन अभिलेख– जयसिंह सिद्धराज से सम्बंधित
उदयपुर अभिलेख– जयसिंह सिद्धराज से सम्बंधित
चितौड़गढ़ अभिलेख– कुमारपाल से संबंधित
प्रबंधचिन्तामणी ग्रन्थ– मेरुतुंगाचार्य द्वारा रचित
कीर्ति कौमुदी ग्रंथ– सोमेश्वर द्वारा रचित
कुमारपाल चरित ग्रंथ– हेमचंद्र सूरि की रचना

इन सभी साक्ष्यों के आधार पर चालुक्य इतिहास का वर्णन प्रस्तुत किया जायेगा।

11.3 राजनीतिक इतिहास

अन्हिलवाड़ के चालुक्यों के उदय पूर्व गुजरात का इतिहास सामान्यतः कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों से संबंधित है। प्रतिहार महेन्द्रपाल का साम्राज्य गुजरात तक विस्तृत था तथा उसके उत्तराधिकारी महीपाल ने भी कम से कम 914 ई० तक यहाँ अपना अधिकार बनाए रखा। महीपाल की राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय (915–17 ई०) द्वारा पराजय के पश्चात् प्रतिहारों की स्थिति निर्बल पड़ गयी। राष्ट्रकूटों के साथ अनवरतसंघर्ष के परिणामस्वरूप गुजरात क्षेत्र भारी अराजकता एवं अव्यवस्था का शिकार हो गया। प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के पतन के उपरान्त चालुक्यों को गुजरात में अपनी सत्ता स्थापित करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।

11.3.1 मूलराज

गुजरात के चालुक्य शाखा की स्थापना मूलराज प्रथम (941–995 ई०) ने की थी। उसने प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के पतन का लाभ उठाते हुए नवीं शती के द्वितीयार्ध मे सरस्वती घाटी में अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। गुजराती अनुश्रुतियों से पता चलता है कि मूलराज का पिता राजि कल्याणकटक का क्षत्रिय राजकुमार था तथा उसकी माता गुजरात के अण्हिलपुर के चापोत्कट वंश की कन्या थी। उसके पिता की उपाधि 'महाराजाधिराज' का वर्णन गुजराती अनुश्रुतियों में मिलती है, किन्तु उसकी स्वतंत्र स्थिति में संदेह है। संभवतः वह प्रतिहारों का सामन्त था ।

मूलराज एक शक्तिशाली राजा था। गद्दी पर बैठने के बाद वह साम्राज्य विस्तार के कार्य में जुट गया। कादि लेख से पता चलता है कि उसने सारस्वत मण्डल को अपने बाहुबल से जीता था। कुमारपालकालीन वाडनगर प्रशास्ति से पता चलता है कि उसने चापोत्कट वंश की लक्ष्मी को बन्दी बना लिया था। अनुश्रुतियों के अनुसार मूलराज सारस्वत मण्डल को ग्रहण करने मात्र से ही संतुष्ट नहीं हुआ अपितु उसने उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में अपने राज्य का विस्तार किया। उसकी महत्वाकांक्षाओं ने उसे अपने पड़ोसियों के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष में ला दिया। इनमें सर्वप्रथम शाकम्भरी के सपादलक्ष शासक विग्रहराज एवं लाट का शासक वारप्प थे। वारप्प को कभी–कभी तैलप का सेनापति भी कहा जाता था जो पश्चिमी चालुक्य वंश का राजा था। प्रबंधचिंतामणि से पता चलता है कि वारप्प तथा विग्रहराज ने मिलकर मूलराज पर आक्रमण किया। मूलराज इनका सामना नहीं कर सका तथा उसने कथा दुर्ग में शरण ली। बाद में मूलराज ने चाहमान नरेश से सन्धि कर ली तथा वारप्प पर आक्रमण करने की योजना तैयार की। द्वाश्रयमहाकाव्य से पता चलता है कि मूलराज के पुत्रचामुंडराज ने वारप्प को पराजित कर मार डाला। त्रिलोचनपाल के सूरत दानपत्र मे भी इसका सर्मथन होता है। जिसमें कहा गया है कि वारप्प के पुत्र गोगिराज ने अपने देश को शत्रुओं से मुक्त कराया था। यहाँ शत्रुओं से तात्पर्य मूलराज से ही है। सोमेश्वर कृत कीर्तिकौमुदी से पता चलता है कि मूलराज ने स्वयं वारप्प की हत्या की थी। हेमचन्द्र के द्वाश्रयकाव्य से पता चलता है कि मूलराज ने सौराष्ट्र तथा कच्छ को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। सौराष्ट्र

का राजा ग्राह रितु जाति का आभीर था तथा उसकी नियुक्ति स्वयं मूलराज द्वारा ही की गई थी। लेकिन वह दुराचारी हो गया। उसने कच्छ के राजा लक्ष अथवा लाखा को भी अपनी ओर मिलाकर अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसे दण्डित करने के लिए मूलराज ने उस पर आक्रमण कर उसे मार डाला। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि कच्छ के राजा लाखा ने ग्यारह बार मूलराज को हराया लेकिन बारहवीं बार मूलराज ने उसे मार डाला था। इस विजय के फलस्वरूप चालुक्यों का सौराष्ट्र पर अधिकार हो गया। यहाँ स्थित सोमनाथ मंदिर उनके राज्य का प्रसिद्ध तीर्थ बन गया । मेरुतुंग के अनुसार मूलराज प्रत्येक सोमवार को वहाँ दर्शन के निमित्त जाया करता था। बाद में मंडाली में उसने सोमेश्वर का मंदिर बनवाया था। मूलराज को कुछ अन्य क्षेत्रों सफलता प्राप्त हुई। राष्ट्रकूट नरेश धवल के बीजापुर लेख से पता चलता है कि मूलराज ने आबू पर्वत के परमार शासक धरणिवाराह को पराजित किया था। धरणिवाराह ने राष्ट्रकूट नरेश के दरबार में शरण ली थी। परन्तु उसे परमार वंशी मुंज तथा चौहान शासक विग्रहराज द्वितीय के हाथों पराजय उठानी पड़ी। संभवतः विग्रहराज के विरुद्ध युद्ध में वह मार डाला गया।

11.3.2 चामुण्डराज

मूलराज प्रथम का पुत्र चामुण्डराज उसकी मृत्यु के बाद 995 ई० में राजा हुआ। उसने धारा के परमार शासक सिन्धुराज के विरुद्ध सफलता प्राप्त की परन्तु वह लाट प्रदेश पर अधिकार रख सकने में सफल नहीं रहा तथा वारप्प के पुत्र गोग्गिराज ने पुनः वहाँ अपना अधिकार जमा लिया। कलचुरी नरेश कोक्कल द्वितीय ने भी उसे पराजित किया।

11.3.3 भीमदेव प्रथम

दुर्लभराज का उत्तराधिकारी उसका भतीजा भीमदेव प्रथम हुआ। वह अपने वंश का सबसे शक्तिशाली राजा था। उसके प्रबल प्रतिद्वन्दी परमार भोज तथा कलचुरी नरेश कर्ण थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में भोज ने भीम पर दबाव बढ़ाया तथा उसे कुछ सफलता भी मिली। उदयपुर लेख से पता चलता है कि भोज ने भीम को पराजित किया था। किन्तु शीघ्र ही भीम ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली तथा उसने परमार नरेश भोज के विरुद्ध कलचुरी नरेश कर्ण के साथ मिलकर एक संघ तैयार किया। इस संघ ने मालवा के ऊपर आक्रमण कर धारा नगर को लूटा। कल्याणी के चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम ने भी भोज पर आक्रमण कर उसे पराजित किया, धारा को लूटा तथा माण्डु पर अधिकार कर लिया। बिल्हण के विवरण से पता चलता है कि भोज अपनी राजधानी छोड़कर भाग गया। इस प्रकार उसकी प्रतिष्ठा मर्दित हो गयी। इसी बीच परमार भोज की मृत्यु हो गई जिससे भीम तथा कर्ण के आपसी संबंध भी बिगड़ गए। इसका मुख्य कारण धारा से लूटी गई सम्पत्ति का बँटवारा था। अतः भीम ने कर्ण के विरुद्ध एक दूसरा संघ तैयार किया। इसमें परमार जयसिंह द्वितीय, जो भोज का उत्तराधिकारी था ने भी भीम की सहायता की थी। जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि भीम ने कर्ण को भी पराजित किया था। बताया गया है कि पहले तो चेदि नरेश ने भीम से लड़ने के लिए भीलों तथा म्लेच्छों की सेना तैयार की किन्तु बाद में उसकी शर्तों पर सन्धि कर

लेना श्रेयस्कर समझा। उसने भीम के वकील दामोदर को स्वर्ण मेरु सौंप दिया जिसे वह मालवा से उठा लाया था। हेमचन्द्र हमें बताता हैं कि भीम ने सिंध के राजा हम्मुक को पराजित कर उसे अपने अधीन कर लिया। वह एक शक्तिशाली राजा था जिसने कई शत्रुओं को पराजित किया था। भीम ने सिन्धु नदी पर पुल बनाकर उसके राज्य में प्रवेश कर उसे पराजित किया था। भीम की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि आबू पर्वत क्षेत्र पर अपना अधिकार सुदृढ करना था। आबू पर्वत का क्षेत्र मूलराज के समय चालुक्यों के नियन्त्रण में था किन्तु बाद में वहाँ के शासक धन्धुक ने भीम की सत्ता को चुनौती दी। फलस्वरूप भीम ने वहाँ आक्रमण कर पुनः अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया। भीम के पूर्वजों का नड्डुल के चाहमान शासकों के साथ मधुर संबंध थे। किन्तु महत्वाकांक्षी भीम ने इसे उलट दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि भीम ने इस राज्य पर कई आक्रमण किये किन्तु उसे सफलता नहीं मिली तथा उल्टे उसे पराभव सहना पड़ा। सुन्धापहाड़ी लेख से पता चलता है कि नाडुल के राजाओं– अंहिल तथा उसके चाचा अहिल, ने भीम को पराजित किया था। यह भी कहा गया है कि अंहिल के पुत्र बालाप्रसाद ने भीम को पराजित किया था। यह भी कहा गया है कि अंहिल के पुत्र बालाप्रसाद कारागार से कृष्णराज नामक शासक को मुक्त करने के लिये भीम को मजबूर किया था। यह परमार राजा था। इस प्रकार भीम नड्डुल के चाहमानों को नतमस्तक करने में सफल नहीं हो पाया।

भीम के शासनकाल की सबसे प्रमुख घटना, जिसका उल्लेख अनुश्रुतियों तथा लेखों में नहीं मिलता, महमूद गजनवी का सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण है। महमूद गजनवी ने सोमनाथ मंदिर को लूटा। किन्तु भीम ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ उससे अपनी रक्षा की। फरिश्ता लिखता है कि भीम ने तीन हजार मुसलमानों की हत्या कर दी थी। महमूद को उसके भय के कारण मार्ग बदल कर भागना पड़ा। उसके आक्रमण का भीम के शासन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। महमूद गजनवी के सोमनाथ मंदिर को ध्वस्त करके चले जाने के पश्चात् भीम ने उसका पुनः निर्माण करवाया। उसने 1064 ई० तक शासन किया।

इस प्रकार भीम एक अत्यन्त नीति–निपुण एवं पराक्रमी सम्राट था जिसने अपने समय की प्रमुख शक्तियाँ को नतमस्तक कर अपने वंश एवं साम्राज्य की गरिमा को बढ़ाया। वह एक महान् निर्माता भी था तथा पत्तन में उसने भीमेश्वरदेव तथा भट्टारिका के मंदिरों का निर्माण करवाया था। उसके सामन्त विमल ने आबू पर्वत पर दिलवाड़ा का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया था। यह वास्तु एवं स्थापत्य की अत्युत्कृष्ट रचना है।

11.3.4 कर्ण

भीम का पुत्र कर्ण एक निर्बल शासक था। उसे मालवा के परमारों ने पराजित किया। नाडोली के चौहानों ने भी उसके राज्य पर आक्रमण कर उसकी सत्ता को थोड़े समय के लिए चलायमान कर दिया। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि कर्ण ने आशापल्ली के भिल्ल राजा आशा के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी। कुमारपाल चित्तौड़गढ़ लेख में कर्ण के सदकूप पहाड़ी दर्रे के पास मालवों को जीतने का श्रेय दिया

गया है। किन्तु इसकी पुष्टि अन्य स्रोतों से नहीं होती। विजयों की अपेक्षा कर्ण की रुचि निर्माण कार्यों में अधिक थी। कर्णावती नामक नगर बसाकर वहाँ उसने कर्णेश्वर का मंदिर तथा कर्णसागर नामक झील का निर्माण करवाया था। अन्हिलवाड़ के कर्णमेरु नामक मंदिर के निर्माण का श्रेय भी उसी को दिया जाता है।

11.3.5 जयसिंह सिद्धराज

कर्ण के बाद उसकी पत्नी मयणल्लदेवी से उत्पन्न पुत्र जयसिंह सिद्धराज चालुक्य वंश का एक प्रसिद्ध राजा बना। उसके कई लेख प्राप्त हुए है। राज्यारोहण के समय वह कम आयु का था, अतः उसकी माँ ने कुछ समय तक संरक्षिका के रूप में कार्य किया। उसका एक प्रमुख कार्य सोमनाथ की यात्रा पर जाने वाले तीर्थयात्रियों के ऊपर लगने वाले कर को समाप्त करना था।

जयसिंह एक महान् योद्धा तथा विजेता था जिसने सभी दिशाओं में विजय प्राप्त की। उसकी प्रारम्भिक सफलताओं में से एक सौराष्ट्र के आभीर शासक को पराजित करना था। मेरुतुंग लिखता है कि आभीर शासक नवघन ने गिरनार से आगे बढ़ते हुए चालुक्य सेना को ग्यारह बार पराजित किया तथा वर्धमान (झल्वर) एवं दूसरे नगरों को घेर लिया। जयसिंह ने बारहवीं बार स्वयं उसके विरुद्ध अभियान करते हुए उसे मार डाला तथा अपनी ओर से सज्जन को सुराष्ट्र का दण्डाधिपति नियुक्त किया । दोहर्द लेख से भी इसकी पुष्टि होती है जहाँ बताया गया है कि जयसिंह ने सुराष्ट्र के राजा को बन्दी बना लिया था।

जयसिंह का दूसरा अभियान पश्चिम में मालवा के परमार राजाओं के विरुद्ध हुआ। मेरुतुंग के विवरण से पता चलता है कि जब जयसिंह अपनी राजधानी छोड़कर सोमेश्वर की यात्रा पर गया था तभी परमार शासक यशोवर्मन् ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उसे रौंद डाला तथा जयसिंह के मंत्री सान्तु को अपने अधीन कर उससे अपने पाँव धुलवाये। जयसिंह जब वापस लौटा तो अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तथा उसने मालवराज से बारह वर्षों तक लगातार युद्ध किया। अन्त में उसने परमार शासक यशोवर्मन् को युद्ध में पराजित कर उसे बन्दी बना लिया। इस विजय से उसका परमार राज्य के बड़े भाग पर अधिकार हो गया। यशोवर्मन् ने कुछ समय के लिए उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुमारपालचरित से पता चलता है कि जयसिंह ने धारा को ध्वस्त कर दिया तथा नरवर्मन की हत्या कर दी। जयसिंह के लेखों से भी इसका समर्थन होता है। कुमारपाल की वाडनगर प्रशस्ति के अनुसार जयसिंह ने मालवा के अभिमानी राजा को बन्दी बना लिया था। चूंकि यशोवर्मन एवं नरवर्मन दोनों ही जयसिंह के समकालीन थे, अतः दोनों की पराजय की बात सही प्रतीत होती है। संभव है दीर्घकालीन संघर्ष में दोनों की हत्या कर दी गई हो। उज्जैन लेख से पता चलता है कि जयसिंह ने अपनी और से महादेव नामक ब्राह्मण को मालवा का शासक बनाया। अब 'अवन्तिनाथ' का विरुद नियमित रूप से जयसिंह द्वारा धारण किया जाने लगा।

मालवा तथा दक्षिणी राजपूताना के परमार क्षेत्रों के चालुक्य राज्य में सम्मिलित हो जाने के फलस्वरूप जयसिंह का चन्देल, कलचुरी, गाहड़वाल, चाहमान आदि शासकों के साथ संघर्ष होना अनिवार्य हो गया।

युद्ध कुमारपालचरित से पता चलता है कि जयसिंह ने महोबा के शासक मदनवर्मा को पराजित किया था। कीर्तिकौमुदी के अनुसार वह धारा से कालंजर गया था। किन्तु दूसरी ओर चन्देल लेखों से पता चलता है कि मदनवर्मा ने ही जयसिंह को हराया था। ऐसा लगता है कि चन्देलों के साथ संघर्ष में जयसिंह को कोई खास लाभ नहीं हुआ। जयसिंह ने अपने समकालीन शाकम्भरी चाहमान शासक अर्णोराज को पहले तो युद्ध में पराजित किया किन्तु बाद में उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर मित्रता स्थापित कर लिया। जयसिंह ने सिंध की भी विजय की थी। इसका विवरण दोहद लेख में मिलता है जिसके अनुसार उसने 'सिंध के राजा को पराजित कर दिया तथा उत्तर के शासकों को अपनी राजाज्ञा शेष के समान मस्तक पर धारण करने को विवश किया। 'यह पराजित सिंध नरेश सुमरा जाति का कोई सरदार प्रतीत होता है। तलवार लेख में कहा गया है कि उसने परमर्दि को पराजित किया। हेमचन्द्रराय के अनुसार यह राजा चन्देलवंशी परमर्दि न होकर कल्याणी का चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ था। उसकी भी उपाधि परमर्दिदेव की थी। हेमचन्द्र जयसिंह की विजयों में बर्बरक नामक राजा की पराजय का उल्लेख करता है। वह राक्षस था जो श्रीस्थल (सिद्धपुर) तीर्थ में ब्राह्मण साधुओं को तंग करता था। जयसिंह ने अपनी सेना के साथ उस पर आक्रमण कर उसे पराजित किया तथा बन्दी बना लिया। किन्तु उसकी पत्नी पिंगलिका के इस आश्वासन पर उसे मुक्त कर दिया कि वह ब्राह्मणों को परेशान नहीं करेगा। इसके बाद बर्बरक, जयसिंह का विश्वासपात्र सेवक बन गया।

इस प्रकार जयसिंह सिद्धराज अपने समय का एक महान् विजेता एवं साम्राज्य निर्माता था जिसने चालुक्य साम्राज्य को उत्कर्ष की चोटी पर पहुंचाया। शान्ति के कार्यों में भी उसकी गहरी दिलचस्पी थी। वह विद्य और कला का उदार संरक्षक था। उसने जैन विद्वान् हेमचन्द्र तथा अन्य जैन भिक्षुओं को सम्मानित किया तथा विभिन्न सम्प्रदायों के साथ वह धार्मिक चर्चायें किया करता था। ज्योतिष, न्याय, पुराण आदि के अध्ययन के लिए उसने विद्यालय स्थापित करवाये थे। वह महान निर्माता भी था। सिद्धपुर में रुद्रमहाकाल मंदिर तथा पाटन में सहस्रलिंग नामक कृत्रिम झील उसके प्रमुख निर्माण थे। द्वयाश्रय महाकाव्य के अनुसार सहस्रलिंग के किनारे चण्डिकादेव तथा अन्य 108 मंदिरों का निर्माण उसके द्वारा करवाया गया था। इनसे जयसिंह का ह शैवभक्त होना भी प्रमाणित होता है। आबू पर्वत पर उसने एक मण्डप बनवाया तथा उसमें अपने पूर्वजों की सात गजारोही मूर्तियां स्थापित करवायी थी। स्वयं धर्मनिष्ठ शैव होते हुए भी उसने जैन मतानुयायियों के प्रति उदारता का प्रदर्शन किया।

11.3.6 कुमारपाल

जयसिंह का अपना कोई पुत्र नहीं था। अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् कुमारपाल राजा बना। विभिन्न स्रोतों से उसके राज्यारोहण के पूर्व जीवन के विषय में जो सूचना मिलती है उसके अनुसार वह निम्न कुल (हीन उत्पत्ति) का था। इसी कारण जयसिंह उससे घृणा करता था। किन्तु जैन आचार्यों तथा मंत्री उदयन एवंसेनापति कान्हड़देव की सहायता से उसने राजगद्दी प्राप्त कर ली। बाद में वह कान्हड़देव (जो उसका बहनोई भी था) के व्यवहार से सशंकित हो उठा तथा उसे अपंग एवं अन्धा करवाकर उसके घर भिजवा दिया। किन्तु मंत्री उदयादित्य उसका विश्वासपात्र बना रहा तथा उसे मुख्यमंत्री बना दिया गया।

कुमारपाल भी एक महान् विजेता एवं कुशल योद्धा था। राज्यारोहण के बाद अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए उसने अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ कर दिया। उसकी विजयों का अत्यन्त विस्तृत विवरण जयचन्द्र सूरि के कुमारपालचरित में मिलता है। उसका पहला संघर्ष चाहमान शासक अणोराज के साथ हुआ। इसमें अर्णोराज का सहायक बाहड़, उदयन का पुत्र एवं जयसिंह का दत्तक पुत्र था। बाहड़ स्यवं चालुक्य गद्दी का दावेदार था। उसने जयसिंह के कुछ अधिकारियों को अपनी ओर मिला लिया था। दोनों कुमारपाल के विरुद्ध अभियान करते हुए गुजरात की सीमा तक चढ़ गए, किन्तु कुमारपाल ने बाहड़ को बन्दी बना लिया। जैन श्रोतों से पता चलता है कि अर्णोराज के साथ उसका संघर्ष लम्बा चला। इसमें अन्ततोगत्वा कुमारपालने अर्णोराज को परास्त किया। अर्णोराज ने अपनी पुत्री जल्हणादेवी का उसके साथ विवाह कर मैत्री संबंध स्थापित किया। कुमारपाल ने आबू तथा नडल में अपनी ओर सामंत शासक नियुक्त किए। चित्तौड़गढ़ में सज्जन नामक उसका सामन्त था। ऐसी स्थिति में अर्णोराज से उत्तराधिकारी विग्रहाज चतुर्थ के साथ भी उसका संघर्ष अवश्यंभावी था । विग्रहराज ने चालुक्यों को अपने क्षेत्रों से हटाने के लिए अभियान छेड़ दिया। उसने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर कुमारपाल द्वारा नियुक्त सामंत सज्जन को मार डाला तथा सोलंकियों द्वारा पूर्व में जीते गए अपने कुछ अन्य प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया। चाहमान लेखों में यह दावा किया गया है कि विग्रहाज ने कुमारपाल को पराजित कर दिया था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के बीच एक प्रकार की सन्धि हो गयी। तत्पश्चात कुमारपाल ने उत्तर की ओर ध्यान दिया। जैन ग्रन्थ हमें बताते हैं कि कुमारपाल ने मालवा के शासक बल्लाल के ऊपर आक्रमण कर उसे मार डाला तथा कोकण के शिलाहार वंशीय शासक को युद्ध में जीता। इस बल्लाल की पहचान निश्चित नहीं है क्योंकि परमार लेखों में उसका नाम नहीं मिलता। संभवतः वह कोई स्थानीय शासक था जिसने मालवा पर अधिकार कर लिया था। कुमारपाल के विरुद्ध युद्ध में उसने चाहमान शासक अर्णोराज का साथ दिया था। शिलाहार वंश का पराजित राजा मल्लिकार्जुन था। कुमारपालचरित से पता चलता है कि आबू क्षेत्र के चन्द्रावती में परमार वंश की कोई शाखा शासन करती थी। यहाँ का शासक विक्रमसिंह था जिसने कुमारपाल के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कुमारपाल ने वहाँ आक्रमण कर उसे बन्दी बना लिया तथा अपनी

ओर से उसके भांजे यशोधवल को राजा बना दिया। अब यशोधवल वहाँ कुमारपाल का सामन्त बन गया। कुमारपाल को सुराष्ट्र में भी एक अभियान हटना पड़ा। वहाँ का राजा सुम्बर था । मेरुतुंग के विवरण से पता चलता है कि उसने कुमारपाल के प्रधानमंत्री उदयन को पराजित कर घायल कर दिया। किन्तु बाद में कुमारपाल ने उसे अपने नड्डुल के चाहमान सामन्त आल्हादान की सहायता से पराजित कर दिया। सम्बर के पुत्र को सुराष्ट्र का राजा बनाया गया जिसने चालुक्य नरेश की अधीनता मान ली।

इस प्रकार कुमारपाल अपने युग का एक महान् शक्तिशाली राजा सिद्ध हुआ। उसने जयसिंह की विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखा तथा अपने जीवनकाल में उसमें कमी नहीं होने दिया। अपने समय की प्रमुख शक्तियों को पराजित कर उसने चालुक्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। भारत के धार्मिक इतिहास में उसका शासन काल अत्यन्त रुचिकर माना जा सकता है। जैन अनुश्रुतियां एक स्वर उसे अपने मत का अनुयायी घोषित करती हैं। बताया गया है कि हेमचन्द्र के प्रभाव से उसने जैन धर्म ग्रहण कर लिया। जयसिंह कृत कुमारपाल चरित से सूचना मिलती है कि उसने अभक्ष नियम स्वीकार किया तथा अपना मन जैव धर्म में लगा दिया (जैन धर्मे मनस्थापना)। तदनुसार कुमारपाल ने मांस–मदिरा का परित्याग कर दिया तथा अपने राज्य में पशुओं की हत्या पर रोक लगा दिया। राज्य में अहिंसा का पूरे जोर–शोर से प्रचार किया गया तथा इसके लिए राजाज्ञा प्रसारित कर दी गयी। नवरात्रि पर बकरे की बलि निषिद्ध कर दी गई तथा पशु हिंसा रोकने के लिए उसने अपने मंत्रियों को काशी भेजा। वह स्वयं जैन तीर्थस्थलों में गया तथा चैत्य एवं मंदिरों का निर्माण करवाया। जैन धर्म के ही प्रभाव से उसने निःसन्तान मरने वालों की सम्पत्ति का राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लेने का अधिकार समाप्त कर दिया। सम्राट प्रतिदिन जैन मन्त्रों का जाप किया करता था। वह पूर्णतया जैन धर्म के प्रभाव में आ गया। लेकिन इस बात के भी पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि शैवधर्म में भी कुमारपाल की आस्था अडिग रही। उसने सोमनाथ के मंदिर में जाकर भगवान शिव की उपासना की थी तथा उसने कुछ शैव मंदिरों का भी निर्माण करवाया था। उसके सभी लेखों में शिव की स्तुति की गई है। अभी तक कोई लेख ऐसा नहीं मिला है जिसमें जैन धर्म की स्तुति की गई हो। इससे पता चलता है कि इस मत में भी उसकी आस्था विद्यमान थी। हेमचन्द्र राय का अनुमान है कि संभवतः कुमारपाल का जैन धर्म की ओर झुकाव भौतिक कारणों से रहा होगा। इसका उद्देश्य राज्य के समृद्ध एवं शक्तिशाली वणिक् समुदाय का सहयोग प्राप्त करना हो सकता है जो मुख्यतः जैन थे। अनवरत युद्धों के कारण राजकोष पर भारी दबाव पड़ा जिसे पूरा करने के लिए जैन समुदाय, जो उस समय उद्योग एवं वाणिज्य की रीढ़ था. से आर्थिक सहायता लेना अनिवार्य हो गया होगा।

11.3.7 अजयपाल

कुमारपाल के बाद उसका भतीजा अजयपाल राजा बना। गुजराती अनुश्रुतियों तथा मुस्लिम स्रोतों से पता चलता है कि उसने कुमारपाल की विष द्वारा हत्या करा दी थी। अजयपाल ने 1176 ई० तक राज्य किया। उसके काल में शैव प्रतिक्रिया हुई। जैन ग्रन्थों के अनुसार उसने कपर्दिन नामक ब्राह्मण, जो दुर्गा का भक्त था, को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया तथा अन्य शैवों को भी प्रमुख प्रशासनिक पद दिये। उसकी उपाधि 'परममाहेश्वर 'की मिलती है। मेरुतुंग उसकी हिंसक प्रवत्ति का उल्लेख करते हुए लिखता है कि उसने अपने मंत्री कपर्दिन तथा जैन आचार्य रामचन्द्र की हत्या करा दी। इसके अतिरिक्त उसने साधुओं की हत्या करायी तथा जैन मंदिरों को ध्वस्त करवा दिया। सैनिक दृष्टि से उसकी मात्र यही उपलब्धि बताई गई है कि उसने सपादलक्ष के चाहमान शासक सोमेश्वर को पराजित किया था। उसके किसी नौकर ने छुरा भोंककर उसकी हत्या कर दी।

11.3.8 भीमदेव द्वितीय

अजयपाल के पश्चात् मूलराज द्वितीय राजा बना जो उसका पुत्र था। उसका शासन मात्र दो–ढाई वर्ष का ही रहा। उसने किसी तुर्क आक्रान्ता को पराजित किया था। इसे मलेच्छ या हमीर कहा गया है। उसके बाद उसका छोटा भाई भीम द्वितीय राजा बना। आबू तथा नागौर क्षेत्रों पर अधिकार के लिए उसका चाहमान शासकपृथ्वीराज से संघर्ष हुआ। बाद में दोनों के बीच समझौता हो गया। 1178 ई० में मुइजुद्दीन गोरी के नेतृत्व में तुर्कों ने उसके राज्य पर आक्रमण किया किन्तु काशहद के मैदान में भीम ने उन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया। इस युद्ध में नकल के चाहमानों ने भीम का साथ दिया था। इसके बाद भी आक्रमण होते रहे। 1178 ई० में उसके राज्य पर मुसलमानों के आक्रमण हुए जिसका भीम ने सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। 1195 ई० में उसने कुतुबुद्दीन को हराकर उसे अजमेर तक खदेड़ दिया। परन्तु दूसरे वर्ष (1197 ई०) वह पराजित हुआ। उसके पचास हजार सैनिक मार डाले गए तथा बीस हजार को बन्दी बना लिया गया। मुसलमानों ने उसकी राजधानी अन्हिलवाड़ को खूब लूटा तथा उस पर अधिकार किया। किन्तु मुसलमानों का अधिकार क्षणिक रहा. तथा 1201 ई० तक भीम ने पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लिया। आबू तथा दक्षिणी राजपूताना में चालुक्यों का शासन स्थापित हो गया तथा फिर लगभग एक शती तक तुर्कों ने वहाँ आक्रमण करने का साहस नहीं किया। मुसलमानों से निपटने के बाद भीम को परमारों, यादवों के साथ–साथ आन्तरिक विद्रोहों का भी सामना करना पड़ा। परमार नरेश सुभठवर्मा ने अन्हिलवाड़ पर आक्रमण किया। किन्तु भीम के सामन्त लवणप्रसाद ने उसे पीछे ढकेल दिया। इसी समय यादव जैतुगी ने भी दक्षिणी गुजरात पर आक्रमण किया। चालुक्य यादवों का सफल प्रतिरोध नहीं कर पाये। किन्तु लवणप्रसाद ने यादव नरेश सिंघण से सौंध कर अपने राज्य को बचा लिया। किन्तु इसके बावजूद भीम की आन्तरिक स्थिति निर्बल पड़ने लगी जिससे अधीन सामन्तों को स्वाधीन होने का सुनहरा अवसर मिल गया। ज्ञात होता है कि 1223 ई० के कुछ पहले ही जैतसिंह नामक उसके ही वंश के किसी संबंधी ने भीम को पदच्युत कर

राजधानी पर कुछ समय के लिए अधिकार कर लिया। किन्तु भीम अपने योग्य मन्त्रियों लवणप्रसाद एवं वीर धवल, की सहायता से पुनः राजधानी पर अधिकार करने में सफल हुआ। इससे लवणप्रसाद की महत्वाकांक्षा काफी बढ़ गयी। किन्तु फिर भी उसकी आन्तरिक स्थिति निर्बल पड़ गई जिससे अधीनस्थ सामन्तों को स्वाधीन होने का सुनहरा अवसर उपलब्ध हो गया।

11.4 सारांश

भीमदेव द्वितीय गुजरात के चालुक्य (सोलंकी) राजपूतों का अन्तिम शासक था। इसके पश्चात् उसके मन्त्री लवणप्रसाद ने गुजरात में बघेलवंश की स्थापना की। 1240 ई० के लगभग उसके उत्तराधिकारियों ने अन्हिलवाड़ पर अधिकार कर लिया। बघेलवंश ने गुजरात में तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक शासन किया। इसके बाद गुजरात का स्वतन्त्र हिन्दू राज्य दिल्ली सल्तनत में मिला दिया गया।

सोलंकी वंश मध्यकालीन भारत का एक राजपूत राजवंश था। गुजरात के सोलंकी वंश का संस्थापक मूलराज प्रथम था। उसने अन्हिलवाड़ को अपनी राजधानी बनाया था। सोलंकी गोत्र राजपूतों में आता है। सोलंकी राजपूतों का अधिकार गुर्जर देश और कठियावाड राज्यों तक था। ये 9वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक शासन करते रहे। इन्हे गुर्जर देश का चालुक्य भी कहा जाता था। यह लोग मूलतः सूर्यवंशी व्रात्य क्षत्रिय हैं और दक्षिणापथ के हैं परंतु जैन मुनियों के प्रभाव से यह लोग जैन संप्रदाय में जुड गए। उसके पश्चात भारत सम्राट अशोकवर्धन मौर्य के समय में कान्य कुब्ज के ब्राह्मणो ने इन्हें पूनः वैदिकों में सम्मिलित किया।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गुजरात के चौलुक्य वंश के स्रोततथा प्रारम्भिक इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

.....

.....

गुजरात के चौलुक्य वंश के शक्तिशाली शासकों के बारे में विस्तार पूर्वक बताइये।

.....

.....

गुजरात के चौलुक्य वंश के उदय और पतन के संदर्भ में विवेचना कीजिये।

.....

.....

11.8 संदर्भ ग्रन्थ

मजूमदार, रमेश चन्द्र : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी

दीक्षित, दुर्गा प्रसाद : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ द चालुक्य ऑफ बादामी

सी.वी.वैद्य : हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिंदू इंडिया

महाजन, वी.डी. : भारत का राजनीतिक इतिहास

बी.ए. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया

डी.सी. सरकार : सक्सेसर्स ऑफ द सात वाहनाज इन द लोवर डेक्कन

इकाई–12– राष्ट्रकूट वंश

इकाई की रुपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 राष्ट्रकूट वंश के इतिहास के स्रोत

12.3 राष्ट्रकूट वंश के इतिहास की रुपरेखा

12.3.1 ध्रुव

12.3.2 गोविन्द तृतीय

12.3.3 अमोघवर्ष प्रथम

12.3.4 इन्द्र तृतीय

12.4 राष्ट्रकूट वंश के परवर्ती शासक एवं पतन

12.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 प्रस्तावना

सातवाहनों के बाद चालुक्य नरेशों ने दक्कन के जिस भू–भाग पर अपना राज्य स्थापित किया था, उसी भू–भाग पर कालांतर मे राष्ट्रकूटों ने अपना राज्य स्थापित किया। इसके साथ ही अपने पूर्ववर्ती राजवंशों की भाँति ही उन्होने भी उत्तरी एवं दक्षिणी भारत की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। पश्चिमी चालुक्यों के अन्तिम चालुक्य शासक कीर्तिवर्मन् द्वितीय की अयोग्यता का लाभ उठाकर आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उसके महाराष्ट्र के सामन्त शासक राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग ने राष्ट्रकूट वंश की नीव रखी। इनकी उत्पत्ति को लेकर विद्वानों मतभेद है, एम० सी० नन्दिमथ तथा चिन्तामणि विनायक वैद्य जैसे इतिहासकारों ने इनकी पहचान अशोक के अभिलेखों में उल्लिखित 'रट्ठिकों' की पहचान राष्ट्रकूटों से की है।राष्ट्रकूटों के प्रारम्भिक अभिलेखों में उन्हें 'रिट्ठ' कहा गया है। इन्द्र तृतीय के नौसारी–अभिलेख में राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष को 'रट्ठ–कुल–लक्ष्मी का उद्धारक' बताया गया है। इसके साथ ही कृष्ण तृतीय के बेवली तथा करहट अभिलेखों मे भी ऐसा विवरण प्राप्त होता है। इनमें 'रट्ठ' को उक्त राज वंश का आदिपुरुष बताया गया है।

राष्ट्रकूट–अभिलेखों में उन्हें सात्यकि–यदुवंशी भी बताया गया है। शक सम्वत् 836 के एक अभिलेख में विवरण मिलता है कि राष्ट्रकूट नरेश दन्तिदुर्ग का जन्म यदुवंशी सात्यकि–शाखा में हुआ था। जे० एफ० फ्लीट ने राष्ट्रकूटों का सम्बन्ध उत्तरी भारत की राठौर (क्षत्रिय) जाति से, वहीं वी० एन० राय का मानना है कि राष्ट्रकूटों का संबंध गाहड़वालों से था, यद्यपि दोनों ही मत के साथ एक ही समस्या है कि वे बहुत बाद मे उदय होने वाले दोनों ही वंशों के साथ इनका कोई क्रमिक इतिहास नहीं मिलता है।

'राष्ट्रकूट' शब्द को लेकर भी इतिहासकारों मे मतभेद है, चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनुसार 'राष्ट्र' शब्द का आशय राष्ट्र राज्य अथवा मण्डल वहीं कूट से तात्पर्य प्रधान या प्रमुख से होगा। अल्तेकर, नीलकंठ शास्त्री, ए० के० मजूमदार जैसे विद्वानो का भी मानना है कि 'राष्ट्रकूट' कोई जाति सूचक शब्द न होकर पद अथवा प्रशासन से जुड़ा हुआ ज्यादा प्रतीत होता है। जैसे कि ग्राम के अधिकारी लिए कई बार ग्रामकूट पदनाम का प्रयोग प्राप्त होता है।

चि० वि० वैद्य, डी० आर० भण्डारकर एवं नन्दिमथ आदि विद्वानों ने राष्ट्रकूटों का मूल स्थान महाराष्ट्र प्रदेश स्वीकार किया है। वहीं अनन्त सदाशिव अल्तेकर 'राष्ट्रकूट' शब्द को कन्नड़ शब्द मानते हैं और उनका सम्बन्ध कन्नड़देश (कर्नाटक) से स्वीकार करते हैं। अभिलेखों में राष्ट्रकूटों को कई बार

'लठ्ठलूरपुरवराधीश्वर' कहा गया है। जिसके आधार पर नन्दिमथ तथा पी० बी० देसाई आदि विद्वानों ने उनके मूल स्थान कि पहचान महाराष्ट्र प्रान्त के ओस्मानाबाद–क्षेत्र में स्थित लठ्ठलूर अथवा लाटूर स्थान को मानते है, जो सम्भवतः ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में कन्नड़ अथवा कर्नाटक का भाग रहा होगा। इनकी मातृभाषा कन्नड़ थी, तथा राजकीय चिन्ह गरुड़ एवं राजधानी मान्यखेत थी।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा राष्ट्रकूट वंश के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन करना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त होगी।

1.राष्ट्रकूट वंश के इतिहास को जानने मे सहायक स्रोतों के बारे में।

2.राष्ट्रकूट वंश के प्रारंभिक शासकों के सन्दर्भ में यथा ध्रुव, गोविन्द तृतीय, अमोघवर्ष प्रथम, इन्द्र तृतीय एवं उनकी राजनीतिक उपलब्धियों के विषय में।

3.राष्ट्रकूट वंश के शक्तिशाली शासकों की विजय एवं साम्राज्य विस्तार के बारे में।

4.राष्ट्रकूट वंश के के शासन के अंतर्गत उनकी महत्वपूर्ण सांस्कृतिक उपलब्धियों की।

5.राष्ट्रकूट वंश के परवर्ती शासकों एवं पतन के संदर्भ मे।

12.2 राष्ट्रकूट वंश के इतिहास के स्रोत

राष्ट्रकूट काल कन्नड़ तथा संस्कृत भाषा के विकास का काल था, जिसमे अनेक ग्रंथो की रचना की गयी। इन ग्रंथो का इस वंश के ऐतिहासिक ज्ञान को जानने मे बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है, इनमे प्रमुख रूप से, जिनसेन का आदिपुराण, महावीराचार्य का गणितसारसंग्रहण, अमोघवर्ष का कविराजमार्ग आदि उल्लेखनीय हैं। जिनके अध्ययन से तत्कालीन समाज और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त होता है।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों मे राष्ट्रकूट शासकों द्वारा खुदवाये गये बहुसंख्यक अभिलेख तथा दानपत्र जो उनके साम्राज्य के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए है उनसे बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इन प्रमुख राष्ट्रकूट लेखों, दन्तिदुर्ग के एलौरा एवं सामन्तगढ़ के ताम्रपत्राभिलेख, गोविन्द तृतीय के राधनपुर, वनि दिन्दोरी तथा बड़ौदा के लेख, अमोघवर्ष प्रथम का संजन अभिलेख, इन्द्र तृतीय का कमलपुर अभिलेख, गोविन्द चतुर्थ के काम्बे तथा संगली के लेख, कृष्ण तृतीय के कोल्हापुर, देवली तथा कर्नाट के लेख। इन

अभिलेखों कि खास बात यह है कि ये सभी तिथि युक्त है जिससे हमे राष्ट्रकूट राजाओं की वंशावली, सैनिक अभियानों, शासन–व्यवस्था, धार्मिक अभिरुचि, आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

12.3 राष्ट्रकूट वंश के इतिहास की रुपरेखा

मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंश का पहला ऐतिहासिक शासक दन्तिवर्मा (लगभग 650–665–70 ई0) था। उसके बाद इन्द्रपृच्छकराज (670–690 ई0) तथा गोविन्दराज (690–700 ई०) हुआ। इन शासकों के उपलब्धियों के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है। गोविन्दराज के पश्चात उसका पुत्र कर्कराज शासक बना। इसके तीन पुत्रों के नाम मिलता हैं, जिनमे–इन्द्र, कृष्ण तथा नन्न है। इनमें से इन्द्र(715 ई0 –735 ई0) जो प्रारम्भिक राष्ट्रकूट शासकों में सवसे योग्य तथा शक्तिशाली था अपने पिता के बाद शासक बना। संजन ताम्रपत्रों से पता चलता है कि चालुक्य राजा पराजित कर इसने उसकी कन्या भवनागा के साथ राक्षस विवाह कर लिया था। जिससे दन्तिदुर्ग ने जन्म लिया एवं जिसने राष्ट्रकूट वंश की स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की। इसके विजयों के विषय में उसके समय के दो लेखों–दशावतार (742 ई०) तथा समनगड का लेख (753 ई0) से जानकारी प्राप्त होती हैं।

चालुक्य शासक विक्रमादित्य द्वितीय के सामन्त के रूप में दन्तिदुर्ग(735ई.–755ई.) ने अपनी शक्ति एवं प्रतिष्ठा को बढ़ाया। अरबों के विरुद्ध सफल अभियान से होकर विक्रमादित्य ने उसे 'पृथ्वीवल्लभ' तथा 'खड़वालोक' की उपाधि प्रदान की। उसने युवराज कीर्तिवर्मा द्वितीय के साथ कांची के पल्लवों एवं कर्नूल के शासक श्रीशैल को युद्ध में पराजित किया एवं अपनी शक्ति को लगातार बढ़ाया। कीर्तिवर्मा द्वितीय की अयोग्यता का फ़ायदा उढ़ाकर दन्तिदुर्ग ने नन्दिपुरी के गुर्जरों तथा नौसारी के चालुक्यों पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने मालवा के प्रतिहार राज्य पर आक्रमण कर उज्जैन के ऊपर अधिकार कर लिया। दन्तिदुर्ग के बढ़ते प्रभाव के परिणामस्वरूप कीर्तिवर्मा उनके मध्य युद्ध अनिवार्य हो गया, जिसमें अंततः दन्तिदुर्ग ने कीर्तिवर्मा को पराजित कर दिया। यद्यपि इस विजय के बाद भी चालुक्यों के कर्नाटक राज्य में कोई कमी नहीं आई, जिसका प्रमाण 754 ई० के सतारा में कीर्तिवर्मा ने एक ग्राम दानपत्र से मिलता है। इस युद्ध के बाद दन्तिदुर्ग का महाराष्ट्र पर अधिकार हो गया तथा उसने 'महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक' जैसी स्वतन्त्र सम्राट सूचक उपाधि धारण की। 756 ई0 के लगभग उसकी मृत्यु हो गयी।

दन्तिदुर्ग के पश्चात् उसकी कोई संतान न होने के कारण उसका चाचा कृष्ण प्रथम (756ई.–772ई.) शासक बना था। कृष्ण प्रथम ने दन्तिदुर्ग के समान साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया एवं राज्यारोहण के पश्चात् लाट् प्रदेश पर आक्रमण कर अपने भतीजे कर्क द्वितीय, पराजित कर उसके विद्रोह का दमन किया तथा लाट प्रदेश में अपनी स्थिति मजबूत बना ली। दन्तिदुर्ग ने चालुक्य नरेश को परास्त कर कमजोर

कर दिया था किन्तु उनका उन्मूलन नहीं कर सका था। कृष्ण प्रथम ने कीर्तिवर्मन को प्रभावी तरीके से पराजित करके कर्नाटक पर अपना अधिकार कर लिया तथा अपने सामंत के रूप में अपझल्ल को नियुक्त किया, जो शिलाहार वंश का संस्थापक था। चालुक्यों के पश्चात कृष्ण ने मैसूर के गङ्ग वंश के शासक श्रीपुरुष पर आक्रमण कर उसे पराजित करके उसे अपना सामंत बना लिया। इसके पश्चात् कृष्ण ने अपने बड़े पुत्र गोविन्द को वेंगी के पूर्वी चालुक्यों पर आक्रमण करने के लिये भेजा। वेंगी के चालुक्य नरेश विष्णुवर्धन चतुर्थ ने गोविन्द की सैन्य शक्ति देखकर बिना लड़े ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली एवं अपनी कन्या शीलभट्टारिका का विवाह भी गोविन्द के छोटे भाई ध्रुव से कर दिया। इस विजय के पश्चात् वेंगी–राज्य का अधिकांश भाग राष्ट्रकूट साम्राज्य का भाग हो गया। उसने राष्ट्रकूट साम्राज्य को अत्यन्त विस्तृत हो गया जिसमें सम्पूर्ण महाराष्ट्र एवं कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश का एक बड़ा भाग शामिल था। अपनी विजयों के अतिरिक्त कृष्ण प्रथम एक महान् निर्माता भी था। उसने एलोरा के प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर का निर्माण करवाया था। उसने 773 ई0 तक शासन किया।

कृष्ण प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र गोविंद द्वितीय (773ई.–780ई.) ने सत्ता ग्रहण की एवं अपने भाई ध्रुव को नासिक का राज्यपाल नियुक्त किया। संभवतः गोविंद द्वितीय की विलासिता एवं प्रशासनिक कार्यों के प्रति उसकी उदासीनता के कारण उसके छोटे भाई ध्रुव ने गोविन्द के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जिसमें ध्रुव विजयी हुआ और गोविन्द संभवतः मार डाला गया। गोविन्द द्वितीय ने 773 ई0 से लेकर 780 ई0 तक शासन किया।

12.3.1 'ध्रुव धारावर्ष' (780–793 ई०)

प्रशासक रहते हुए ध्रुव ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की थी, साथ अपनी योग्यता से उसने अधिकांश सामंतों एवं मंत्रियों को अपना समर्थक बना लिया था । वेंगी के शासक विष्णुवर्धन चतुर्थ की पुत्री शीलभट्टारिका से उसका विवाह हुआ था, जो उसकी राजमहिषी बनी। धुलिया–ताम्रपत्र अभिलेख से जानकारी मिलती है कि ध्रुव 779 ई० तक अपने अग्रज गोविन्द द्वितीय के अधीन शासक था। अनन्त सदाशिव अल्तेकर का मानना है कि ध्रुव ने 780 ई० या इसके लगभग सत्ता–अधिकृत की। संभवतः इसी अवसर पर उसने 'निरुपम' तथा 'धारावर्ष' की उपाधि धारण की, एवं आगे चलकर उसने एक और उपाधि 'कलिवल्लभ' भी धारण की। राजत्व संभालने के पश्चात् उसे विरोधी सामंतों एवं राजत्व के लिए हुए युद्ध मे गोविंद का सहयोग करने वाले प्रतिद्वदियों का सामना करना पड़ा।

इस क्रम मे उसने गंगवाड़ी(मैसूर) पर आक्रमण किया, यहाँ का शासक श्रीपुरुष मुत्तरस वृद्ध हो चुका था,अतः उसके पुत्र शिवमार जो तर्क, व्याकरण, नाट्यशास्त्र और हस्तिविद्या का बड़ा ही विद्वान् था ने युद्ध

का नेतृत्व किया ।ध्रुव ने शिवमार को पराजित कर बन्दी बना लिया एवं पूरे गंग–बाड़ी क्षेत्र पर अधिकार कर अपने पुत्र स्तम्भ रणावलोक को वहाँ का शासक नियुक्त किया। इसके पश्चात ध्रुव अपने अगले अभियान के क्रम मे वह पल्लव शासक दन्तिवमंन् से युद्ध के लिए अग्रसर हुआ। 782 ई० के लगभग राष्ट्रकूटों की सेना ने पल्लव सेना को घेर लिया, जिसके परिणामस्वरूप पल्लव सेना ने भयभीत और पराजित होकर ध्रुव को भेट स्वरूप असंख्य हाथियों को भेंट कर किसी तरह युद्ध से मुक्ति पायी। इस युद्ध मे वेंगी नरेश विष्णुवर्धन ने पल्लवों के विरुद्ध ध्रुव की सहायता की । संभवतः यह युद्ध कहीं समुद्र तट पर हुआ, इस युद्ध मे विजय के पश्चात भी राष्ट्रकूटों की सेना ने कांची को कोई विशेष क्षति नहीं पहुंचाई । इन विजयों के फलस्वरूप राष्ट्रकूटों का राजनीतिक वर्चस्व समस्त दक्षिणापथ पर स्थापित हो गया।

दक्षिण भारत में अपना प्रभाव स्थापित करने के पश्चात ध्रुव ने उस समय उत्तर भारत की राजनीति अथवा कन्नौज की तरफ ध्यान दिया, जहाँ सम्राट हर्ष के पश्चात् रिक्तता की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। कन्नौज का राज्य इस समय आयुध वंश के अधीन था जो राजनीतिक शक्ति की दृष्टि से अत्यंत कमजोर था। उत्तर भारत की राजनीतिक परम्परा में कन्नौज का बहुत महत्व था एवं यह समझा जाता था कि जिस किसी का कन्नौज पर आधिपत्य होगा, वहीं सम्पूर्ण उत्तरापथ का सार्वभौम स्वामी माना जायेगा। इसी समय उत्तर भारत मे गुर्जर–प्रतिहार एवं बंगाल मे पाल वंश का उदय हो रहा था, एवं ये दोनों ही वंश कन्नोज के ऊपर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे । जिसका अर्थ था उत्तरापथ में राजनीतिक दृष्टि से सर्वोपरि होना । सम्भवतः इसी कारण दक्षिणापथ की सर्वोच्चसत्ता स्थापित करने के पश्चात् ध्रुव ने कन्नौज पर अभियान करने का निर्णय लिया,एवं एक ऐसे त्रिकोण युद्ध आरम्भ हुआ जो पाल–प्रतिहार और राष्ट्रकूट वंशों के बीच पीढ़ियों तक चलता रहा।

कन्नौज में इस समय इन्द्रायुध का शासन था जो अत्यंत ही कमजोर शासक था, अतः इसका लाभ उठाकर गुर्जर प्रतिहार नरेश वत्सराज ने कन्नौज पर आक्रमण कर इन्द्रायुध को पराजित कर पुनः उसे ही अपने अधीन कन्नौज का स्वामित्व सौंप दिया। इस घटना के पश्चात पालवंशीय शासक धर्मपाल ने कन्नौज पर अपना प्रभाव जमाने के लिए कन्नौज को आक्रान्त कर इन्द्रायुध को हटाकर उसके भाई चक्रायुध को अपने अधीन कन्नौज के राजपीठ पर बैठा दिया। धर्मपाल की यह सफलता स्थायी नहीं रही एवं वत्सराज ने पुनः कन्नौज पर धावा बोल दिया, एवं सरलता से गौड़राज धर्मपाल को पराजित कर उसका 'श्वेत छत्र' छीन लिया। धर्मपाल ने अपनी पराजय का बदला लेने के लिए पुनः एक विशाल सेना के साथ गुर्जर नरेश वत्सराज से युद्ध के लिए गंगा घाटी की ओर अग्रसर हुआ। पालों एवं गुर्जर प्रतिहारों के इस संघर्ष की स्थिति को ध्रुव ने उत्तरापथ की राजनीति में हस्तक्षेप करने का सर्वोत्तम अवसर समझा एवं जिसके परिणामस्वरूप त्रिकोणात्मक संघर्ष प्रारम्भ हो गया ।

ध्रुव एक चतुर सैन्य संचालक और कूटनीतिज्ञ था। उसने बड़ी ही चतुराई से अपनी सेना का संचालन किया, जिस समय वत्सराज एक विशाल सेना के साथ कन्नौज ओर धर्मपाल का सामना करने बढ़ गया था ध्रुव ने अपने पुत्र गोविन्द और इन्द्र को मालवा में नियुक्त किया जिसे यह दायित्व दिया गया कि उन्हे वत्सराज की सेना को मालवा से बाहर जाने में अवरोध उत्पन्न करना है जिससे कि वत्सराज को अपनी पश्यगामी सेना से सहायता न मिल सके। दूसरी तरफ से ध्रुव ने अपनी विशाल सेना के साथ झाँसी के आस–पास वत्सराज की सेना पर आक्रमण कर दिया । जिसमे, वत्सराज की बुरी तरह पराजय हुआ, एवं उसे मरुस्थल में भाग कर जान बचानी पड़ी, ध्रुव ने वत्सराज से वह प्रतिष्ठा का छत्र भी छीन लिया जिसे उसने गौड़नरेश धर्मपाल से छीना था। वत्सराज कि पराजय के पश्चात् धर्मपाल इस ताक में था, कि वत्सराज के पराजय के बाद कन्नौज को अधिकृत कर लेगा, अतः ध्रुव ने वत्सराज को पराजित करने के पश्चात् वह धर्मपाल की ओर बढ़ा। लगभग 787 ई० में इस युद्ध में धर्मपाल की पराजय हुई, संजन दानपत्र के अनुसार गंगा और यमुना के दोआब में भागते हुए गौड़राज की लक्ष्मी का क्रीड़ा कमल राज छत्र को छीन लिया। इस विजय के प्रतीक रूप में ध्रुव ने राजचिह्न के रूप में गंगा और यमुना को स्वीकार किया।

प्रतिहारों एवं पालों को प्रभावी तौर पर पराजित करने के बाद भी ध्रुव कन्नौज पर बिना अधिकार किये अथवा अपने प्रतिनिधि को कन्नौज पर स्थापित किए बिना उसे दक्षिण में लौटना पड़ा। इतिहासकारों का मानना है कि संभवतः इसके पीछे दक्षिण की आंतरिक स्थिति रही होगी जिसके कारण ध्रुव को सहसा अपने गृह राज्य लौटना पड़ा होगा। इस विजय के उपरांत राष्ट्रकूट वंश का यश उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ मे स्थापित हो गया, राष्ट्रकूट वंश की धाक पूरे भारत में जम गई।

ध्रुव ने एक विस्तृत एवं व्यवस्थित करने के पश्चात् उसके चारों पुत्रों में, ज्येष्ठ पुत्र कर्क सम्भवतः उसके जीवनकाल में ही दिवंगत हो गया, स्तम्भ जो गोविन्द से ज्येष्ठ था, गंगवाड़ी का प्रतिनिधि बनाया गया, इन्द्र को उसने गुजरात और मालवा का शासन एवं उसने अपने तृतीय पुत्र गोविंद तृतीय को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया । राधनपुर ताम्रपत्र लेख से भी ज्ञात होता है, कि ध्रुव ने उसे सहर्ष अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। अपने राजत्व को पूरी तरह व्यवस्थित करने के पश्चात् अपने ही जीवनकाल ही में लगभग 793 ई० में गोविंद का युवराज्याभिषेक करके वह दिवंगत हुआ।

बोध प्रश्न 1. राष्ट्रकूट वंश के इतिहास निर्माण मे सहायक स्रोतों का वर्णन करते हुए, ध्रुव धारावर्ष कि उपलब्धियों कि व्याख्या करें।

12.3.2 गोविन्द तृतीय (793–814 ई०)

ध्रुव ने अपने शासनकाल के अंतिम वर्षों में गोविन्द तृतीय को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था । सूरत–ताम्र–पत्र–लेख से ज्ञात होता है, कि ध्रुव को सम्भवतः राजत्व को लेकर अपने योग्य पुत्रों के बीच गृह–युद्ध की आशंका थी, इसी कारण उसने गोविन्द तृतीय को अपने शासनकाल में ही राष्ट्रकूट सिंहासन पर स्थापित कर दिया था। यद्यपि शासन के प्रारम्भिक वर्षों मे उसे किसी विद्रोह का सामना नहीं करना पड़ा किन्तु दो–तीन वर्ष बाद उसके भाई स्तम्भ ने जो स्वयं को विधानतः राष्ट्रकूट साम्राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी मानता था ने खुला विद्रोह कर दिया। स्तम्भ ने 12 राजाओं और सामन्तों, जिनमें पल्लवनरेश दन्तिदुर्ग, वनवासी के सामन्त नोलम्बबाडी सम्मिलित थे, के साथ मिलकर गोविन्द तृतीय पर आक्रमण कर दिया।

गोविन्द ने सामंतों के मध्य फूट डालने के लिए गंगवाड़ी का राजा शिवमार जो ध्रुव के समय में पराजित करके बन्दीगृह में डाल दिया गया था, गोविंद ने उसे मुक्त कर दिया, यद्यपि स्वतन्त्र होते ही वह भी स्तम्भ के सामरिक संघ का सदस्य हो गया। इस संगठन को तोड़ने के लिये गोविन्द ने अपने अनुज इन्द्र को गृहराज्य की शासन व्यवस्था शौंप कर स्वयं, स्तम्भ के विरुद्ध अग्रसर हो गया। इस युद्ध मे स्तम्भ पराजित हुआ एवं बिना कोई दंड दिये गोविंद ने उसे गंगवाड़ी का शासक बना दिया। जिसका परिणाम यह हुआ स्तम्भ, आजीवन गोविन्द के प्रति निष्ठावान हो गया। गोविंद ने गंगवाड़ी के विद्रोही शासक शिवमार को पुनः बन्दी बनाया एवं उसके पश्चात् नोलम्बवाडी को आक्रान्त कर वहाँ के शासक चारूपोन्नेर को बिना किसी शर्त समर्पण के लिए बाध्य कर दिया। अंत मे विद्रोहियों के पूर्णतया दमन के क्रम मे उसने दन्तिदुर्ग के विरुद्ध आक्रमण किया और उसे पराजित किया, एवम 796 ई० तक गोविन्द तृतीय ने सम्पूर्ण दक्षिणापथ पर अपना अधिकार जमा दिया।

ध्रुव के उत्तरापथ पर आक्रमण के पश्चात निर्वात का लाभ उठाकर धर्मपाल ने कन्नौज पर आक्रमण कर कन्नौज के राजा इंद्रायुध को सत्ता से हटाकर पुनः अपने प्रतिनिधि के रूप में चक्रायुध को कन्नौज के सत्ता पर आसीन कर दिया। धर्मपाल ने अपने प्रभाव को आगे बढ़ते हुए मध्य प्रदेश और पंजाब के सामन्तों को भी अपने अधीन कर लिया। वत्सराज की मृत्य के पश्चात् 790 ई० में उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय सत्ता मे आया। उसने अपने पिता की नीति का अनुसरण करते हुए चक्रायुध को कन्नौज की सत्ता से पदच्युत कर दिया एवं उसकी सहायता के लिए आयी धर्मपाल की सेना को भी पराजित कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप धर्मपाल एवं नागभट्ट द्वितीय का युद्ध अवश्यंभावी हो गया एवं 797 ई० के लगभग मुद्रागिरि (मुंगेर) के पास इनके मध्य युद्ध हुआ।

उत्तर मे गुर्जर प्रतिहारों के बढ़ते प्रभाव को देखकर गोविन्द सतर्क हो गया एवं उसने उत्तरापथ–अभियान की योजना बनायी। राधनपुर दानपत्र और संजनदानपत्र मे बड़े ही विस्तार से उत्तरापथ अभियान का विवरण प्रस्तुत किया गया हैं। इस अभियान का व्याख्यात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए यह उल्लेख किया गया है, कि जैसे 'वसन्त' के आगमन पर वर्षा के बादल छूट जाते हैं, उसी प्रकार गोबिन्द के उत्तरापथ पहुंचने पर गुर्जर वहाँ से हट गए इस भीषण संग्राम में नागभट्ट द्वितीय इस तरह पराजित हुआ कि राधनपुर दानपत्र के शब्दों में स्वप्न में भी युद्ध की कल्पना करके वह मयाक्रान्त हो जाता था।

गोविन्द ने इस युद्ध मे विजय की एक रणनीति बनाई एवं अपने भाई इन्द्र, जो उस समय उसकी ओर से मालवा और गुजरात का शासक था, एवं सामंतों को यह जिम्मेवारी सौपीं कि वह विन्ध्य की ओर से आने वाली गुर्जर सेना का मार्ग अवरुद्ध करे। साथ ही स्वयं एक बड़ी सेना के साथ वह नागभट्ट से युद्ध के लिए उत्तरापथ की ओर बढ़ा एवं उसे बुरी तरह पराजित किया। कुछ इतिहासकारों का यह भी मानना है, कि इस युद्ध के लिए धर्मपाल ने गोविन्द को नागभट्ट के विरुद्ध युद्ध के लिए आमंत्रित किया था। यह युद्ध सम्भवतः झाँसी या ग्वालियर के आस–पास हुआ था। नागभट्ट को पराजित करके उसने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। संजनदानपत्र के अनुसार इस विजय के पश्चात गोविन्द की सेना हिमालय तक पहुँच गयी, यद्यपि इस काव्यात्मक उक्ति का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। नागभट्ट की पराजय के बाद धर्मपाल ने स्वयं भी गोबिन्द के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। जिस समय गोविन्द कन्नौज के अभियान मे व्यस्त था उस समय दक्षिणापथ से उसकी अनुपस्थिति का राजनीतिक लाभ उठाते हुए दक्षिण भारत के राजाओं यथा पल्लव, पाण्डय, केरल, चोल और गंग राजाओं ने एक सामरिक संगठन बना कर राष्ट्रकूटों पर आक्रमण कर उनकी शक्ति को कमजोर करने की कोशिश की। संभवतः इसी कारण गोविन्द ने उत्तरापथ के किसी भी भाग को न तो प्रत्यक्ष शासन में लिया और न ही उस पर अपना कोई प्रतिनिधि नियुक्त किया। संजन ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि गोविन्द ने इन राजाओं के संघ से तुंगभद्रा के तट पर स्थित रामेश्वरम् तीर्थ पर युद्ध किया एवं सफलतापूर्वक इस संगठन को छिन्न–भिन्न कर दिया। उसने कांची पर आक्रमण कर पाण्ड्य, चोल, केरल नृपों को पराजित किया। तमिल राजाओं के संघ पर विजय से श्रीलंका का राजा इतना भयमीत हुआ कि उसने अपने मंत्री की (मूर्ति प्रतिकृति) बनवाकर गोविन्द तृतीय के पास भेजा।

गोविन्द तृतीय के शासनकाल के अंतिम वर्षों मे राष्ट्रकूटों एवं वेंगी के पारस्परिक राजनीति में बदलाव आया। वेंगी के शासक विष्णुवर्धन के पश्चात उसका पुत्र विजयादित्य द्वितीय ने सहयोग की नीति का त्याग कर दिया, जिसके कारण गोविंद तृतीय के भ्राता भीम ने वेंगी में उत्तराधिकार का युद्ध छेड़ दिया। गोविन्द ने अपने भाई भीम का साथ दिया एवं विजयादित्य द्वितीय को अपदस्थ कर भीम को पदस्थ कर दिया। वेंगी के विरुद्ध किया गया यह अभियान संभवत उसके जीवन का अंतिम सैन्य अभियान था।

गोविन्द तृतीय अपने समय का सबसे प्रतापी नरेश था। वीरता की दृष्टि से उसकी तुलना अर्जुन से की गयी है। इससे उसे संजनदानपत्र में उचित ही 'कीर्तिनारायण' कहा गया है। इसके अतिरिक्त उसने प्रभूतवर्ष, जगतुंग, जनवल्लभ, कीर्तिनारायण, त्रिभुवनधवल आदि उपाधियाँ धारण की थी । वीरता की दृष्टि से उसकी तुलना अर्जुन से की गयी है। गोविन्द तृतीय ने उत्तरपथ के प्रति अत्यंत व्यावहारिक नीति का पालन करते हुए उसे अपने साम्राज्य मे सीधे तौर पर मिलने का प्रयास नहीं किया एवं अपने सामन्तों को साम, दाम और दण्डनीति के प्रयोग से अपने प्रति जवाबदेह रखा।

गोविन्द तृतीय के जीवनकाल मे ही उसका बड़ा भाई स्तम्भ एवं भीम की मृत्यु हो चुकी थी अतः उसने अपने भाइयों के स्थान पर गंगवाड़ी का शासक कृष्ण के पुत्र दन्तिवमंन् को एवं भीम के पुत्र कर्क को गुजरात एवं मालवा का शासक बनाया। 800 ई० के लगभग गोविन्द तृतीय को पुत्र प्राप्त हुआ था, जो उसके बाद अमोधवर्ष के नाम से विख्यात हुआ। अपने जीवन के अंतिम समय मे उसने भाई भीम के पुत्र कर्क को अपनी राजधानी का संरक्षण प्रदान किया क्योकि अमोघवर्ष उस समय छोटा था। 814 ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

बोध प्रश्न 2. गोविन्द तृतीय कि विजयों एवं उपलब्धियों कि व्याख्या करें।

12.3.3 अमोघवर्ष प्रथम (814–880 ई०)

गोविन्द तृतीय की मृत्यु के पश्चात 814 ई० में अत्यंत अल्पायु मे अमोघवर्ष ने इन्द्र के पुत्र कर्क सुवर्णवर्ष के संरक्षण मे राष्ट्रकूट सत्ता ग्रहण की। उसका वास्तविक नाम शार्व था और अमोघवर्ष, उसकी अन्य उपाधियाँ– नृपतुङ्ग, रट्टभार्तण्ड, वीरनारायण, और अतिशयधवल थीं। गोविंद तृतीय के तुलना में अमोघवर्ष का राजत्वकाल मे अधिकांश समय अपने राजत्व को बचाने में ही संघर्षरत रहा । 816 ई० के नौसारी ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल तक उसका शासन शांतिपूर्ण रहा किन्तु 821 ई० के कर्क के सूरत ताम्रपत्र अभिलेख से एवं अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि उसे शुरुआती कुछ वर्षों के पश्चात् विद्रोह झेलना पड़ा। संभवतः इसका कारण अमोघवर्ष को अल्पवयस्क एवं अपरिपक्व मानकर कुछ राष्ट्रकूट सामंतों, मन्त्रियों, सम्बन्धियों तथा पदाधिकारियों उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

संभवतः इसका कारण मान्यखेट के सामन्तों का कर्क के प्रभाव एवं संरक्षकत्व के प्रति द्वेष भाव था। सत्ता के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व वेंगी के विजयादित्य द्वितीय द्वारा किया गया क्योकि गोविन्द तृतीय ने वेंगी के पूर्व शासक विजयादित्य को पराजित करके उसके स्थान पर भीम को वेंगी के सिहासन पर बैठा दिया था। इस

संघर्ष मे उसका गंगवाड़ी के शासक स्तम्भ के पुत्र शंकरगण ने भी किया क्योकि गोविन्द तृतीय ने उसे अपदस्थ करके शिवमार को उसका शासक बनाया गया था । यह भी सम्भव है कि इस विद्रोह मे उसके परिवार के कुछ सदस्य भी षड्यन्त्र में सक्रिय रहे हों। गोविन्द तृतीय का 'कृतयुग' घोर 'कलिकाल' में बदल गया। संजन ताम्रपत्र लेख से ज्ञात होता है कि उसके पक्षधर मन्त्रीयों एवं अधिकारियों का वध कर दिया एवं उसे राजसिंहासन से हटा दिया जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण साम्राज्य में अशान्ति एवं अराजकता की स्थिति पैदा हो गई।

विजयादित्य द्वितीय ने भीम को हटाकर वेंगी पर अधिकार प्राप्त कर लिया और अमोघवर्ष के विरुद्ध द्वादशवर्षीय संघर्ष छेड़ दिया। संजनदानपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह संघर्ष बहुत लंबा चला एवं एक समय स्थिति इतनी विपन्न हो गयी कि अमोघवर्ष को मान्यखेट से पलायन करना पड़ा। जिसे संजनदानपत्र में कर्क के लिए 'पातालमल्लश'की उपाधि मिलती है, संभवतः अनेक संघर्षों के बाद कर्क की सहायता से अमोघवर्ष पुनः राजत्व प्राप्त करने मे सफल रहा एवं शांति की स्थापना की। 821 ई० तक उसने कर्क की सहायता से वेंगी को परास्त कर दिया एवं लगभग 845 ई०, तक वेंगी पर अपना प्रभाव स्थापित रख सका।

गंगवाड़ी के शासक शिवमार जिसे गोविन्द तृतीय ने ही पुनः प्रतिष्ठित किया एवं बाद मे उसने उसी के विरुद्ध विद्रोह कर दिया एवं अंततः गोविन्द तृतीय से युद्ध मे पराजित होकर वह मारा गया था। गंगवाड़ी के शासक शिवमार के मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र राजमल्ल ने अमोघवर्ष के विरुद्ध परिस्थिति का लाभ उठाकर गंगवाड़ी को 830–834 ई० के बीच स्वतन्त्र कर लिया। अमोघवर्ष ने कालांतर मे कूटनीति का प्रयोग करते हुए 860 ई० अपनी पुत्री चन्द्रोबलब्बा का विवाह राजमल्ल के पौत्र बूतुग से करके इस वंश के साथ स्थायी शत्रुता का अन्त किया। अपने पिता गोविंद तृतीय की तुलना मे अमोघवर्ष प्रथम काम अधिकांश समय अपने ही साम्राज्य के आन्तरिक विद्रोहों के दमन में व्यतीत होता रहा जिसके कारण संभवतः वह उत्तरपथ की ओर ध्यान न दे सका। दूसरी तरफ गुर्जर प्रतिहार वंश का शासक प्रतीहार नरेश मिहिरभोज ने अपने पूर्वजों के पराभव का बदला चुकाने के लिये तेजी से उत्तरी राष्ट्रकूट भू–भागों पर आक्रमण करना शुरू किया। इस क्रम मे उसने सबसे पहले मालवा राज्य पर आक्रमण करके उसकी राजधानी उज्जैन पर अधिकार कर लिया एवं आगे बढ़ते हुए मिहिरभोज ने नर्मदा नदी तक के भू–भाग को जीतकर काठियावाड़ के शेष भाग पर आक्रमण कर दिया । गुर्जर भूमि की राष्ट्रकूट शाखा का शासक कर्क था, कर्क के पुत्र ध्रुव प्रथम से अमोघवर्ष का संघर्ष हुआ, जिसमें वह मारा गया एवं उसके पश्चात उसके पुत्र अकालवर्ष ने संघर्ष जारी रखा। अकालवर्ष के पश्चात 860 ई० मे उसके पुत्र ध्रुव द्वितीय और अमोघवर्ष का संघर्ष हुआ, यद्यपि बाद में दोनों के मध्य संधि हो गयी । संभवतः संधि के पीछे राजनीतिक कारण रहा होगा क्योंकी प्रतिहार नरेश

मिहिर भोज लगातार अपनी शक्ति बढ़ता जा रहा था। इस संधि के परिणामस्वरूप अमोघवर्ष प्रथम एवं ध्रुव की सम्मिलित सेना ने काठियावाड़ के निकट मिहिरभोज की सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया था, एवं मिहिरभोज को अपनी सामरिक सफलताओं के रूप में केवल मालवा तथा काठियावाड़ राज्य के कुछ भाग से ही संतुष्ट होना पड़ा।

पालवंशीय लेखों में यह विवरण प्राप्त होता है कि पालवंशीय शासक नारायण पाल ने किसी द्रविड़ नरेश को पराजित किया था। अल्तेकर तथा मजूमदार ने इस द्रविड़–राजा की पहचान राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम से करना समीचीन मानते है। इनका मानना है कि संभवतः अमोघवर्ष प्रथम वेंगी पर विजय के बाद पूर्वी समुद्रतट की ओर से क्रमशः उड़ीसा एवं उसके पश्चात बंगाल तक पहुँच गया। यद्यपि गौड़ाधिपति नारायण पाल इस काल तक उत्तर भारत की महान् शक्ति के रूप में स्थापित हो चुका था, अमोघवर्ष ने उसे परास्त करने का पुरजोर प्रयास किया। संभवतः पालनरेश को इस युद्ध मे आंशिक सफलता प्राप्त हुई जिसका विवरण पाल अभिलेखों मे मिलता है।

सिरूर तथा नीलगुण्ड के प्रशस्तिकारों का यह कथन कि अमोघवर्ष ने अंग, वंग और मगध पर विजय प्राप्त की जोकि निराधार प्रतीत होती है, क्योंकी इनकी किसी अन्य साक्ष्यों से पुष्टि नहीं हो सकी है। अमोघवर्ष स्वभाव से ही युद्धप्रिय नहीं था, वस्तुतः उसका अधिकांश समय अपने पिता से प्राप्त साम्राज्य को सुरक्षित रखने मे ही लगा। गंगवाड़ी, गुर्जर प्रतिहार, मालवा एवं वेंगी भी उसके नियन्त्रण में पूरी तरह न रह सका।

यद्यपि किसी शासक की सफलता का मानक केवल उसकी युद्धभूमि में अर्जित सफलताएं ही नहीं हो सकती है, अमोघवर्ष ने लगभग 60 वर्षों तक एक महान प्रजापालक के रूप में सफलता से शासन किया। उसने एक लोक केन्द्रित शासन का उदाहरण प्रस्तुत किया, जिसके परिणामस्वरूप वह भारत के महान शासकों के परम्परा में आता है। संजनदानपत्र में उसकी प्रजावत्सलता की प्रशंसा करते हुए उसकी तुलना शिवि, दधीचि आदि ऐसे महापुरुषों से की गयी है जिन्होंने पर हित में अपना शरीर भी दान कर दिया। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध अवस्था में वह जैन मतावलंबी हो गया था। जिनसेन, जिन्होने आदिपुरण की रचना की वह इसके धर्मगुरु थे, साथ ही 'गणितसार संग्रह' के रचयिता सुप्रसिद्ध गणितज्ञ जैनी महावीराचार्य का भी उसपर गहरा प्रभाव था।

इसके अतिरिक्त अमोघवर्ष स्वयं भी विद्वान् और काव्यशास्त्रज्ञ था। उसने स्वयं 'कविराज मार्ग' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। उसने अपने राज्य मे कई विद्वानों और कवियों को संरक्षण दिया । कन्नड़ साहित्य में उसकी गहरी रुचि एवं स्थान माना जाता है। विद्या और साहित्य के प्रति उसकी रुचि एवं उसके

द्वारा दिये गए संरक्षण में उसकी तुलना गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय से की गयी है जैनी होते हुए भी उसने धर्म समन्वय नीति का पालन किया एवं उसने हिन्दू देवी महालक्ष्मी के प्रति अपनो आस्था व्यक्त की। जीवन के अंतिम समय मे उसने अपने को राजत्व से अलग कर लिया एवं अपने एकमात्र पुत्र कृष्ण(कृष्ण द्वितीय) पर राज–भार डाल दिया। 878 ई० में अमोघवर्ष की मृत्यु हो गयी।

बोध प्रश्न 3. अमोघवर्ष कि विजयों एवं उपलब्धियों कि व्याख्या करें।

.....

12.3.4 इन्द्र तृतीय(914–928 ई०)

अमोघवर्ष प्रथम के पश्चात उसका पुत्र कृष्ण द्वितीय(880–914 ई०) शासक बना, उसे अपने शासन काल में वेंगी के चालुक्य शासक विजयादित्य तृतीय, गुर्जर प्रतिहरों एवं चोलों के साथ युद्ध करना पड़ा। इधर ताम्र पत्र, पोठापुरम–अभिलेख एवं कलचुंबरू अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि विजयादित्य तृतीय ने कृष्ण द्वितीय को निर्णायक रूप से पराजित करके नोलम्बड़ी एवं गंग राज्य पर अधिकार कर लिया था। 888 ई० के बेगुम्रा ताम्रपत्र एवं 914 ई० के इन्द्र तृतीय के बेगुम्रा अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसने प्रतिहार नरेश मिहिरभोज को पराजित किया था। कृष्ण द्वितीय का अपने शासनकाल के अंतिम वर्षों मे दक्षिण की उभरती शक्ति चोलों से युद्ध हुआ जिसका कारण यह था कि वह अपने नाती कन्नरदेव को आदित्य प्रथम के बाद चोल शासक बनाना चाहता था। इसलिए उसने परान्तक चोल पर आक्रमण कर दिया एवं 911 ई० के बल्लालतिरुवल्लेलि के युद्ध मे उसे पराजित होना पड़ा। कृष्ण द्वितीय ने 914 ई० तक शासन किया, करहाड़ एवं देवली ताम्रपत्र लेखों से ज्ञात होता है कि उसके पुत्र जगत्तुंग की मृत्यु इसके शासन काल मे ही हो गयी थी। अतः कृष्ण द्वितीय के पश्चात इन्द्र तृतीय ने सत्ता संभाली, इसके नौसारी दानपत्रों से ज्ञात होता है कि 915 ई० में राज्याभिषेक के पश्चात उसने करुंदक तीर्थ की यात्रा की थी।

इन्द्र तृतीय ने 'नित्यवर्ष', 'रट्टकंदर्प', 'किर्तिनारायण' और 'राजमार्तण्ड' जैसी उपाधियाँ धरण की। अमोघवर्ष और कृष्ण द्वितीय के स्वभाव के विपरीत इन्द्र तृतीय रणज्ञ और युद्धप्रिय था। उसने गोविन्द तृतीय को अपना आदर्श माना एवं पुनः उसने उत्तरपथ अभियान का निर्णय लिया। जिसका तात्कालिक कारण गुर्जर प्रतिहार सामन्त परमारवंशीय उपेन्द्रराज द्वारा नासिक और गोवर्धन पर आक्रमण एवं उसपर अधिकार करना था जिस पर राष्ट्रकूटों का अधिकार था। उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इन्द्र तृतीय ने परमारवंशीय उपेन्द्रराज को पराजित करके गोवर्धन का उद्धार किया।

उपेन्द्रराज को पराजित कर इन्द्र तृतीय ने उज्जयिनी पर भी अधिकार कर लिया। इस विजय के पश्चात इन्द्र तृतीय ने उत्तर मे सामरिक अभियान का निर्णय लिया, इस समय गुर्जर प्रतिहार वंश में उत्तराधिकार के प्रश्न पर भोज द्वितीय एवं महिपाल मे गृह युद्ध चल रहा था । इस युद्ध मे महिपाल भोज ने चंदेल नरेश हर्ष की सहायता से सत्ता पाने मे सफल रहा एवं उसने भोज द्वितीय जिसे राष्ट्रकूट समर्थित चेदी नरेश कोकल्ल का समर्थन प्राप्त था को पराजित कर दिया। कैम्बे अभिलेख से ज्ञात होता है कि इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण कर उस पर विजय प्राप्त कर लिया। कन्नौज पर अधिकार करके उसने एक बार फिर राष्ट्रकूट गौरव को स्थापित किया। कन्नौज से पराजित होने के पश्चात् महिपाल महोबा की ओर भागा । महिपाल के पीछे इन्द्र तृतीय ने अपने सामन्त सेनापति नरसिह को महोबा भेजा जहां निर्णायक तौर पर महिपाल की पराजय हुई। विजय के पश्चात् राष्ट्रकूट सेना प्रयाग तक पहुँची और फिर मान्यखेट लौट आयी।उत्तरापथ से लौटने के बाद इन्द्र तृतीय की दृष्टि वेंगी के चालुक्यों पर गयी। इस समय वेंगी का शासक विजयादित्य चतुर्थ था। कलचुंबरू अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कृष्ण द्वितीय को अपनी पराजय के बाद विजयादित्य तृतीय से वंदना करनी पड़ी थी, इस अपमान का बदला लेने के लिए इन्द्र तृतीय ने वेंगी पर आक्रमण कर दिया। राष्ट्रकूट चालुक्य युद्ध में, आरम्भ में विजयादित्य चतुर्थ को प्रारम्भिक सफलता तो मिली किन्तु युद्ध में वह मारा गया। वेंगी के कुछ क्षेत्र पर राष्ट्रकूट सेना ने कब्जा कर लिया। यद्यपि इस युद्ध का कोई भी उल्लेख राष्ट्रकूट अभिलेखों मे कहीं नहीं मिलता है, अतः यह संभव है कि प्रारम्भिक सफलता के बाद भी राष्ट्रकूटों का स्थायी अधिकार चालुक्यों पर स्थापित नहीं हो सका। इसकी पुष्टि विजयादित्य चतुर्थ की मृत्यु के बाद अम्म प्रथम के स्वतंत्र रूप से शासन करने से भी होती है। इन्द्र तृतीय के शासन के अभिलेख 927 ई० तक मिलते है, संभवतः 928 ई० के अंतिम चरण मे उसकी मृत्य हो गयी।

बोध प्रश्न 4. इन्द्र तृतीय के विजयों एवं उपलब्धियों कि व्याख्या करें। उसने कैसे राष्ट्रकूट सत्ता को पुनर्स्थापित किया?

.....

12.4 राष्ट्रकूट वंश के परवर्ती शासक एवं पतन

इंद्र तृतीय के बाद उसके बेटे अमोघवर्ष द्वितीय (928–929ई.) ने सिंहासन संभाला। इसके पश्चात गोविंद चतुर्थ(930–936ई.) ने सत्ता संभाली किन्तु वह एक विलासी शासक था, अतः उसके सामंतों ने उसके खिलाफ विद्रोह कर दिया एवं उसको सत्ता से हटा दिया । गोविंद चतुर्थ के बाद 934–35 ई. में अमोघवर्ष तृतीय (936–939ई) को सिंहासन मिला। वह एक सौम्य, शांत और धार्मिक राजा था। अमोघवर्ष

तृतीय के पश्चात उसके पुत्र और युवराज कृष्ण तृतीय 939 ई में सत्ता संभाली। कृष्ण तृतीय (939–967ई.) राष्ट्रकूट वंश के प्रतिभाशाली शासकों की शाखा में अंतिम था। उसने मालवा के परमारों, वेंगी के पूर्वी चालुक्यों, तंजौर के चोल शासक परांतक प्रथम को हराया और चोल साम्राज्य के उत्तरी भाग को नष्ट कर दिया। उसकी मृत्यु 966 ई. के बाद राष्ट्रकूटों का पतन तेजी से हुआ, 972 ई. में परमार राजाओं ने मान्यखेट पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह से लूटा और जला दिया। इस वंश का अंतिम सम्राट कर्क द्वितीय था, जिसने मात्र दो वर्ष ही राज्य किया। खारेपाटन अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके सामंत तैलप द्वितीय ने कर्क द्वितीय को पराजित करके राष्ट्रकूट राज्य को अपने अधीन कर लिया।

12.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

उत्तर– उपभाग देखें 7.2 एवं 7.3.1

बोध प्रश्न 2.

उत्तर– उपभाग देखें 7.3.2

बोध प्रश्न 3.

उत्तर– उपभाग देखें 7.3.3

बोध प्रश्न 4.

उत्तर– उपभाग देखें 7.3.4

12.6 सारांश

बादामी के चालुक्यों के पतन से लेकर कल्याणी के चालुक्य शासक तैलप द्वितीय द्वारा अपनी सत्ता की स्थापना तक लगभग दो शताब्दियों तक राष्ट्रकूटों ने शासन किया। विदेशी यात्रियों ने अपने विवरणों में राष्ट्रकूट साम्राज्य के प्रशासन की प्रशंसा की। इस लंबे अंतराल मे राष्ट्रकूट शासन ने इस भू भाग को स्थायित्व प्रदान किया एवं इस वंश के शासकों ने कला, धार्मिक सदभाव, साहित्य, वास्तुकला एवं कन्नड भाषा को प्रश्र प्रदान किया उसका भारत की विरासत एवं सामासिक संस्कृति में आज भी एक प्रमुख स्थान है। कृष्ण प्रथम का कैलाश मंदिर एवं एलोरा के गुहा मंदिर वास्तुकला के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते है।

राष्ट्रकूट साम्राज्य हिंदू और जैन धर्म के धार्मिक सद्भाव एवं विकास का समृद्ध काल था। इस युग में, कन्नड़ में बहुत सारे ग्रन्थों की रचना की गयी एवं यह दक्षिण भारत की महत्वपूर्ण भाषाओं में से एक थी।

12.7 शब्दावली

- कन्नड़देश–आधुनिक कर्नाटक।
- पृथ्वीवल्लभ–पृथ्वी का राजा।
- भट्टारक रू–आदरणीय, श्रद्धा या आदर का पात्र।
- गंगवाड़ी–आधुनिक मैसूर का सीमावर्ती भू–भाग।
- गौड़प्रदेश –आधुनिक बंगाल।

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अल्तेकर, ए.एस. 1934. राष्ट्रकूटाज़ एण्ड देअर टाइम्स, पूना ओरिएंटल बुक एजेंसी।
2. कराशिमा, नोबोरु (संपादित) 2017. ए कंसाइज हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडियाः इसूज एण्ड इंटरप्रिटेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
3. दुबे, एच. एन. 2019. दक्षिण भारत का बृहद इतिहास, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. महालिंगम, टी. वी. 1955. साउथ इंडियन पॉलिटी, मद्रास विश्वविद्यालयः मद्रास।
5. शास्त्री, के. ए. नीलकंठ 1958. हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडियाः फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टाइम्स द फॉल ऑफ़ विजयनगर एंपायरऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
6. श्रीवास्तव, बलराम 2004. दक्षिण भारत, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

इकाई–13–चोल वंश

इकाई की रुपरेखा

13.0 प्रस्तावना

131. उद्देश्य

13.2 चोल वंश का प्रारम्भिक इतिहास

13.2.1 परान्तक प्रथम

13.2.2 राजराज प्रथम

13.2.3 राजेंद्र चोल

13.2.4 कुलोत्तुंग प्रथम

13.2.5 परवर्ती शासक एवं पतन

13.3 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.4 सारांश

13.5 शब्दावली

13.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 प्रस्तावना

कावेरी घाटी के साथ सुदूर दक्षिण भारत की प्रायद्वीपीय राजनीति में दसवीं शती के प्रारम्भिक वर्षों में कई शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण राजशक्तियों का उदय हुआ। इनमें से कुछ का उल्लेख तो संगम युगीन साहित्य (लगभग 100 ई० से 300 ई० के मध्य) में भी प्राप्त होता है। इन्ही में से एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में चोल राजवंश का उदय विशेष उल्लेखनीय है। चोल साम्राज्य का प्रारम्भिक विस्तार का क्षेत्र चोडमंडलम् मोटे तौर पर पेन्नार एवं बेल्लारू नदियों के मध्य स्थित था जो पूर्वी–समुद्र तट से जुड़ा हुआ था। चोलों ने अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य से वर्तमान तमिलनाडु प्रदेश मे अपने स्थायित्व को बनाए रखते हुए, साम्राज्य–विस्तार के क्रम में अपनी राजधानी परिवर्तित करते रहे । इनके प्रमुख राजनीतिक केन्द्रों में उत्थान के दिनों में उरगपूर अथवा उरैयूर (त्रिचनापल्ली के निकट वर्तमान उरैयूर), एवं बाद के काल में कावेरीपट्टनम् (कावेरी नदी के तट पर), तंजुवुर (तंजोर अथवा थंजाउर), काँची तथा गंगैकोंडचोलपुरम् आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। लगभग 400 वर्षों के शासनकाल मे चोल शासकों ने केवल सैन्य विस्तार एवं साम्राज्य विस्तार ही नहीं किया, अपितु उन्होने इस क्षेत्र को स्थायित्व प्रदान किया जिसके परिणामस्वरूप इनके राज्य में स्थानीय स्वशासन से लेकर वास्तुकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला का अतुलनीय विकास हुआ।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य चोल वंश के इतिहास के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन करना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको निम्न विषयों की जानकारी प्राप्त होगी।

1. चोल वंश के प्रारंभिक इतिहास एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि के बारे में।

2. चोल वंश के प्रारंभिक शासकों के सन्दर्भ में।

3. चोल वंश के महत्वपूर्ण शासकों यथा–परान्तक प्रथम, राजराज प्रथम, राजेंद्र चोल, कुलोत्तुंग प्रथम एवं उनकी राजनीतिक उपलब्धियों के विषय में।

4. चोल वंश के शक्तिशाली शासकों के सैन्य अभियानों एवं साम्राज्य विस्तार के संदर्भ में।

5. चोल वंश के परवर्ती शासकों एवं पतन के संदर्भ मे।

13.2 चोल वंश का प्रारम्भिक इतिहास

महाभारत तथा मेगस्थनीज द्वारा रचित 'इन्डिका' में चोलों का प्राचीन उल्लेख मिलता है। अशोक के अभिलेखों में दक्षिण भारत में उसके साम्राज्य के सीमान्त राज्यों के रूप में में एवं सिंहली बौद्ध ग्रंथ तथा संस्कृत वैय्याकरणकार कात्यायन ने 'वार्तिक' में चोलों का उल्लेख किया है। चोलवंश के शासक पल्लव नरेशों के अधीन सामन्त शासक के रूप में कावेरी नदी के तटवर्ती क्षेत्रों पर शासन कर रहे थे। सामन्त शासक के रूप में चोलों द्वारा धीरे–धीरे उरगपूर अथवा उरैयूर के आस–पास क्षेत्र में अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे। तिरुवालंगाडु–ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है कि विजयालय (850 ई० से 871 ई०) ने दक्षिण में पाण्ड्यों के अधीनस्थ मुत्तरैयरों से तन्जौर–क्षेत्र पर अधिकार कर लिया एवं तंजौर को अपनी राजधानी बना लिया।

विजयालय के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी आदित्य प्रथम ने 871 ई० में सत्ता संभाली। आदित्य प्रथम ने अपने शासन की शुरुआत पल्लव नरेश अपराजित के अधीन सामन्त के रूप में की थी। पाण्ड्यों के विरुद्ध युद्ध मे इसने पल्लव शासक अपराजित का साथ दिया जिसके परिणामस्वरूप युद्ध मे विजयी होने के पश्चात् पल्लव शासक ने तन्जौर के आसपास के विजित पाण्ड्य प्रदेशों को उसे दे दिया। तिरुवालंगाड्डु ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि इस विजय के पश्चात् आदित्य प्रथम ने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करते हुए पल्लव शासक अपराजित के विरुद्ध विद्रोह करके उसकी हत्या कर दी, इस उपलक्ष्य में उसने 'कोदन्डराम' विरुद् धारण किया। इस विजय के पश्चात चोल राज्य की सीमा अब राष्ट्रकूट राज्य की सीमा तक पहुंच गई। सैन्य विजय के साथ ही साथ आदित्य प्रथम ने कूटनीति के सहारे उस समय के दक्षिण भारत के महत्वपूर्ण राजवंशो के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया, इनमें मुख्य रूप से पल्लव राजकन्या से विवाह एवं उसके पश्चात् राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय की पुत्री इलंगोनपिच्चि से विवाह करके उसे अपनी

प्रधान महामहिषी बनाया। इसी प्रकार अपने पुत्र परान्तक प्रथम का विवाह चेरनरेश स्थानूर्वी के पुत्री के साथ करके दोनों राज्यों के मध्य के मैत्री–सम्बन्ध को सुदृढ किया था।

13.2.1 परान्तक प्रथम (907–955 ई०)

आदित्य प्रथम की मृत्यु के पश्चात् 907 ई० में उसका पुत्र परान्तक प्रथम शासक हुआ। शासक बनने के पश्चात् उसका पहला संघर्ष राष्ट्रकूट शासक कृष्ण द्वितीय एवं उसके सामंतों यथा बाण एवं वेदुम्बों से हुआ जो अपने दौहित्र तथा परान्तक प्रथम के सौतेले भाई कन्नर देव को शासक बनाना चाहता था। राजेन्द्र चोल के शासनकाल का कन्याकुमारी से प्राप्त एक लेख से ज्ञात होता है कि इस युद्ध परान्तक प्रथम ने कृष्ण द्वितीय को उसके सामंतों के साथ पराजित किया था एवं विजय के उपलक्ष में उसने 'वीरचोल' नामक विरुद् धारण किया। यह युद्ध संभवतः वल्लाल–क्षेत्र (उत्तरी अर्काट में तिरुवल्लभ स्थान) मे हुआ था जिसमे परान्तक प्रथम को गंग नरेश पृथ्वीपति का सहयोग प्राप्त हुआ था।

साम्राज्य विस्तार के क्रम में परान्तक प्रथम का संघर्ष पाण्ड्य–राज्य के शासक राजसिंह द्वितीय से हुआ। संभवत इनके मध्य युद्ध कई चरणों मे हुआ जिसमे अंततः परान्तक प्रथम विजित हुआ एवं विजय के उपलक्ष में 'मदुरान्तक' तथा 'मदुराइकोड' की उपाधि धारण की। बौद्ध ग्रंथ 'महावंश' से ज्ञात होता है कि पाण्ड्य–नृपति राजसिंह द्वितीय युद्ध मे पराजित होने के पश्चात अपने मित्र सिंहल के शासक कस्सप पंचम से सैनिक सहायता मांगी। सिंहल–राज्य एवं पाण्ड्यों की सम्मिलित सेना के साथ परान्तक प्रथम का चेल्लूर के मैदान में युद्ध हुआ, जिसमें अंतिम रूप से पाण्ड्य पराजित हुए। इस विजय के उपलक्ष में परान्तक प्रथम ने 'संग्रामराघव' की उपाधि धारण की। इन विजयों के फलस्वरूप परान्तक प्रथम का राज्य दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तृत हो गया।

परान्तक प्रथम को अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय एवं उसके सामंतों के संयुक्त सैनिक संगठन का प्रतिरोध झेलना पड़ा जिसमें राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई एवं उसने तोंडमण्डलम् क्षेत्र पर अधिकार कर लिया तथा उसे राष्ट्रकूट राज्य में मिला लिया। पश्चिमी गंग

राज्य के शासक बूत्तुग द्वितीय की सहायता से कृष्ण प्रथम ने आगे बढ़कर तक्कोलम् के युद्ध में निर्णायक रूप से परान्तक प्रथम को दोबारा पराजित किया। लीडेन अनुदान–पत्र से ज्ञात होता है कि इसी युद्ध में गंग शासक बूत्तुग ने चोल राजकुमार राजादित्य की हत्या भी कर दी । इस विजय के फलस्वरूप राष्ट्रकूटों ने तोंडमण्डलम् तथा मदुरा के आस–पास स्थित भू–भागों को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

परान्तक शैव मतानुयायी था। उसने स्वयं चिदम्बरम–मन्दिर के गर्भ गृह में स्थापित शिव–नटराज चिदम्बरम् की प्रतिमा के लिए ढेर सारे आभूषणों को दान दिया था। 955 ई० में परान्तक प्रथम की मृत्यु के पश्चात् लगभग 985 ई० तक का चोल इतिहास अत्यंत अशांतिपूर्ण काल है । लगभग तीस वर्षों के शासन में चोल सत्ता पर बड़े अल्प काल के क्रमशः निम्न शासकों ने राज्य किया, इनमे क्रमशः गंगरादित्य (953 ई० से 965 ई० तक) अरिंदिगै 956 ई० से 957 ई० तक) तथा सुन्दर चोल अथवा परान्तक द्वितीय (956 ई० से 973 ई० तक) प्रमुख थे। इन सभी शासकों में सुन्दर चोल विशेष रूप से साहसी तथा पराक्रमी था। करकन्दै तथा लीडन दानपत्रों से ज्ञात होता है कि अपने युवराज एवं पुत्र के साथ मिलकर उसने पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण कर तत्कालीन पाण्ड्यनृपति वीरपाण्ड्य को चेवूर के मैदान में पराजित उसकी हत्या कर दी।

पाण्ड्यों पर विजय के पश्चात् सुंदर चोल ने सिंहल देश पर भी आक्रमण किया, किन्तु असफल रहा। इसकी मृत्यु के कुछ माह पहले ही संभवतरू उत्तर चोल ने उसके युवराज पुत्र आदित्य द्वितीय को मार कर चोल सत्ता पर अधिकार कर लिया। परान्तक प्रथम के मृत्यु के लगभग 30 वर्षों बाद 985 ई० में परान्तक द्वितीय (सुन्दर चोल) का कनिष्ठ पुत्र अरिमोलिवर्मन् प्रथम जिसका उपनाम राजराज प्रथम चोल था, चोल सत्ता पर आसीन हुआ। जिसने न केवल चोल साम्राज्य को दक्षिण भारत का सबसे विस्तृत एवं शक्तिशाली साम्राज्य बनाया, अपितु नवीन प्रशासन प्रणाली से स्थायित्व की भी स्थापना की।

बोध प्रश्न 1.चोल वंश के प्रारम्भिक इतिहास का वर्णन करते हुए, परान्तक प्रथम कि उपलब्धियों कि व्याख्या करें।

.....

13.2.2 राजराज प्रथम (985–1014 ई०)

चोल राजवंश को न केवल दक्षिण भारत अपितु समूचे भारत के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजवंश के रूप मे स्थापित करने का श्रेय राजराज को जाता है । राजराज अरिमौलिवर्मन् परान्तक द्वित्तीय सुन्दर चोल का पुत्र था। इसने युवराज के रूप मे उत्तम चोल के शासनकाल में प्रशासनिक कार्यों में भाग लिया था। इसे उत्तराधिकार में एक संकुचित एवं छोटा सा राज्य मिला था, जिसे इसने अपने तीस वर्षीय शासनकाल में अपने नवाचार एवं प्रयोगों के माध्यम से चोल राजत्व और समृद्धि के रूप में दृढ़ आधार प्रदान किया। अतएव इसने सबसे पहले अपने प्रशासन और सेना को संगठित किया, उसके पश्चात् अपने सामरिक अभियानों को प्रारम्भ किया । डा० बी० वेंकय्या का मानना है कि उसने अपने शासन–काल के प्रारम्भिक आठ वर्षों में कोई महत्वपूर्ण सामरिक अभियान नहीं किया एवं पूरा ध्यान आन्तरिक स्थिति को मजबूत करने में लगाया। राजराज प्रथम के शासन काल के 29वें वर्ष में उत्कीर्णित तंजौर–अभिलेख से इसके सामरिक अभियानों की जानकारी प्राप्त होती है, इसमे इसके शासनकाल के नवें वर्ष अर्थात् 994 ई० से लेकर लगभग 1002 ई० तक के सामरिक अभियानों का विवरण प्राप्त होता है। नीलकण्ठ शास्त्री का मानना है कि इसके राजत्व का काल चोल–साम्राज्य का सर्वाधिक रचनात्मक काल माना जा सकता है। तिरुवालंगाडु दानपत्र लेख से ज्ञात होता है कि संभवतः राजराज प्रथम ने अपने शासनकाल के आठवें वर्ष में पाण्ड्य जनपद पर आक्रमण कर दिया। नीलकण्ठ शास्त्री के अनुसार उक्त सैन्य अभियान मे राजराज ने क्रमशः पाण्ड्य, केरल एवं सिंहल राज्यों के नरेश जिन्होने एक संयुक्त सैनिक–मोर्चे का गठन किया था को एक–एक करके पराजित किया। सर्वप्रथम राजराज चोल ने केरल राज्य पर आक्रमण कर कांडलूर (त्रिवेन्द्रम) में केरल के शासक भास्कर रविवर्मन् को पराजित किया एवं इसके उपलक्ष में 'कांडलूर शालैवककलमरुत्' की उपाधि

धारण की। इस विजय के पश्चात राजराज चोल ने मदुरा पर आक्रमण किया एवं पाण्ड्य शासक अमरभुजंग को पराजित कर बन्दी बना लिया । इस सफल अभियान के क्रम में आगे बढ़ते हुए उसने कोल्लम् एवं कोंडुगोलूर के शासकों को पराजित कर मलयनाड (कूर्ग), कान्दलूर एवं विलिन्द जैसे दुर्गों को जीत लिया।

राजराज प्रथम चोल के 20वें वर्ष के अभिलेख से इन विजयों की पुष्टि होती है। श्रीलंका (सिंहल) के राजा महेन्द्र पंचम् ने केरल एवं पाण्ड्य शासकों पर चोलों के आक्रमण के दौरान सैन्य सहायता प्रदान की थी। अतः केरल एवं पाण्ड्य शासकों के ऊपर विजय के पश्चात राजराज प्रथम ने दक्षिणी–समुद्र को पार कर सिंहल देश की राजधानी अनुराधपुर आक्रमण कर उसे बुरी तरह आक्रान्त कर दिया । राजराज प्रथम ने विजित सिंहल प्रदेश को संकेंद्रित करके उसका नाम 'मामुण्डिचोलमण्डलम्' रखा एवं राजधानी पोलोन्नरुवा का नाम परिवर्तित करके 'जननाथमंगलम' रखा एवं जनन्नाथ उपाधि धारण किया । अपनी विजय के उपलक्ष्य में राजराज प्रथम चोल ने सिंहल देश में द्रविड़–वास्तु–शैली में विशाल वास्तु एवं शिव– मंदिरों का निर्माण कराया । राजराज प्रथम चोल के छठें वर्ष के अभिलेख से नोलम्बों एवं गंगों के विरुद्ध अभियानों का उल्लेख मिलता है। इसी अभिलेख में उसकी उपाधि 'चोलनारायण' का भी उल्लेख मिलता है।

973 ई० में तैलप द्वितीय ने राष्ट्रकूट शासक कर्क द्वितीय को सत्ता से हटकर कल्याणी के चालुक्य वंश की नीव डाली एवं चालुक्य एवं चोल संघर्ष के एक नए दौर से शुरुवात हुई ।कल्याणी के नरेश तैलप द्वितीय ने 980 ई० के लगभग चोल नरेश उत्तम चोल को पराजित किया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त 997 ई० में उसका योग्य पुत्र सत्याश्रय ने कल्याणी की सत्ता संभाली । दूसरी तरफ चोल सत्ता पर राजराज प्रथम आसीन हुआ, जो सत्याश्रय का समकालीन था । दोनों शक्तियों के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण बेंगी–राज्य पर अपना प्रभाव स्थापित करने को लेकर था । 993 ई० में कल्याणी के चालुक्य शासक ने वेंगी के शासक दानार्णव की हत्या कर उसके साले तेलगू–जटाचोडभीम को सत्ता सौंप दी। ऐसे में दानार्णव के दोनों पुत्रों ने चोल–साम्राट् राजाराज प्रथम के पास जाकर आश्रय लिया।

राजराज प्रथम ने जटाचोडभीम को वैध उत्तराधिकारी के पक्ष में सत्ता छोड़ने के लिए राजाज्ञा प्रेषित की। किन्तु जटाचोडभीम ने प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अतः राजराज प्रथम चोल ने वेंगी पर सीधा आक्रमण कर जटाचोडभीम की हत्या करके वेंगी राज्य पर अधिकार कर लिया एवं दानार्णव के ज्येष्ठ पुत्र शक्तिवर्मन् को सत्ता सौंप दी। वेंगी राज्य पर अपने प्रभाव को बढ़ते हुए राजराज ने उसके समीपवर्ती राज्यों पर अधिकार करना शुरू कर दिया। अतः चोलों एवं चालुक्यों का संघर्ष अवश्यभावी हो गया । कल्याणी के नरेश सत्याश्रय ने 1006 ई० में वेंगी राज्य पर आक्रमण कर शक्तिवर्मन एवं राजराज प्रथम की सेना को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया एवं वेंगी के कुछ हिस्सों पर अधिकार कर लिया ।

तिरवालंगाडु ताम्रपत्र अभिलेखों से ज्ञात होता है कि निर्णायक रूप से सत्याश्रय को पराजित करने के लिए राजराज प्रथम एक विशाल चोल–सेना के साथ युद्ध–भूमि में उतार गया। जिसके परिणामस्वरूप चालुक्य नरेश सत्याश्रय ने डरकर युद्ध भूमि छोड़ दी। इस अभियान में राजराज ने बड़ी ही व्यावहारिक सामरिक नीति अपनाई। राजराज चोल ने अपने युवराज राजेन्द्र चोल के नेतृत्व में 9 लाख सैनिकों को सीधे कल्याणी के चालुक्य राज्य की दक्षिणी सीमा पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। होट्टूर अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजेन्द्र चोल ने क्रमशः सान्तलिगे, बनवासी, कादम्बलिगे तथा कोगली, ऊकल्लु आदि प्रदेशों को जीत लिया। विजय के अतिरिक्त राजेन्द्र चोल ने कल्याणी के वैभव एवं धन–जन को गम्भीर क्षति पहुँचाई। कल्याणी पर पड़ते दबाव के कारण सत्याश्रय को अपने सैन्य अभियान को बीच में ही छोड़ कर राजधानी की ओर लौटना पड़ा एवं बड़ी ही कठिनाई से उसने राजेंद्र चोल को तुंगभद्रा नदी से पीछे हटने के लिए विवश कर दिया। तंजोर–अभिलेख से ज्ञात होता है कि इन युद्धों मे विजित विपुल संपत्ति को तंजौर के शिव मंदिर को भेंट कर दिया। वेंगी को सुरक्षित करने के पश्चात् राजेंद्र चोल ने कलिंग प्रदेश पर आक्रमण कर उसे भी चोल साम्राज्य में मिला लिया।

राजराज चोल प्रथम ने अपने सीमावर्ती राज्यों पर विजय के पश्चात् अपने सामरिक अभियान को दक्षिण पूर्वी एशिया देशों की ओर बढ़ाया। संभवतः इसका कारण चोलों की साम्राज्यवादी नीति के साथ–साथ दक्षिण

पूर्वी एशिया देशों से होने वाले व्यापारिक लाभ पर भी अपना अधिकार करना रहा होगा। तिरुवालंगाडु–अभिलेख से राजेंद्र प्रथम के दक्षिण पूर्वी एशिया देशों पर किए गए अभियानों का पता चलता है। अपने शक्तिशाली नौसेना की सहायता से राजराज प्रथम ने बंगाल की खाड़ी को पार कर श्रीविजय (पालेमवंग), कटाह (कोडा) तथा मलाया (मलय) आदि द्वीपीय राज्यों को जीत कर चोल–साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। अभिलेखीय वृत्तान्तों में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि राजराज ने 12000 द्वीपों पर अधिकार किया था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह दक्षिण पूर्वी राज्यों पर विजय कि अतिरंजित व्याख्या ज्यादा है।

राजराज प्रथम ने जिस विखण्डित चोल साम्राज्य को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था, उसे इसने अपने सामरिक विजयों के माध्यम से उत्तर में तुंगभद्रा से लेकर सम्पूर्ण दक्षिण भारत तक विस्तृत कर दिया एवं शासनकाल के अंतिम वर्षों मे इसका विस्तार मालदीव द्वीप समूहों तक फैल गया । राजराज प्रथम एक महान् विजेता एवं साम्राज्य–निर्माता होने के साथ ही श्रेष्ठ प्रशासक भी था, इसने अपने विशाल साम्राज्य की भूमि को पैमाईश तथा सर्वेक्षण कराकर स्वस्थ स्वायत्तशासी लोकप्रशासन को दिशा प्रदान की। इसके अतिरिक्त उसने अपने सामरिक अभियानों को ध्यान में रखते हुए एक शक्तिशाली सेना एवं सुसज्जित सशस्त्र जहाजी बेड़े को संगठित किया, जिसके परिणामस्वरूप उसने मलय, श्रीविजय एवं अरब सागर के तटीय देशों के साथ मजबूत व्यापारिक सम्बन्धों की नींव रखी।

धार्मिक दृष्टि से राजराज प्रथम शैव–धर्मावलम्बी था, इसके साथ ही साथ वह अन्य धर्मों के प्रति भी पूर्ण सहिष्णु था।इसके शासनकाल मे कृष्ण–मुरलीधर तथा विष्णु–पद–चिन्ह अंकित सिक्के जारी किए गए, साथ ही उसने शैलेन्द्र नरेश श्रीमारविजयोतुङ्गवर्मन् को चूड़ामणि नामक बौद्ध–विहार के निर्माण के लिए आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया था। उसने स्वयं 'शिवपादशेखर' की उपाधि धारण की थी। तंजौर का विशाल 'राजराजेश्वर मन्दिर' अथवा बृहदीश्वर शिव–मन्दिर, द्राविड़–वास्तु एवं स्थापत्य–शिल्प का जो उदाहरण प्रस्तुत करता है उसका श्रेय राजराज प्रथम को जाता है। यह मंदिर द्राविड़ियन चोल मन्दिर वास्तु कला

शैली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। एक शक्तिसम्पन्न एवं पराक्रमी शासक होने के साथ ही साथ राजराज प्रथम, विद्यानुरागी, एवं कलाविद् भी था, उसने रविकुलमाणिक्य, मुम्मडिचोलदेव, तेलंग–कुल–काल, चोड़मार्तण्ड, केरलानाथ, जयगोंड आदि उपाधियाँ धारण की थी।

बोध प्रश्न 2. राजराज प्रथम कि विजयों एवं उपलब्धियों कि व्याख्या करें।

.....

13.2.3 राजेंन्द्र चोल (1012–1044 ई०)

राजेन्द्र प्रथम ने अपने पिता राजराज प्रथम के पश्चात् चोल नरेश के रूप मे सत्ता संभाली, वह निश्चित तौर पर एक योग्य पिता का योग्यतम पुत्र था। पहले युवराज एवं चालुक्यों के विरुद्व युद्ध मे उसने अपने कौशल एवं योग्यता का प्रदर्शन किया था। राजराज प्रथम से उत्तराधिकार मे उसे एक सुकेन्द्रित सेना एवं प्रशासन प्राप्त हुआ था, जिसे उसने अपने 33 वर्षों के शासन काल में ना केवल अक्षुण्ण बनाए रखा अपितु इसके काल में चोल सत्ता का सर्वांगीण विकास हुआ। 1014 ई० में राजेन्द्र प्रथम ने वास्तविक शासक के रूप में चोल सत्ता संभाली। राजेन्द्र प्रथम चोल ने चोल–साम्राज्य की सीमा का विस्तार कर न केवल उस समय के तत्कालीन भारतीय राज्यों में सर्वाधिक शक्तिशाली एवं वैभवसम्पन्न बना अपितु, दक्षिणी–पूर्वी–एशिया के द्वीप समूहों पर अधिकार कर एक अंतर्देशीय साम्राज्य कि स्थापना की।

तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों एवं करेंडे दानपत्रों से राजेन्द्र प्रथम के सामरिक अभियानों की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है, अपने युवराजत्व काल में ही इसने चालुक्य नरेश सत्याश्रय को पराजित करके बलपूर्वक रामचूर, बनवासी, हैदराबाद, मान्यलेट और रट्टपाडि आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों से ज्ञात जानकारी के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लगभग 1007 ई० चालुक्य नरेश सत्याश्रय ने चोलों के उत्तर तरफ के अभियान को रोक दिया था । संभवतः 1008 ई० मे

पुनः राजेन्द्र प्रथम ने अपने सामरिक अभियान के तहत इन क्षेत्रों पर पुनः विजय प्राप्त की जिसका संदर्भ हिट्टूर अभिलेख से प्राप्त होता है ।

राजेन्द्र प्रथम ने अपने शासनकाल के छठे वर्ष अर्थात् 1018 ई० में केरल राज्य पर आक्रमण किया जिसका उल्लेख तिरुवालंगाडु ताम्रपत्रों से प्राप्त होता है जिसमे वर्णित है कि निर्भीक एवं पराक्रमी मधुरान्तक राजेन्द्र प्रथम ने सह्य पर्वत की दुर्गम श्रेणियों को लॉधते हुये विशाल चोल सेना के साथ केरल राज्य पर आक्रमण कर केरल के शासक एवं उसके सहयोगी राजाओं को पराजित किया । अपने इसी अभियान के क्रम में सम्भवतः इसी वर्ष उसने पाण्ड्य राज्य पर भी आक्रमण किया था, एवं विजय के पश्चात केरल एवं पाण्ड्य राज्यों पर शासन के लिए अपने पुत्र को राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया ।

राजेन्द्र प्रथम ने अपने शासनकाल के पांचवे वर्ष मे ईलमंडलम(लंका) पर विजय प्राप्त की थी । तिरुवालगाडु ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि इससे पहले राजराज प्रथम ने भी सिंहल द्वीप पर आक्रमण कर उस पर विजय प्राप्त की थी, जिसका उल्लेख करते हुए अभिलेखकार ने इस विजय को श्रीरामचन्द्र के सदृश साहसी एवं महापराक्रमी बताया है । महावंश से ज्ञात होता है कि राजेन्द्र प्रथम ने सिंहल–देश के शासक महिंद (महेन्द्र) पंचम् के शासनकाल के 36वें वर्ष में आक्रमण किया था । चोल अभिलेखों में स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होता है कि राजेन्द्र प्रथम चोल ने लगभग सम्पूर्ण ईलमन्डल (सिंहल राज्य) पर अधिकार कर वहाँ शासन सत्ता की स्थापना की। सिंहल विजय के पश्चात राजेन्द्र प्रथम ने वहां के शासक महिन्द (महेन्द्र) पन्चम् को अपने कारागृह मे लगातार 12 वर्ष तक रखा एवं अपने सम्भवतः इसी बन्दीगृह में 1029 ई० में सिंहल नरेश की मृत्यु हो गई।

चोल नरेशों के प्रशस्ति–पत्रों से ज्ञात होता है कि राजेन्द्र चोल ने अपने पुत्र विक्रम चोल को उत्तरी–पूर्वी भारतीय राज्यों पर अभियान के लिए भेजा। विक्रम चोल के उत्तरी–पूर्वी भारतीय राज्यों के ऊपर सामरिक अभियानों के उद्देश्य को संदर्भ में बी० वेंकैय्या का मानना है इस सामरिक अभियान का उद्देश्य राजनीतिक विजय न होकर धार्मिक उदेश्य से प्रेरित था । यद्यपि इस मत को पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता क्योकि इन अभियानों से निश्चित तौर पर चोल साम्राज्य को आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ । फिर भी यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि इस अभियान ने उत्तर एवं दक्षिण के मध्य सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत किया एवं समन्वयवादी संस्कृति को बढ़ावा दिया । विक्रम चोल ने अपनी विशाल हस्ति सेना के साथ क्रमशः कलिंग, (उड़ीसा) बस्तर (पूर्वी मध्य प्रदेश कर एक सम्भाग) इन्द्ररथ तथा दक्षिणी कोसल आदि राज्यों विजय प्राप्त कर ली। इसके अतिरिक्त अपने सैन्य अभियान को आगे बढ़ते हुए विक्रम चोल ने दण्डमुक्ति के शासक धर्मपाल, दक्षिणीराठ के राजा रणसूर, पूर्वी–बंगाल के नरेश गोविन्दचन्द्र तथा गंगा नदी पार करके पाल राज्य के शासक महीपाल को पराजित किया।

तिरुवालंगाडु ताम्रपत्र अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इन सामरिक विजयों को आगे बढ़ते हुए विक्रम चोल ने चोल–सेना सहित गंगानदी में स्नान किया एवं अपने पिता राजेन्द्र प्रथम के आदेश का पालन करते हुए गंगा के पावन जल को राजधानी लेकर गया, जहां इसे संग्रहीत किया गया और जिससे समस्त चोल साम्राज्य को पवित्र कर दिया । नीलकण्ठ शास्त्री का मत है कि विक्रम चोल द्वारा पराजित बंगाल का तत्कालीन शासक पालवंशीय शासक न होकर कोई स्थानीय शासक था। संभवतः उक्त पालवंशीय शासक महीपाल, महान् पालवंशीय नृपतिगणों का कोई निकटस्थ सम्बन्धी रहा होगा।

राजेन्द्र प्रथम ने विक्रम चोल द्वारा लाये गए गंगाजल को अपनी राजधानी गंगैकोंण्डचोलपुरम् के 'चोलगंग' नामक नवनिर्मित तडाग में एकत्र करवाया था, एवं इस महत्वपूर्ण अवसर पर उसने 'गंगैकोंडचोल' की उपाधि धारण की। उसने इसी नवनिर्मित तडाग के चारों तरफ अपनी राजधानी–गंगकोण्डचोलपुरम् का कलात्मक संवर्धन कराया।

राजेंद्र चोल ने अपनी विजयों के माध्यम से चोल साम्राज्य को गंगा से लेकर सिंहल द्वीप तक विस्तृत किया, इसके अतिरिक्त बंगाल की खाड़ी से आगे बढ़कर जावा, सुमात्रा, एवं मलय प्रायद्वीप तक उसने चोल वंश के प्रभुत्व की स्थापन की। इसके काल में चोल वंश का वैभव अपने सर्वोच्च शिखर तक पहुंचा। अपनी सैन्य विजयों के अतिरिक्त उसने कई सारे सृजनात्मक कार्य किए जिसके अंतर्गत उसने सिचाई के लिए उसने सोलह मील लंबा एक भव्य तालाब खुदवाया था। उसके वैदिक साहित्य के अध्ययन के लिए एक विशाल विद्यालय की भी स्थापना कारवाई।

बोध प्रश्न 3. राजेंद्र चोल के विजयों एवं उपलब्धियों कि व्याख्या करें।

.....

राजाधिराज (1044–1052 ई०),

राजेंद्र चोल के पश्चात् उसका पुत्र राजाधिराज जो 1018 ई० से ही युवराज के रूप में अपना दायित्व संभाल रहा था, चोल सत्ता पर आसीन हुआ। राजाधिराज ने अपने पिता की विस्तारवादी नीति का पालन करते हुए, पाण्ड्य, केरल तथा सिंहल के विदोह को बुरी तरह से दबा दिया। वेंगी के तत्कालीन शासक सोमेश्वर के पुत्र विक्रमादित्य को पराजित कर चालुक्यों की राजधानी कल्याणी को आक्रांत किया, एवं इस उपलक्ष्य में उसने 'विजयराजेन्द्र' की उपाधि धारण की। किन्तु यह विजय स्थायी साबित नहीं हो सकी एवं सोमेश्वर के नेतृत्व में चालूक्यों ने पुनः आक्रमण किया एवं कोप्पम के युद्ध में (1052–53 ई०) राजाधिराज लड़ता हुआ मारा गया। यद्यपि अंततः उसके भाई राजेन्द्र द्वितीय ने सोमेश्वर को परास्त कर युद्ध–क्षेत्र में ही अपना अभिषेक किया।

राजेन्द्र द्वितीय (1052–1064 ई०) शासन काल में भी चोल–चालुक्य संघर्ष चलता रहा। चालुक्य शासक सोमेश्वर ने वेंगी की गद्दी पर शक्तिवर्मन् द्वितीय को बैठाया एवं दूसरी तरफ से अपने पुत्रों विक्रमादित्य तथा

जयसिंह को चोल राज्य पर आक्रमण करने को भेजा। यद्यपि सोमेश्वर को इस युद्ध मे असफलता मिली एवं वह दोनों ही मोर्चा पर बुरी तरह असफल रहा।

राजेन्द्र द्वितीय के पश्चात् वीर राजेन्द्र (1064–1070 ई0) राजा हुआ। इसके शासन काल में भी चोल–चालुक्य संघर्ष चलता रहा। इसने अपने शासन कल में दो बार सोमेश्वर द्वितीय को पराजित किया एवं अंततः 1068 ई0 में सोमेश्वर प्रथम ने तुंगभद्रा में डूबकर आत्महत्या कर ली। सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी सोमेश्वर द्वितीय ने चोल–चालुक्य संघर्ष जारी रखा, इसके शासन काल में वीर राजेन्द्र ने पुनः आक्रमण कर उसे पराजित किया। इन पराजयों के क्रम में सोमेश्वर द्वितीय का छोटा भाई विक्रमादित्य चोलनरेश वीर राजेन्द्र से जा मिला, जिससे वीर राजेन्द्र ने अपनी पुत्री का विवाह कर उसे वेंगी के राज्य के दक्षिणी भाग की सत्ता सौंप दी। वीर राजेन्द्र के पुत्र अधिराजेन्द्र ने उसके पश्चात् चोल सत्ता संभाली, किन्तु मात्र एक वर्ष के भीतर उसकी अयोग्यता का लाभ लेकर 1070 में पूर्वी चालुक्य वंशी राजेन्द्र ने उसे द्वारा अपदस्थ कर चोल सत्ता पर अधिकार कर लिया।

13.2.4 कुलोत्तुंग प्रथम (1070–1122 ई0)

कुलोत्तुंग प्रथम में पूर्वी चालुक्यों एवं चोल वंश दोनों का ही समिश्रित रक्त था, उसका पिता राजराज चालुक्यों की पूर्वी शाखा से संबन्धित था वहीं उसकी मां राजेंद्र चोल की पुत्री थी। नरेश राजराज का पुत्र था किन्तु उसमें चोल रक्त का मिश्रण था। कुलोत्तुंग प्रथम का शासनकाल संघर्षों का काल रहा एवं शासन काल के अंतिम वर्षों में उसे होयसल एवं काकतीयों का विद्रोह झेलना पड़ा । इसके काल तक सोमेश्वर द्वितीय एवं विक्रमादित्य षष्ठ के परस्पर संघर्ष के कारण कल्याणी का पश्चिमी–चालुक्य राज्य दो भागों में विभक्त हो चुका था । जिसमे वेंगी का शासक विक्रमादित्य षष्ठ कुलोत्तुंग प्रथम का विरोधी था। अतः सोमेश्वर द्वितीय ने अपने भाई विक्रमादित्य षष्ठ के विरुद्ध चोल नरेश कुलोत्तुंग प्रथम से सन्धि कर ली। कुलोत्तुंग ने 1075–76 ई० में विक्रमादित्य षष्ठ पर आक्रमण कर उसे पराजित कर गंगावाड़ी क्षेत्र पर

अधिकार कर लिया, इसका उल्लेख कलिंगत्तुपराणि तथा विल्हणविरचित 'विक्रमांकदेवचरित' में भी मिलता है।

वेंगी की कमजोर सत्ता का लाभ उठाकर कलचुरि नरेश यशः कर्णदेव ने अपना साम्राज्य विस्तार किया था जिसका उल्लेख कलचुरि–अभिलेखों से प्राप्त होता है। कुलोत्तुंग प्रथम ने सम्भवतः 1075–76 ई० में कलचुरि शासक यशःकर्णदेव को पराजित कर पुनः वेंगी राज्य को कलचुरियों से मुक्त कर वेंगी को अपने अधीन कर लिया।

सामरिक रूप से दक्षिणी–कलिंग राज्य वेंगी का आधिपत्य बनाये रखना बहुत आवश्यक था । 1064 ई० में दक्षिणी–कलिंग राज्य ने स्वयं को वेंगी से पृथक् कर अपनी स्वतंत्र सत्ता घोषित कर दी थी । संभवतः इसी कारण चोल नरेश कुलोत्तुंग प्रथम ने दक्षिणी कलिंग पर आक्रमण कर उसे पूर्ववत् वेंगी राज्य के अधीन विवश कर दिया।

कुलोत्तुंग प्रथम के सत्ता मे आने के बाद प्रारम्भिक वर्षों में सिंहल (श्रीलंका) शासक विजयबाहु ने विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। सिंहली बौद्ध–महाकाव्य 'महावंश' से ज्ञात होता है कि कुलोत्तुंग प्रथम ने उक्त विद्रोह को दबाने के लिए कई प्रयास किए अंततः असफल होने पर उसने सिंहल नरेश से मैत्री–सम्बन्ध स्थापित कर लिया। अपने मैत्री–सम्बन्ध को सुदृढ़ आधार देने के लिए उसने अपनी पुत्री का विवाह वहाँ के राजकुमार के साथ कर किया। अपने पुत्र विक्रम चोल जो वेंगी राज्य का तत्कालीन शासक था, को 'युवराज' पद पर अभिषिक्त करने के लिए कुलोत्तुंग प्रथम ने चोल राजधानी 'गंगैकोडचोलपुरम्' में बुला लिया। जिसके कारण यहाँ अराजकता फैल गयी जिसका लाभ उठाकर तत्कालीन चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ ने वेंगी पर आक्रमण कर उसके अधिकांश भू–भागों पर अधिकार कर लिया। चालुक्य–आधिपत्य कि पुष्टि अभिलेखों से भी होती है, कुलोत्तुंग प्रथम के शासन के 49वें वर्ष के लेख यहाँ से प्राप्त होते है जबकि इसके पश्चात उसके उत्तराधिकारी पुत्र विक्रम चोल के अभिलेख 1127 ई० तक इस भू–भाग से प्राप्त नहीं होते हैं। अतः इस भूभाग पर इस काल में चालुक्य–आधिपत्य की सम्भावना को इन्कार नहीं किया जा सकता है।

कुलोत्तुंग प्रथम के शासन काल मे अंतिम वर्षों मे होयसल नरेश विष्णुवर्द्धन् ने चोल राज्य पर आक्रमण कर गंगवाड़ी, नोलम्बवाड़ी, तलकाड प्रदेश एवं धुर दक्षिणी भारत में स्थित रामेश्वरम् क्षेत्र तक सामरिक अभियान कर महत्वपूर्ण चोल शासित प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। होयसल विष्णुवर्द्धन ने तलकाड प्रदेश पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् 'तलकाडुकोंड' की उपाधि धारण की। 1117 ई० में काकतीय शासक प्रोल ने भी स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर कल्याणी के चालुक्यों की अधीनता स्वीकार कर ली।

कुलोत्तुंग प्रथम एक कुशल एवं पराक्रमी शासक था, उसने 1120 ई० तक अर्थात् 52 वर्ष की दीर्घ अवधि तक शासन किया। एक कुशल शासक होने के साथ ही साथ उसने भूमि–प्रशासन एवं कर–निर्धारण में कई महत्वपूर्ण प्रयोग भी किए एवं एक लाभकारी प्रणाली लागू की। उसने चिदम्बरम् के मंदिर एवं श्रीरंगम की समाधि का पुनरुद्वार कराया। कुलोत्तुंग प्रथम ने नवीन स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन किया, जिनपर 'कटै कोंडचोलन्' तथा 'मलैनडुकोंडचोलन्' आदि कुलोत्तुंग प्रथम द्वारा धारण की गई उपाधियाँ अंकित की गई।

13.2.5 परवर्ती शासक एवं पतन

कुलोत्तुंग प्रथम की मृत्यु के उपरान्त 1120 ई० में विक्रमचोल राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने 1126–27 ई० चालुक्य शासक सोमेश्वर तृतीय को पराजित कर वेंगी राज्य पर अधिकार कर लिया। साथ ही उसने होयसलों को पराजित कर गंगवाड़ी राज्य के कोलार क्षेत्र को भी चोल राज्य में मिला लिया।

विक्रमचोल के पश्चात् कुलोत्तुंग द्वितीय(1133–1150ई.) राजसिंहासन पर आसीन हुआ। इसका शासन काल शांतिपूर्ण रहा। वह शैवधर्मानुयायी था, एवं अपनी कट्टरता के कारण उसने नटराज मन्दिर के गोविन्दराज (विष्णु) की प्रतिमा को समुद्र में फिकवा दिया था। इसके काल में 'पेरियपुराणम्' के लेखक शेक्किलार तथा ओत्तक्कुत्तन, कम्बन जैसे महान् रचनाकारों को राजकीय संरक्षण प्राप्त था।

कुलोत्तुंग द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र राजराज द्वितीय (1150–1173 ई०) में चोल शासक बना। इसके शासन काल मे पाण्ड्य राज्य मे उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष प्रारम्भ हुआ, संभवतः जिसमे कुलशेखर

पाण्ड्य ने चोल नरेश से सैनिक सहायता की मांग की एवं जिसके परिणामस्वरूप इनके मध्य मैत्री–सम्बन्ध स्थापित हो गया । इसके शासनकाल में होयसलों एवं कोयू ने चोलों से कोलार, कोनू तथा कोयम्बटूर आदि अपहृत कर लिया। इसने 1173 ई० तक राज्य किया।

1173 ई० में राजाधिराज द्वितीय चोल शासक बना, इसके काल में कलचुरि–नरेश सोमेश्वर सोविदय ने पराजित करक चोल–शासित आन्ध्रप्रदेश के अधिकांश भू–भाग को जीत लिया। 1179 ई० में कुलोत्तुंग तृतीय चोल–सिंहासन पर बैठा। इसके काल में भी उसके 1190 तथा 1194 ई० के मध्यकाल के अभिलेखों की सूचनानुसार उसने सर्वप्रथम कोंगूदेश के विद्रोहों को शान्त किया।

कुलोत्तुंग तृतीय के शासनकाल में भी पाण्ड्य राज्य मे उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष हुआ, जिसमे विक्रमपाण्ड्य की सामरिक एवं सैनिक सहायता चोल नरेश कुलोत्तुंग तृतीय ने की। विक्रमपाण्ड्य ने चोलसेना की सहायता से राजधानी मदुरा नगर को जीत लिया तथा पाण्ड्य शासक बन गया। कुलोत्तुंग तृतीय ने अपनी इस विजय के उपलक्ष्य में राजधानी मदुरा में एक विजय स्तम्भ निर्मित करवाया। अपनी सामरिक विजयों के क्रम में कुलोत्तुंग तृतीय ने होयसल, बाण, चेर, गंग, काडव, मलैयान आदि राज्यों पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया।

कुलोत्तुंग तृतीय के शासन काल के पश्चात् चोलों का तेजी से पतन हुआ। इसके पश्चात् राजराज तृतीय (1216–1246 ई०) शासक बना। अनेक सामंतों ने स्वयं को स्वतंत्र कर लिए पाण्ड्य, होयसल एवं काकतीय, तेलुगूचोड, देवगिरि के यादव आदि राजवंशों ने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कर ली। पाण्ड्यशासक सुन्दरपाण्ड्य से युद्ध मे पराजय के परिणामस्वरूप राजराज तृतीय की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा एवं उसे होयसल शासक सोमेश्वर के राजदरबार में जाकर शरण लेनी पड़ी। अंततः होयसलों ने चोल साम्राज्य के विशाल भू–भाग पर अधिकार कर चोल नरेश को अपने अधीन शासन करने के लिए धीरे–धीरे विवश कर दिया।

राजराज तृतीय के उपरान्त 1246 ई० में राजेन्द्र तृतीय (1246–1279ई.) चोल–राजसिंहासन पर बैठा। इसने प्रारम्भिक तौर पर पाण्ड्य शासक एवं होयसलों के विरुद्ध सफलता हासिल की, किन्तु अंततः होयसल नरेश ने पाण्ड्य–शासक सुन्दरपाण्ड्य के साथ मिलकर उसपर आक्रमण कर दिया। जिसमे राजराज तृतीय पराजित हुआ एवं पाण्ड्य शासक ने उसे अपने अधीन सामंत शासक के रूप मे शासन करने के लिए बाध्य कर दिया फलतः लगभग 400 वर्षों के लंबे समृद्धशाली शासन के पश्चात् चोल–शासित तमिलनाडु प्रदेश पर शक्तिशाली पाण्ड्य राज्य की प्रभुसत्ता स्थापित हो गई।

बोध प्रश्न 4. कुलोत्तुंग प्रथम के विजयों एवं उपलब्धियों कि व्याख्या करें। साथ ही चोल वंश के पतन पर संक्षेप मे व्याख्या करें।

.....

13.3 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

उत्तर– उपभाग देखें 12.2 एवं 12.2.1

बोध प्रश्न 2.

उत्तर– उपभाग देखें 12.2.2

बोध प्रश्न 3.

उत्तर– उपभाग देखें 12.2.3

बोध प्रश्न 4.

उत्तर– उपभाग देखें 12.2.4 एवं 12.2.5

13.4 सारांश

चोल राजवंश, अपने विशाल शासनकाल और बहुमुखी उपलब्धियों के साथ, दक्षिण एशियाई इतिहास की आधारशिला बना हुआ है। चोलों ने न केवल सैन्य शक्ति का प्रयोग किया बल्कि सांस्कृतिक और प्रशासनिक प्रतिभा का एक दुर्लभ संगम भी प्रदर्शित किया। हिंद महासागर में चोल नौसेना के वर्चस्व ने व्यापार विकास और सांस्कृतिक प्रसार को सुविधाजनक बनाया, जिससे क्षेत्रीय गतिशीलता पर अमिट प्रभाव पड़ा। उनके प्रशासनिक नवाचार, जैसे विकेंद्रीकृत स्थानीय शासन प्रणाली, ने एक दूरदर्शी दृष्टिकोण का प्रदर्शन किया जिससे उनके शासन सिद्धांतों का अनुमान लगाया जा सकता है । जब हम चोल राजवंश पर विचार करते हैं, तो हम इसे एक गतिशील सभ्यता के रूप में पहचानते हैं जो नवाचार, कलात्मक अभिव्यक्ति और एक विश्वव्यापी विश्वदृष्टि पर पनपी थी। चोल युग को साहित्य के स्वर्ण युग की विशेषता थी, जिसमें कंबन और जयमकोंडार जैसे साहित्यिक दिग्गजों ने उत्कृष्ट कृतियों का योगदान दिया जो आज भी कायम हैं। इसकी विरासत प्रेरणा के स्रोत के रूप में कार्य करती है, जो हमें चोल इतिहास की समृद्ध परंपरा में गहराई से उतरने और भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक विरासत में चोलों के स्थायी योगदान की सराहना करने के लिए बाध्य करती है।

13.5 शब्दावली

- ईलमंडलम्–सिंहल राज्य(श्रीलंका)
- कांडलूर–त्रिवेन्द्रम्
- श्रीविजय–पालेमवंग(वर्तमान इंडोनेशिया में अवस्थिस्त)
- मलाया –आधुनिक मलेशिया एवं उसका सीमावर्ती क्षेत्र
- मलयनाड–आधुनिक कर्नाटक का कुर्ग जनपद

13.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कराशिमा, नोबोरु (संपादित) 2017. ए कंसाइज हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडियाः इसूज एण्ड इंटरप्रिटेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
2. दुबे, एच. एन. 2019. दक्षिण भारत का बृहद इतिहास, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. महालिंगम, टी. वी. 1955. साउथ इंडियन पॉलिटी, मद्रास विश्वविद्यालयः मद्रास।
4. शास्त्री, के. ए. नीलकंठ 1958. हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडियाः फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टाइम्स द फॉल ऑफ़ विजयनगर एंपायर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
5. शास्त्री, के. ए. नीलकन्ठ, (1975), द चोलास मद्रास यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास प्रेस।
6. श्रीवास्तव, बलराम 2004. दक्षिण भारत, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

इकाई 14—मुस्लिम आक्रमण

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति

14.3 महमूद गजनवी का भारत पर आक्रमण

- 14.3.1 महमूद गजनवी के आक्रमण के कारण
- 14.3.2 महमूद गजनवी का मूल्यांकन
- 14.3.3 अलबरूनी का भारत विवरण

14.4 सारांश

14.5 शब्दावली

14.6 बोध प्रश्न

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

यामिनी वंश को प्रायः गजनवी–वंश के नाम से जाना जाता है, यह ईरान के शासकों की एक शाखा थी। अरब आक्रमणों के अवसर पर इस वंश के व्यक्ति तुर्किस्तान भाग गये, जहाँ वे तुर्कों के साथ इतने घुल–मिल गये कि उनके वंशज तुर्क कहलाये। अलप्तगीन ने इस वंश का एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया और उसने 963 ई॰ में अमीर अबूबक्र लाविक से जाबुलिस्तान तथा उसकी राजधानी गजनी को छीन लिया। उस समय से गजनी उस देश के राज्य की राजधानी बन गया। इस समय भारत के उत्तर–पश्चिम में हिन्दुशाही राज्य था, जिसका विस्तार हिन्दुकुश पर्वतमाला तक था और जिसने काबुल को तुर्कों से पुनः छीन लिया था। इस कारण गजनी और हिन्दुशाही राज्य की सीमाएँ एक–दूसरे से टकराने लगी थीं। अलप्तगीन के समय से इन राज्यों में छुटपुट युद्ध शुरू हो गये। अलप्तगीन की मृत्यु 963 ई॰ में हुई। कुछ समय पश्चात सुबुक्तगीन ने गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। आरम्भ में सुबुक्तगीन अलप्तगीन का गुलाम रहा था। परन्तु बाद में वह उसका दामाद भी बना। वह साहसी और योग्य था। धीरे–धीरे उसने बस्त, दवार, कुसदार, बामियान, तुर्किस्तान और गोर को जीत लिया। उसने हिन्दुशाही राज्य की सीमाओं पर आक्रमण करने शुरू किये और निकट के कई किलों एवं नगरों को जीत लिया। 997 ई. में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गयी। मरने से पहले उसने अपने छोटे पुत्र इस्माइल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उसके बड़े पुत्र महमूद ने 998 ई. में अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लिया । यह वही महमूद गजनवी था, जिसने भारत पर निरन्तर आक्रमण किये और तुर्कों की भारत विजय के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

महमूद गजनवी का जन्म 1 नवम्बर, 971 ई. को हुआ था। उसने पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की थी और अपने पिता के समय में ही अनेक युद्धो में भाग लिया था। 998 ई. में 27 वर्ष की आयु में वह अपने पिता के राज्य का वारिस बना। इतिहासकारों ने मुस्लिम इतिहास में महमूद को प्रथम सुल्तान माना है, यद्यपि कि उसके सिक्कों पर सिर्फ 'अमीर महमूद' अंकित किया गया था। परन्तु महमूद अपनी विजयों के कारण सुल्तान के पद के योग्य था। प्रारम्भ में महमूद ने अपनी शाक्ति को हिरात, बल्ख तथा बस्त में दृढ़ किया और खुरासान की विजय किया। बगदाद के खलीफा अल–कादिर बिल्लाह ने 999 ई. में इन प्रदेशों पर उसके अधिकार को स्वीकार कर लिया और उसे 'यमीन–उद–दौला' तथा 'आमीन–उल–मिल्लाह' की उपाधियाँ दी। यह कहा जाता है कि इसी अवसर पर उसने भारत पर प्रत्येक वर्ष आक्रमण करने की शपथ ली ।

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में महमूद गजनवी के भारत पर किए गए आक्रमणों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही साथ तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति की जानकारी भी प्रदान की गयी है। महमूद गजनवी के साथ आए विद्वान अलबरूनी के भारत विवरण पर भी विस्तृत चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि–

- महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण के कारण क्या थे?
- महमूद गजनवी ने भारत पर इतनी बार आक्रमण क्यों किया?
- महमूद गजनवी के आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?

14.2 तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति

भारत उस समय राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न राज्यों में बँटा हुआ था। उनमें से कुछ राज्य शक्तिशाली भी थे। परन्तु उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा उनकी मुख्य दुर्बलता थी, जिसके कारण वे विदेशी शत्रु का मुकाबला मिलकर न कर सके। मुल्तान और सिन्ध में दो मुस्लिम राज्य थे। हिन्दुशाही राज्य चिनाब नदी से हिन्दूकुश पर्वतमाला तक फैला हुआ था। जयपाल उसका साहसी, बहादुर और दूरदर्शी शासक था। पड़ोस के गजनी राज्य को समाप्त करने के लिए उसने आक्रमणकारी नीति का पालन किया, यद्यपि वह उसमें सफल नहीं हुआ। महमूद के आक्रमणों का प्रथम और दृढ़तापूर्वक मुकाबला इसी राजवंश ने किया। उस समय कश्मीर में ब्राम्हण वंश का राज्य था और उसकी राजी दिद्दा थी। हिन्दुशाही राज्य से उसके पारिवारिक सम्बन्ध थे। कन्नौज में प्रतिहार वंश का राज्य था। वत्सराज और नागभट्ट के समय में यह राज्य पर्याप्त शक्तिशाली था। परन्तु दक्षिण–भारत के राष्ट्रकूट शासकों तथा उत्तर–भारत के पड़ोसी राज्यों से उसका निरन्तर संधर्ष रहा, जिससे 11वीं सदी के आरम्भ तक यह राज्य दुर्बल हो गया। उसके सामन्त बुन्देलखण्ड के चन्देल, मालवा के परमार और गुजराज के चालुक्य उसके आधिपत्य से मुक्त हो गये। इस वंश का अन्तिम राजा राज्यपाल था, जिसके समय में इस राज्य पर महमूद का आक्रमण हुआ। बंगाल में पाल वंश का राज्य था। इस वंश में महमूद का समकालीन शासक महीपाल प्रथम था। उस समय उसकी शक्ति बहुत दुर्बल थी। उसका राज्य छोटा हो गया था और राजेन्द्र चोल के आक्रमण ने बंगाल को क्षत–विक्षत स्थिति में छोड़ दिया था। दूर होने के कारण वह महमूद के आक्रमण से बच गया। गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड में भी स्वतन्त्र राज्य थे। दक्षिण–भारत में परवर्ती चालुक्य और चोल वंश के शक्तिशाली राज्य थे। इनमें से प्रत्येक राजवंश शक्तिशाली था। परन्तु वे आपस में संघर्षरत थे और उत्तर–भारत की राजनीति में विशेष रूचि नहीं रखते थे। जिस समय महमूद उत्तर–भारत को अपने पैरों के तले रौंद रहा था उस समय भी वे अपने संघर्षो में लगे रहे। भारत के यह सभी राज्य प्रायः राजपूत–वंशों के थे। राजपूतों को प्राणों का मोह न था और न उनमें साहस और शौर्य की कमी थी, परन्तु उनमें

दूरदर्शिता और परिस्थितियों को समझने तथा उनके अनुकूल उठ खड़े होने का सर्वथा अभाव रहा जिसके कारण वे सभी बार–बार महमूद से पराजित होते रहे और अपने धर्म और देश की रक्षा करने में असमर्थ रहे।

सामाजिक दृष्टि से भारत दुर्बल था। जातियों–उपजातियों का विभाजन, स्त्रियों की असहनीय स्थिति और अनैतिक आचार–विचार इस बात के प्रमाण थे। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के अतिरिक्त समाज का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा था, जिसे अन्त्यज पुकारते थे। इन्हें समाज के किसी भी वर्ण में स्थान प्राप्त न था। चमार, जुलाहे, मछली पकड़ने वाले, टोकरी बुनने वाले, शिकारी आदि इस वर्ग में सम्मिलित थे। इनसे भी निम्न स्तर हादी, डोम, चाण्डाल, बधाटू आदि वर्गों का था, जो सफाई और स्वच्छता के कार्यों में लगे हुए थे, परन्तु जिन्हें नगरों और गाँवों से बाहर रहना पड़ता था। वैश्यों तथा शूद्रों को वेद और धार्मिक शास्त्रों को पढ़ने का अधिकार न था। यदि उनमें से कोई ऐसा करता था तो अलबरूनी के अनुसार उसकी जीभ काट ली जाती थी। समाज से पृथक वर्गों की स्थिति का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि उनकी स्थिति वैश्य और शूद्रों से भी निम्न थी। जाति–प्रथा के कारण भारत का समाज ऊँच–नीच की भावना से ही विषाक्त नहीं था, अपितु ऐसे विभिन्न वर्गों में भी बँटा हुआ था जिनमें एक दूसरे के प्रति घृणा की भावना ही पनप सकती थी। जाति–बन्धन उस समय तक कठोर हो गये थे और जाति परिवर्तन और अन्तर्जातीय खान–पान तथा विवाह सम्बन्ध सम्भव नहीं थे। स्त्रियों की स्थिति निरन्तर गिरती जा रही थी और वे पुरूष की भोग्या मात्र बनती जा रही थी। उच्च वर्गों में बहु–विवाह, बाल–विवाह और सती प्रथा प्रचलित हो चली थी और विधवाओं के विवाह सम्भव न थे।

धार्मिक दृष्टि से भी भारत पतनोन्मुख था। हिन्दू और बौद्ध दोनों ही धर्मों में अनाचार प्रवेश कर गया था। धर्म की मूल भावना लुप्त होती जा रही थी और उसका स्थान कर्मकाण्ड ने ले लिया था। वाममार्गी सम्प्रदाय लोकप्रिय होते जा रहे थे, मुख्यतया बंगाल और कश्मीर में । सुरापान, माँस का प्रयोग और व्यभिचार इन वाममार्गी अनुयायियों की धार्मिक क्रियाओं में सम्मिलित थे। इनका प्रभाव समाज के अन्य वर्गों पर भी आ रहा था। बौद्ध–विहार, मठ और हिन्दू मन्दिर अनाचार और भोग–विलास के केन्द्र बन गये थे। मन्दिरों में देवदासियाँ (अविवाहित लड़कियाँ, जो देवताओं की पूजा के लिए रखी जाती थी) भ्रष्टाचार का मुख्य साधन बन गयी थी। ऐसी ही स्थिति बौद्ध–विहारों और मठों की थी। शिक्षा–संस्थाएँ भी इस भ्रष्टाचार से मुक्त न थी। विक्रमशिला के महान विश्वविद्यालय में एक विद्यार्थी के पास शराब की बोतल पायी गयी, जिसके बारें में उसने बताया कि वह उसे एक भिक्षुणी ने दी थी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि उस विद्यार्थी ने अनाचार या दण्ड पाने के योग्य कोई कार्य किया था अथवा नहीं इस प्रश्न को लेकर विश्वविद्यालय के अधिकारियों में परस्पर मतभेद था। धार्मिक और शिक्षा–संस्थाओं में अनैतिकता का प्रवेश समाज की अनैतिकता का कारण और शिक्षितों पर अनैतिकता का प्रभाव देश की दुर्बलता के लिए पर्याप्त

था। धर्म जो सत्कर्म, त्याग, देश–प्रेम और मनोबल की बृद्धि में सहायक हो सकता था, उस समय में अनाचार, भोग–विलास और आलस्य का कारण बना हुआ था।

समाज और धर्म की यह स्थिति भारत की सांस्कृतिक विलासिता का भी कारण थी। कला और साहित्य दोनों ही उस समय की दशा के अनुकूल बन गये थे। स्थापत्य कला, मूर्ति–कला, चित्र–कला आदि सभी में हमें लालित्य और भोगविलास की प्रवृत्ति का आभास होता हैं, यद्यपि इन सभी क्षेत्रों में भारत ने इस काल में प्रगति की थी। साहित्य में 'कुटिनी–मतम' और 'समय–मत्रक' (वेश्या की आत्मकथा) उस समय के साहित्य की प्रतीक मात्र थी। खजुराहो, पुरी आदि के मन्दिर और मूर्तियाँ उस समय की रूचि का प्रतीक थी यद्यपि इस काल में बने हुए मन्दिर, किले, महल आदि अद्वितीय थे और साहित्यिक क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषाओं का उद्‌गम इस काल की अपनी ही विशेषता रहे हैं।

सैनिक दृष्टि से भारत ने अपने शस्त्रों और युद्ध–शैली में सुधार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया था। भारतीय उस समय भी हाथियों पर निर्भर करते थे। तलवार, कटार और भाला उनके मुख्य हथियार थे तथा उनकी युद्ध–शैली रक्षात्मक अधिक आक्रमणकारी कम थी। पश्चिमोत्तर सीमा पर भारतीयों ने न तो किले बनवाये थे और न ही किसी अन्य रक्षा–पंक्ति का निर्माण किया था, जबकि उसी दिशा से आक्रमण का भय था। इस कारण सैनिक दृष्टि से भारत दुर्बल था।

इस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सैनिक दृष्टि से भारत दुर्बल था। उसकी इस दुर्बलता का मुख्य कारण यह था कि भारत ने विदेशों से कुछ सीखने का प्रयत्न नहीं किया था। भारतीयों ने विदेशों के मुख्यतया, अपने सीमावर्ती देशों के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सैनिक परिवर्तनों की ओर ध्यान नहीं दिया। इस कारण उनमें अज्ञानता और दम्भ दोनों भावनाओं की उत्पत्ति हुई और वे अपनी उन्नति के प्रति असावधान हो गये। इस सम्बन्ध में महमूद गजनवी के साथ भारत में आने वाले विद्वान अलबरूनी का विवरण हमारी आँखें खोलने वाला है। अलबरूनी ने हिन्दू–दर्शन, धर्म और संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। हिन्दुओं का यह विचार है कि हमारे जैसा देश, राष्ट्र, धर्म, राजा और विज्ञान संसार में कहीं नहीं है। उसने लिखा है कि हिन्दू यह नहीं चाहते कि जो वस्तु एक बार अपवित्र हो जाये, उसे शुद्ध करके पुनः अपना बना लिया जाय। इस प्रकार अलबरूनी ने हिन्दूओं को संकीर्ण विचारों का बताया यद्यपि कि उसने यह भी लिखा है कि हिन्दुओं के पूर्वज इतने संकीर्ण विचारों के न थे। इस प्रकार भारतीयों ने अपनी प्रगति के मार्ग को स्वयं ही बन्द कर लिया था।

परन्तु भारत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। विस्तृत उपजाऊ भू–प्रदेश और खनिज पदार्थ उसकी सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी थे। विदेशी व्यापार भी अच्छा था, परन्तु आर्थिक सम्पन्नता के साथ–साथ भारत में आर्थिक असमानता भी थी। देश की सम्पत्ति कुछ विशेष वर्गों के हाथों में ही संचित थी। राज परिवार और व्यापारी–वर्ग के अतिरिक्त मन्दिर भी धन के केन्द्र थे। विदेशी आक्रमणकारियों के लिए कुछ

विशेष स्थानों पर संचित यह धन उनके लालच का कारण था और भारत की दुर्बलता उसके लिए एक प्रेरणा । भारत की सम्पत्ति एक दुर्बल व्यक्ति के हाथों की सम्पत्ति के समान थी, जिसको हथियाने के लिए कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति उत्साहित हो सकता था। महमूद गजनवी ने बिल्कुल ऐसा ही किया।

14.3 महमूद गजनवी का भारत पर आक्रमण

भारत की उपर्युक्त परिस्थितियों में महमूद ने भारत पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण 11वीं सदी में आरम्भ हुए। सर हेनरी इलियट ने बताया है कि महमूद ने भारत पर 17 आक्रमण किये, यद्यपि सभी आक्रमणों के बारे में सर्वस्वीकृत प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। तब भी सभी इतिहासकार यह अवश्य मानते हैं कि महमूद ने भारत पर कम से कम 12 आक्रमण अवश्य किये थे। महमूद के आक्रमण 1000 ई. में आरम्भ हुए। पहले उसने सीमावर्ती कुछ किलों को जीता। उसने दूसरा आक्रमण 1001 ई. में किया। इस बार हिन्दुशाही राजा जयपाल ने पेशावर के निकट उसका मुकाबला किया। युद्ध में महमूद की विजय हुई और वह जयपाल की राजधानी वैहिन्द के निकट तक आ गया और वहाँ लूटमार की। राजा जयपाल के गले की हीरों की माला, जो महमूद ने छीन ली उसकी कीमत प्रायः दो लाख दिरहम थी। जयपाल और उसके सम्बन्धियों को महमूद ने 25 हाथी और 250,000 दीनार लेकर मुक्त कर दिया। इस प्रकार बहुत अधिक धन लेकर महमूद भारत से वापस गया। जयपाल ने निरन्तर पराजयों से अपने आपको इतना अधिक अपमानित अनुभव किया कि उसने स्वयं को चिता में जला दिया। उसके बाद उसका पुत्र आनन्दपाल गद्दी पर बैठा ।

1004 ई. में महमूद ने भेरा पर आक्रमण करने का निश्चय किया। भेरा के शासक बाजीराय ने उसका मुकाबला किया, परन्तु परास्त हुआ। 1006 ई. में महमूद मुल्तान पर आक्रमण के लिए आगे बढ़ा। मुल्तान के शिया–सम्प्रदायी करमार्थियों के शासक अब्दुल फतह दाऊद से भी महमूद उतनी ही घृणा करता था, जितनी कि हिन्दुओं से । मार्ग में जयपाल के पुत्र आनन्दपाल ने भेरा के निकट उसका मुकाबला किया। परन्तु उसकी पराजय हुई महमूद ने 1006 ई. में मुल्तान को जीत लिया। दाऊद ने महमूद को 20,000 दिरहम प्रति वर्ष देने का वायदा किया। अपनी उत्तर–पश्चिमी सीमाओं पर तुर्की–आक्रमणकारियों की सूचना पाकर महमूद दाऊद को मुल्तान और अन्य विजित भारतीय क्षेत्रों को नौशाशाह (यह जयपाल का नाती सुखपाल था, जिसे महमूद ने इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था) को देखभाल के लिए देकर वापस चला गया। परन्तु उसके जाने के बाद नौशाशाह और दाऊद ने विद्रोह कर दिया। 1008ई. में महमूद लौटकर वापस आया और उसने नौशाशाह और दाऊद को कैद करके मुल्तान को अपने राज्य में मिला लिया।

मुल्तान के महमूद के हाथों में चले जाने से हिन्दुशाही राजा आनन्दपाल को अपने राज्य पर दो तरफ से आक्रमण का भय हो गया। इस कारण उसने एक विशाल सेना एकत्रित की और पड़ोसी राज्यों से

भी जो सहायता मिल सकी उसे प्राप्त किया। उसके पश्चात् वह अपनी सेना को लेकर पेशावर की ओर बढ़ा। वैहिन्द के निकट 1009 ई. में महमूद ने उसका मुकाबला किया। युद्ध में आनन्दपाल की पराजय हुई। उसका हाथी भाग खड़ा हुआ, उसके साथ ही साथ उसकी सेना भी भाग खड़ी हुई। महमूद ने नगरकोट तक आक्रमण किया और उसे जीत लिया। आनन्दपाल की यह पराजय उसके राज्य और भारत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण थी। हिन्दुशाही राज्य और उसकी शक्ति बहुत सीमित हो गयी और वह महमूद से आक्रामक युद्ध करने की स्थिति में न रहा। आनन्दपाल ने नन्दन को अपनी राजधानी बनाकर अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयत्न किया। परन्तु वह अधिक सफल न हो सका। सिन्ध से नगरकोट तक का सम्पूर्ण भू–क्षेत्र महमूद की अधीनता में चला गया। सिन्ध तथा पश्चिमी पंजाब में मुसलमानों के पैर जम गये। आनन्दपाल ने महमूद से एक सन्धि भी की। उसके पश्चात् उसका पुत्र त्रिलोचनपाल गद्दी पर बैठा। उसके समय में महमूद ने नन्दन को भी अपने अधिकार में कर लिया। त्रिलोचनपाल ने भागकर कश्मीर के राजा से सहायता ली। परन्तु महमूद ने उन दोनों की संयुक्त सेना को परास्त कर दिया। कश्मीर की सीमाओं पर महमूद ने लूटमार अवश्य की, परन्तु उसने कश्मीर में प्रवेश नहीं किया। त्रिलोचनपाल ने शिवालिक की पहाड़ियों में अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया और बुन्देलखण्ड के शासक विद्याधर से मित्रता की। परन्तु 1019 ई. में एक बार फिर महमूद ने उसे परास्त किया। 1021–22 ई. में किसी व्यक्ति ने त्रिलोचनपाल की हत्या कर दी और जिस समय उसका पुत्र भीमपाल राजा बना उस समय उसका राज्य एक राजा का राज्य नहीं अपितु एक सामन्त की जागीर मात्र था। 1026 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। अन्ततोगत्वा हिन्दुशाही राज्य समाप्त हो गया और सम्पूर्ण पंजाब पर महमूद का अधिकार हो गया। इस प्रकार ब्राह्मणवंशीय हिन्दुशाही राज्य एक लम्बे और कठोर संघर्ष के बाद समाप्त हुआ। उस समय में वही एक ऐसा हिन्दू राज्य था, जिसके शासकों ने दूरदर्शिता का परिचय दिया और अपनी तथा भारत की सुरक्षा के लिए आक्रमणकारी नीति को अपनाया, हिन्दुओं का संयुक्त मोर्चा बनाया और मुल्तान के मुसलमानों को भी नवीन विदेशी आक्रमणकारी के विरूद्ध अपने साथ रखने में सफलता पायी। उसके पतन से हिन्दुओं की विदेशियों के विरूद्ध संयुक्त होकर मुकाबला करने की योजना नष्ट हो गयी, पश्चिमोत्तर भारत के प्रवेश–द्वार पर मुसलमानों का अधिकार हो गया और महमूद को भारत में प्रवेश करने तथा अपनी धन–पिपासा को सन्तुष्ट करने का अवसर मिल गया।

हिन्दुशाही राज्य को दुर्बल करने से महमूद को भारत में आगे बढ़ने का अवसर मिल गया। जो धन उसे पंजाब की लूटमार में प्राप्त हुआ था। उसने उसकी धन–लिप्सा को और बढ़ा दिया। नगरकोट की लूट में ही उसे जो धन, वस्त्र और बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं, वह उसकी अपेक्षा से कहीं अधिक थी। इसके अतिरिक्त महमूद को जयपाल जैसा शत्रु भी अन्य स्थानों पर प्राप्त नहीं हुआ। इस कारण बार–बार भारत पर आक्रमण करने की उसकी योजना सफल हो सकी। ऐसा प्रतीत होता हैं कि पेशावर के युद्ध के पश्चात

सम्पूर्ण उत्तर–भारत अपंग हो गया था। महमूद एक के बाद एक नगर और मन्दिरों को लूटता और नष्ट करता गया, भय से भारतीय अपने धन, धर्म, मन्दिरों और नगरों को मुसलमानों को समर्पित करते चले गये और जिसने थोड़ा बहुत विरोध किया, भी वह सफल न हुआ। महमूद वर्षो तक एक भीषण तूफान की भॉति उत्तर–भारत को रौंदता रहा और हिन्दू राज्य तिनकों की भाँति उसके सामने बिखर गये। प्रत्येक देवता की मूर्ति का भंजन, प्रत्येक स्थान की लूटमार, लाखों स्त्रियों का अपमान और लाखों पुरूषों का कत्ल या उनका इस्लाम में परिवर्तन भी हिन्दू भारत को महमूद का मुकाबला करने का आत्मबल और शक्ति प्रदान न कर सका ।

1009 ई. में आनन्दपाल की पराजय के पश्चात् महमूद ने अलवर राज्य में स्थित नारायनपुर नामक स्थान को जीता और लूटा। 1014 ई. में उसने थानेश्वर को लूटा। मार्ग में भेरा के शासक राजाराम ने उससे युद्ध किया, परन्तु उसकी पराजय हुई। सभी मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़कर और नगरों को लूटकर महमूद वापस चला गया। वह प्रसिद्ध चक्रस्वामी की मूर्ति को अपने साथ ले गया, जिसे उसने गजनी के सार्वजनिक चौक में फेंकवा दिया। विश्वास किया जाता है कि दिल्ली के राजा ने पड़ोसी हिन्दू राजाओं से सहायता लेकर महमूद को रोकने का प्रयत्न किया था। परन्तु वह असफल हुआ था और थानेश्वर की रक्षा के लिए कोई हिन्दू सेना नहीं पहुंची थी। 1018 ई. में महमूद कन्नौज राज्य पर आक्रमण करने के लिए आया। शाही वंश का शासक त्रिलोचनपाल पूर्वी पंजाब से भाग खड़ा हुआ और मार्ग के सभी छोटे–छोटे राज्य उसके समक्ष आत्मसमर्पण करते चले गए। मथुरा के निकट महावन में यदुवंश के शासक कुलचन्द्र ने उसका मुकाबला किया, परन्तु परास्त हुआ आगे बढ़कर महमूद ने मथुरा पर आक्रमण किया जो दिल्ली के राज्य में था। मथुरा की रक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया गया था और महमूद ने वहाँ इच्छानुसार लूटमार की। मथुरा हिन्दूओं का महान तीर्थस्थान था और वहां हजारों मंदिर थे। उतबी ने लिखा है कि "महमूद ने एक ऐसा नगर देखा जो योजना तथा निर्माण कला की दृष्टि से अद्‌भुत था। उसके चारों ओर पत्थर के बने हुए एक हजार दुर्ग थे, जिनका प्रयोग मंदिरों की भांति किया जाता था। उसके मध्य में एक सबसे ऊँचा मंदिर था जिसके सौन्दर्य और सजावट का वर्णन करने में न किसी लेखक की लेखनी समर्थ है और न किसी चित्रकार की तूलिका।" उतबी के कथन के अनुसार मंदिरों में सोने और चांदी की हीरो–जवाहरातों से जड़ी हुई हजारों मूर्तियाँ थीं। उनमें से कुछ सोने की मूर्तियाँ पाँच–पाँच हाथ ऊँची थीं, जिनमें से एक में 50,000 दीनार के मूल्य की लाल मणियाँ जड़ी हुई थीं और एक अन्य मूर्ति में एक ऐसा नीलम जड़ा हुआ था, जिसका मूल्य 4,000 मिरकाल था। विभिन्न मूर्तियों के नीचे अतुल धनराशि गड़ी हुई थी, जिसे महमूद ने प्राप्त किया। महमूद ने मथुरा का कोना–कोना लूटा, मंदिरों को तोड़ा, भूमि को खोद–खोद कर धन निकाला, सभी मूर्तियों को तोड़कर धन की तरह से अपने साथ ले गया, नगर को नष्ट कर दिया और अनेक स्त्री पुरुषों का कत्ल कर दिया या गुलाम बना लिया। मथुरा के निकट के उतने ही भव्य स्थान

वृन्दावन का भी यही हाल हुआ और महमूद को वहां से लूट में अपार धन मिला। यहाँ से महमूद कन्नौज गया, जहाँ गुर्जर–प्रतिहार वंश के अंतिम शासक राज्यपाल का शासन था। राज्यपाल बिना युद्ध किए भाग गया और कन्नौज को महमूद ने लूट लिया। उसके पश्चात् महमूद ने कानपुर के निकट मंझावन नामक स्थान पर आक्रमण किया जो ब्राह्मणों के किले के नाम से विख्यात था। 25 दिन तक महमूद किले को न जीत सका, परन्तु उसके पश्चात् किले के स्त्री और बच्चे जल मरे और पुरुष युद्ध में मारे गए। उसके बाद असी के शासक चंद्रपाल और सिरसावा (सहारनपुर के निकट) के शासक चाँदराय ने उसका मुकाबला नहीं किया। मार्ग में अन्य स्थानों पर भी महमूद का कोई मुकाबला नहीं हुआ और विभिन्न स्थानों पर लूटमार करता हुआ महमूद गजनी वापस चला गया।

महमूद के वापस जाने के उपरान्त बुन्देलखण्ड के शासक विद्याधर (गण्ड) ने कुछ हिन्दू राजाओं का एक मित्र संघ बनाया, जिसका मुख्य उद्देश्य कन्नौज के शासक राज्यपाल को सजा देना था। उसकी दृष्टि में राज्यपाल ने मथुरा और वृन्दावन जैसे तीर्थ स्थानों को लूटने वाले महमूद से बिना युद्ध किये भागकर एक बड़ा अपराध किया था। इन राजाओं ने राज्यपाल पर आक्रमण करके उसे मार दिया। महमूद ने विद्याधर को दण्ड देने का निश्चय किया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1019 ई. में वह पुनः भारत आया। हिन्दूशाही राजा त्रिलोचनपाल ने इस बार यमुना नदी के निकट उसका मुकाबला किया। त्रिलोचनपाल साहसी था और इस अवसर पर वह चंदेलों का साथ दे रहा था, परन्तु महमूद ने उसे परास्त कर दिया और वह भाग खड़ा हुआ। वहां से महमूद बरी की ओर बढ़ा, जिसे प्रतिहारों ने कन्नौज की लूट के पश्चात् अपनी राजधानी बना लिया था। राज्यपाल का पुत्र त्रिलोचनपाल (प्रतिहार वंशीय) वहां का शासक था। भय के कारण वह भाग खड़ा हुआ और महमूद ने बरी को धूल में मिला दिया। उसके पश्चात् महमूद अपने मुख्य शत्रु विद्याधर को परास्त करने के लिए बुन्देलखण्ड की सीमा पर पहुंचा (1020–21 ई.)। विद्याधर एक बड़ी सेना के साथ उसका मुकाबला करने के लिए तैयार था। विद्याधर की विशाल सेना को देखकर महमूद को घबराहट हो गई, परन्तु शाम को एकयुद्ध में हिन्दुओं की सेना के एक भाग की पराजय हुई। सम्भवतया किसी अन्य कारणवश अथवा झुटपुट के इस युद्ध की पराजय से विद्याधर साहस खो बैठा और रात को चुपके से भाग निकला। प्रातः काल शत्रु की सेना को सामने न पाकर महमूद को बड़ा आश्चर्य हुआ, विद्याधर का साहस छोड़ देना उसके राज्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। महमूद ने उसके सम्पूर्ण राज्य में लूटमार की और बहुत सी सम्पति लेकर वापस लौट गया, परन्तु विद्याधर की शक्ति तोड़ी नहीं गई थी। 1021–22 में महमूद पुनः वापस आया, मार्ग में ग्वालियर के राजा कीर्तिराज को सन्धि के लिए बाध्य करता हुआ महमूद कालिंजर के किले के सम्मुख पहुंचा। किले का घेरा बहुत समय तक पड़ा रहा, परन्तु उसे जीता न जा सका। विद्याधर ने सन्धि की बात चीत की और महमूद ने उसे स्वीकार कर लिया। महमूद ने विद्याधर को 15 किले इनाम के रूप में दिए, इसके पश्चात् महमूद वापस चला गया।

1024 ई. में महमूद एक विशाल सेना लेकर सोमनाथ पर आक्रमण के लिए आगे बढ़ा। काठियावाड़ (गुजरात) में समुद्र तट पर बना हुआ शिव का यह मंदिर उत्तर–भारत में सबसे अधिक सम्मानित मन्दिर था। लाखों व्यक्तियों की प्रतिदिन की भेंट के अतिरिक्त 10,000 गाँवों की स्थायी आय उसे प्राप्त होती थी। यह मन्दिर एक परकोटे से घिरा हुआ था, आकर और सौन्दर्य की दृष्टि से मंदिर अद्वितीय था और वहां अत्यधिक धन संचित था, हजारों प्रकार के हीरे जवाहरातों से शिवलिंग का छत्र बना हुआ था, स्वयं शिवलिंग बीच अधर में बिना किसी सहारे के लटका हुआ था, 200 मन की सोने की जंजीर से उसका एक घंटा बजाया जाता था, 350 स्त्री और पुरुष शिवलिंग के सम्मुख सर्वदा नाचते रहने के लिए नियुक्त थे, लिंग के भूगर्भ स्थल में अकूत संपत्ति एकत्रित थी और एक हजार पुजारी देवता की पूजा में संलग्न रहते थे। सोमनाथ का शिव मन्दिर अद्वितीय था, परन्तु उसके पुजारियों का दम्भ आश्चर्यजनक था। उनका कहना था कि महमूद ने उत्तर–भारत के देव मन्दिरों को इस कारण नष्ट किया था कि भगवान सोमनाथ उन सभी से असंतुष्ट थे, उन्होंने यह तक गर्वोक्ति की कि महमूद भगवान सोमनाथ को क्षति पहुचाने की शक्ति ही नहीं रखता। पुजारियों का यह दम्भ और मन्दिर की अतुल सम्पति महमूद के आक्रमण का कारण बनी। मुल्तान के मार्ग से महमूद ने काठियावाड़ में प्रवेश किया और मार्ग की साधारण बाधाओं को हटाता हुआ वह 1025 ई. में काठियावाड़ की राजधानी अन्हिलवाड़ पहुँच गया। राजा भीमदेव प्रथम भाग खड़ा हुआ और महमूद ने बिना किसी विरोध के राजधानी को लूटा। उसके पश्चात् महमूद सोमनाथ के मंदिर के निकट पहुँचा। मन्दिर में हजारों हिन्दू–भक्त एकत्र हो गये थे और वे पूरे विश्वास के साथ युद्ध के लिए तत्पर थे। महमूद का पहले दिन का आक्रमण सफल न हुआ, परन्तु दूसरे दिन वह मंदिर की प्राचीर को पार कर गया। युद्ध में 50,000 से अधिक व्यक्ति मारे गये। महमूद ने मंदिरों को पूर्णतया नष्ट कर दिया। उसने छत में लगे हुए चकमक पत्थर को हटा दिया, जिसके कारण शिवलिंग अधर में लटका हुआ था और वह भूमि पर गिर पड़ा। महमूद ने उसे तोड़ दिया, प्रत्येक प्रकार से मंदिर को खोद–खोद कर लूटा गया, अतुल सम्पति लेकर महमूद सिन्ध के रेगिस्तान के रास्ते वापस लौटा। मार्ग में उसके भारतीय मार्गदर्शक ने उसे मार्ग में भटकाकर काफी क्षति पहुचाई, परन्तु अंत में मुल्तान होता हुआ महमूद अपने लूटे हुए खजाने के साथ सुरक्षित गजनी पहुँच गया। सोमनाथ के शिवलिंग के टूटे हुए टुकड़े को उसने गजनी की जामी–मस्जिद की सीढ़ियों में लगवा दिया। जिस समय महमूद सोमनाथ को लूटकर वापस जा रहा था, मार्ग में सिन्ध के जाटों ने उसे तंग किया। जाटों को दंड देने के लिए 1027 ई में महमूद अन्तिम बार भारत आया। जाटों को उसने कठोर दंड दिया, उनकी सम्पत्ति लूट ली गयी और उनकी स्त्रियों एवं बच्चों को दास बना लिया गया। यह महमूद का अन्तिम आक्रमण था।

इस प्रकार महमूद ने भारत पर विभिन्न आक्रमण किये। उनकी संख्या ठीक प्रकार निश्चित नहीं है, परन्तु उपर्युक्त महत्वपूर्ण आक्रमण उसकी सफलता, भारत की दुर्बलता और उसके परिणामों पर प्रकाश

डालने के लिए पर्याप्त हैं। महमूद ने न केवल भारत की सदियों से संचित सम्पति को ही लूटने में सफलता प्राप्त की, वरन पंजाब, सिन्ध, मुल्तान और अफगानिस्तान के प्रदेशों में गजनवी–वंश का राज्य स्थापित किया। 1030 ई. में महमूद की मृत्यु हो गयी।

14.3.1 महमूद गजनवी के आक्रमण के कारण

इतिहासकारों ने भारत पर महमूद के आक्रमणों के बारे में भिन्न–भिन्न मत प्रकट किये हैं, उनसे पता चलता है कि महमूद के भारत पर आक्रमण करने के निम्नलिखित कारण थे–महमूद भारत में इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित करना चाहता था। परन्तु प्रो0 हबीब ने महमूद को पूर्णतया सांसारिक व्यक्ति बताया है। उनका कहना है वह धर्मान्ध न था। वह मुस्लिम उलेमा–वर्ग की आज्ञाओं को मानने के लिए तैयार न था और उसके बर्बरतापूर्ण कार्यों ने इस्लाम का प्रचार नहीं किया अपितु इस्लाम को संसार की दृष्टि में गिराया ही। इतिहासकार जाफर ने लिखा है महमूद का उद्देश्य भारत में इस्लाम का प्रचार नहीं अपितु धन लूटना था। उसने हिन्दू–मन्दिरों पर इसलिए आक्रमण किये क्योंकि वहाँ धन संचित था। प्रो. नाजिम ने लिखा है यदि उसने हिन्दू–राजाओं को तंग किया तो उसने ईरान और ट्रान्स–ऑक्सियाना के मुस्लिम शासकों को भी नहीं छोड़ा, जो लूटमार उसने गंगा के मैदान में की, वैसी ही उसने ऑक्सस नदी के किनारे पर भी की। इसी प्रकार हैवेल का कथन है कि वह बगदाद को भी वैसी ही निर्दयता से लूटता जैसी निर्दयता से उसने सोमनाथ को लूटा था, यदि उसे वहाँ से भी उतना ही धन मिलने की आशा होती । इस प्रकार इन विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार महमूद के भारत पर आक्रमण का उद्देश्य धार्मिक न होकर आर्थिक था। परन्तु महमूद के दरबारी इतिहासकार उतबी ने उसके आक्रमणों को जिहाद माना था, जिसका मूल उद्देश्य इस्लाम का प्रसार और बुतपरस्ती (मूर्ति–पूजा) को समाप्त करना था। तुर्कों के नवीन धार्मिक जोश और उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए इसे अस्वाभाविक भी नहीं माना जा सकता है। महमूद ने भारत में मन्दिरों को लूटा ही नहीं अपितु मूर्तियों और मन्दिरों को बर्बाद भी किया था। इस कारण यह माना जाता है कि महमूद का एक उद्देश्य धर्म का प्रचार और इस्लाम की प्रतिष्ठा को स्थापित करना था।

महमूद के भारत पर आक्रमण का उद्देश्य भारत की सम्पत्ति को लूटना था, इससे कोई भी इतिहासकार इन्कार नहीं करता है। वह धन का लालची था और उसे गजनी के ऐश्वर्य तथा राज्य–विस्तार के लिए धन की आवश्यकता थी। उसके प्रारम्भिक आक्रमणों की सफलता एवं धन की लूटमार ने उसे और अधिक लालची बना दिया था। प्रत्येक अवसर पर जो धनराशि उसे भारत से प्राप्त हुई उसने उसे भारत की सम्पन्नता से परिचित करा दिया और प्रत्येक आक्रमण को उसने अधिक से अधिक धन प्राप्त करने का साधन बनाया।

अपने पड़ोस के हिन्दू–राज्यों को नष्ट करना महमूद का राजनीतिक उद्देश्य था। गजनी और हिन्दुशाही राज्यों के झगड़े अलप्तगीन के समय से चल रहे थे और तीन बार हिन्दुशाही राज्य गजनी के राज्य पर आक्रमण कर चुका था। अपने इस शत्रु को समाप्त करना महमूद के लिए आवश्यक था। इस कारण महमूद ने स्वयं आक्रमणकारी नीति अपनायी। हिन्दुशाही राज्य को समाप्त करने के पश्चात् उसका साहस बढ़ गया और उसने भारत में दूर–दूर तक आक्रमण किये।

यश की लालसा भी महमूद के आक्रमणों का एक प्रमुख कारण थी। महमूद महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और सभी महान् शासकों की भाँति वह भी राज्य–विस्तार और यश का भूखा था। उसने पश्चिम की ओर अपने राज्य का विस्तार किया था। पूर्व की ओर हिन्दुशाही राज्य को समाप्त करना भी उसका उद्देश्य था। डॉ. ए. बी. पाण्डेय के अनुसार भारत से हाथी प्राप्त करना भी उसका एक उद्देश्य था, जिनका प्रयोग वह मध्य–एशिया में अपने शत्रुओं के विरूद्ध करना चाहता था।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि महमूद गजनवी के आक्रमण का उद्देश्य धन लूटना था, क्योंकि पड़ोस के हिन्दू–राज्यों को नष्ट करने के लिए और अपने राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए उसे अधिक धन की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति भारतीय मन्दिरों से की जा सकती थी। वह यह भलीभाँति जानता था क्योंकि उस समय भारतीय मन्दिरों में काफी धन संचित था, जिसके बारे में उसने काफी पहले से सुन रखा था और फिर प्रत्येक आक्रमण के अवसर पर भारतीय मन्दिरों से प्राप्त होने वाली धनराशि ने उसे भारत की सम्पन्नता से परिचित करा दिया था, तथा प्रत्येक आक्रमण की सफलता ने उसे और अधिक लालची बना दिया। अगर वह धर्मान्ध होता तो वह ईरान और ट्रान्स ऑक्सियाना के मुस्लिम शासकों को परेशान न करता।

14.3.2 महमूद गजनवी का मूल्यांकन

महमूद एक साहसी सैनिक और सफल सेनापति था। उसकी गणना संसार के उन सफलतम सेनापतियों में की जाती है, जिन्हें जन्मजात सेनापति पुकारा जाता है। उसमें नेतृत्व करने और अपने साधनों एवं परिस्थितियों से पूर्ण लाभ उठाने की क्षमता थी। उसमें मानवीय गुणों को परखने की बुद्धि थी और वह प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार कार्य देता था तथा प्रत्येक से अपनी इच्छानुसार कार्य लेता था। उसकी सेना में अरब, तुर्क और अफगान ही नहीं, अपितु हिन्दू सैनिक भी थे। परन्तु विभिन्न नस्लों से मिल जुलकर बनी हुई उसकी सेना उसके नेतृत्व में एक शक्तिशाली तथा विजयी सेना बन गयी थी। अपनी योग्यता के अनुकूल महमूद महत्वाकांक्षी भी था। वह सर्वदा सम्मान और साम्राज्य की लालसा करता रहा। अपने इन गुणों के कारण वह सफल भी हुआ था। अपने पिता से उसे गजनी और खुरासान का एक छोटा सा राज्य प्राप्त हुआ था, अपनी योग्यता से उसने इसे इराक और कैस्पियन सागर से लेकर गंगा–तट तक फैला दिया। उसका साम्राज्य बगदाद के खलीफ से बड़ा और शक्तिशाली था। जब खलीफा ने महमूद को

समरकन्द देने से इन्कार किया था, तब महमूद ने उस पर आक्रमण करने की धमकी दी थी। इस प्रकार महमूद एक शक्तिशाली और विशाल साम्राज्य का निर्माता था। यह कहना भूल है कि महमूद ने दुर्बल भारतीय शासकों को परास्त करने में ही सफलता पाई थी। महमूद ने मध्य–एशिया और ईरान के शत्रुओं के विरुद्ध भी इसी प्रकार सफलता प्राप्त की थी। एक साहसी सैनिक, महान सेनापति और साम्राज्य–निर्माता की दृष्टि से महमूद का स्थान श्रेष्ठ है।

महमूद शिक्षित और सुसभ्य था तथा विद्वानों एवं कलाकारों का सम्मान करता था। उसने अपने समय के महान विद्वानों को गजनी में एकत्र किया था। गणित, दर्शन ,ज्योतिष और संस्कृत का उच्चकोटि का विद्वान अलबरूनी, इतिहासकार उतबी, दर्शनशास्त्र का विद्वान फाराबी, 'तारीख–ए–सुबुक्तगीन' का लेखक बैहाकी, जिसे इतिहासकार लेनपूल ने 'पूर्वी पेप्स' की उपाधि दी, फारस का कवि उजारी, खुरासानी विद्वान तुसी, महान शिक्षक और विद्वान उन्सुरी, विद्वान अस्जदी और फर्रुखी तथा 'शाहनामा' का रचयिता विद्वान फिरदौसी आदि उसके दरबार में थे। वे सभी योग्य थे और महमूद के संरक्षण ने उनको अधिक योग्य बनने में सहायता दी थी। महमूद ने गजनी में एक विश्वविद्यालय, एक बड़ा पुस्तकालय और एक बड़ा अजायबघर स्थापित किया था। वह कलाकारों को भी संरक्षण देता था। उसने देश–विदेश के कलाकारों को बुलाकर गजनी में भव्य इमारतों का निर्माण कराया। अनेक महलों, मस्जिदों, मकबरों आदि से उसने गजनी को सुशोभित किया। गजनी की विख्यात जामी मस्जिद का निर्माण भी उसी ने कराया था। उसके समय में गजनी इस्लामी संसार की शोभा, वैभव और विद्वत्ता का महान केन्द्र बन गया।

महमूद एक न्यायप्रिय शासक था। अपने भतीजे को एक अन्य व्यक्ति की पत्नी से अवैध सम्बन्ध रखने के कारण उसने उसे स्वयं कत्ल किया। एक अन्य अवसर पर उसने शाहजादे मसूद को एक व्यापारी का कर्जा न चुकाने के कारण काजी की अदालत में जाने और व्यापारी का कर्जा चुकाने के लिए बाध्य किया। ऐसी ही अनेक कहानियाँ महमूद की लोकप्रियता के बारे में प्रचलित हैं। महमूद ने अपने सूबेदारों को अपने नियन्त्रण में रखने, अपने राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने, व्यापार और कृषि की उन्नति करने तथा अपनी प्रजा के जीवन और सम्मान की सुरक्षा करने में सफलता पायी थी।

महमूद धार्मिक दृष्टि से कट्टर था। वह सुन्नी था और हिन्दुओं के प्रति ही नहीं, अपितु शियाओं के प्रति भी अनुदार था तथा उनको दण्ड देने के लिए तत्पर रहता था। बाद के समय के अथवा मुहम्मद हबीब जैसे आधुनिक इतिहासकार चाहे किसी प्रकार भी उसकी धार्मिक कट्टरता को ढकने का प्रयत्न करें, परन्तु यह मानना पड़ता है कि विधर्मियों के प्रति उसका व्यवहार कठोरता का और हिन्दुओं के प्रति नृशंसता का था। महमूद के विषय में तत्कालीन विचारधारा को मानना अधिक उपयुक्त है। हिन्दुओं के प्रति उसके व्यवहार की आलोचना अलबरूनी ने भी की थी। तत्कालीन समय में मुसलमान उसे इस्लाम धर्म का महान प्रचारक मानते थे। उसे गाजी (विधर्मियों को कत्ल करने वाला) और मूर्तिभंजक अथवा बुतशिकन पुकारा

गया था। खलीफा ने सोमनाथ के आक्रमण की सफलता पर उसे और उसके पुत्रों को सम्मान–पत्र और वस्त्र भेजे थे तथा तत्कालीन मुस्लिम संसार ने उसे विधर्मियों को नष्ट करके दूरस्थ देशों में इस्लाम की प्रतिष्ठा और शक्ति को स्थापित करने वाला माना था। इस कारण तत्कालीन विचारधारा के आधार पर महमूद को धर्मान्ध माना जा सकता है। तर्क के आधार पर भी हिन्दुओं और हिंदू–मंदिरों के प्रति महमूद के नृशंस व्यवहार का कारण केवल धन की लालसा ही हो, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

महमूद धन का लालची था, यद्यपि इसके साथ–साथ वह मुक्त–हृदय से धन व्यय भी करता था। भारत पर उसके आक्रमणों का प्रमुख उद्देश्य धन की लालसा था। अपनी मृत्यु के अवसर पर वह यह सोचकर बहुत दुखी हुआ कि उसे अपनी सम्पूर्ण सम्पति को छोड़कर जाना पड़ेगा। प्रख्यात विद्वान फिरदौसी को उसने प्रत्येक छन्द की रचना के लिए एक सोने की दीनार देने का वायदा किया था, परन्तु जब उसने 1,000 छन्द के 'शाहनामा' को उसके सामने प्रस्तुत किया तो उसने सोने के स्थान पर चाँदी की दीनारें देने की इच्छा प्रकट की, जिन्हें लेने से फिरदौसी ने इन्कार कर दिया। यद्यपि इसका मुख्य कारण महमूद के कृपापात्र अयाज का फिरदौसी के विरुद्ध षडयंत्र था और महमूद ने बाद में फिरदौसी के पास स्वर्ण की दीनारें भेज भी दीं (यद्यपि तब तक फिरदौसी की मृत्यु हो चुकी थी) परन्तु तब भी उपर्युक्त घटना से महमूद की लालची प्रकृति का आभास अवश्य होता है। प्रो. ब्राउन ने लिखा है कि "वह किसी भी उपाय से धन–प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता था। इसके अतिरिक्त उसके चरित्र में कुछ भी निन्दनीय न था।"

परन्तु महमूद की सबसे बड़ी दुर्बलता उसका कुशल शासन–प्रबन्धक न होना था। इस कारण महमूद अपने राज्य को स्थायित्व प्रदान न कर सका। उसका विशाल साम्राज्य उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों के हाथों में जाते ही नष्ट होने लगा। महमूद उस साम्राज्य का निर्माता था और उसका व्यक्तित्व ही उसे सुरक्षित रख सका। इससे स्पष्ट होता है कि महमूद अपने शासन को स्थायी सिद्धांतों पर स्थापित न कर सका था। लेनपूल ने लिखा है कि "महमूद महान सैनिक था और उसमें अपार साहस तथा अथाह शारीरिक एवं मानसिक शक्ति थी, परन्तु वह रचनात्मक और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ न था। हमें ऐसे किन्हीं नियमों, संस्थाओं अथवा शासन–प्रणालियों का पता नहीं है जिनकी नींव उसने डाली हो।" एल्फिन्स्टन ने भी जिसने महमूद के अन्य गुणों की प्रशंसा की है, लिखा है कि "उसके भारतीय कार्य भी जिनके लिए उसने अपनी अन्य योजनाएं त्याग दी थी, किसी प्रकार के संगठन अथवा व्यवस्था की भावना का परिचय नही देते।"

इसके उपरान्त भी महमूद मुस्लिम इतिहास का एक महान शासक था। मुस्लिम इतिहास में सुल्तान कहलाने योग्य वह प्रथम शासक था। मध्य–एशिया के महान शासकों में उसका स्थान है। प्रो. हबीब के शब्दों में "अपने समकालीन व्यक्तियों में वह चरित्र–बल से नहीं, अपितु योग्यता के कारण ही इतना उच्च पद प्राप्त कर सका था। उसकी विजयें उसके साम्राज्य की शान्ति और समृद्धि, सांस्कृतिक प्रगति और उसके प्रयत्नों के द्वारा इस्लाम की प्रतिष्ठा का विस्तार उसे महान शासकों में स्थान प्रदान करते हैं। महमूद

के समय से गजनी इस्लामी संसार की शक्ति, वैभव, शिक्षा, विद्वता, सौन्दर्य और ललित कलाओं की प्रगति का केन्द्र–स्थान बन गया था और यह सब कुछ महमूद की अद्वितीय सफलताओं का कारण था।

परन्तु भारतीय इतिहास में महमूद का स्थान एक धर्मान्ध और बर्बर विदेशी लुटेरे के समान है। महमूद गजनी का सुल्तान था, भारत का नहीं। पंजाब, सिन्ध और मुल्तान जो उसके राज्य में सम्मिलित किये गए थे, उसकी पूर्वी सीमाओं की सुरक्षा और भारत पर निरंतर आक्रमण करने का आधार मात्र थे। इस कारण महमूद ने इन प्रदेशों के शासन की ओर कोई घ्यान नहीं दिया। भारत पर अपने निरन्तर आक्रमणों में महमूद ने प्रत्येक स्थान और प्रत्येक व्यक्ति से धन लूटा, प्रत्येक मंदिर को नष्ट किया, प्रत्येक मूर्ति को खंडित किया, लाखों व्यक्तियों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया अथवा उनका कत्ल कर दिया, लाखों को गुलाम बनाया, लाखों स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करने का कारण बना, हजारों सुन्दरतम स्त्रियों को गजनी ले गया, श्रेष्ठतम कलाकृतियों को नष्ट किया तथा हजारों नगरों और गाँवों को जलाकर राख कर दिया। महमूद ने हिन्दुओं के धन, सम्मान, वैभव, संस्कृति आदि सभी को लूटा। एक भयंकर तूफान की भांति महमूद जहाँ भी गया वहाँ विनाश करता हुआ गया। जो कुछ वह अपने साथ ले जा सकता था, वह ले गया और जिसको वह नष्ट कर सकता था, उसको उसने नष्ट कर दिया। इस कारण भारत के निवासियों के लिए महमूद एक धर्मान्ध और बर्बर विदेशी लुटेरे से अधिक और हो भी क्या सकता है।

14.3.3 अलबरूनी का भारत विवरण

अलबरूनी महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। वह अरबी भाषा का विद्वान था तथा भारत आकर उसने संस्कृत भाषा का भी गम्भीर अध्ययन किया। उसने भारतीय दर्शन, ज्योतिष शास्त्र आदि का भी ज्ञान प्राप्त किया । उसने कई ग्रन्थ लिखे जिनमें से 'तहकीक–ए–हिन्द' बहुत प्रसिद्ध हुआ। अलबरूनी ने उसे अरबी भाषा में लिखा था और उसमें उसने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति के बारें मे विस्तृत रूप से लिखा। इस कारण उसका भारत–विवरण तत्कालीन भारत के बारे में जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।अलबरूनी ने भारत की जलवायु, भाषाएँ, रीति–रिवाज, सामाजिक–व्यवस्था, दर्शन, कर्म–सिद्धान्त, जीव के आवागमन का सिद्धान्त, धर्म, वेश–भूषा, भोजन, मनोरंजन के साधन, त्यौहार, मेले तथा उत्तरी–भारत के शासकों और राज्यों आदि के सम्बन्ध में लिखा है। उसने अपने विवरण में भगवत्–गीता, वेद, उपनिषद, पतंजलि के योगशास्त्र आदि के बारे में भी लिखा है। इस प्रकार भारत के विषय में उसका विवरण बहुत महत्वपूर्ण है।

अलबरूनी ने उत्तर–भारत के राजवंशों का विवरण दिया, जबकि दक्षिण–भारत के राजवंशों का उसने कोई विवरण नहीं दिया है। उसके अनुसार भारतीय राज्यों में एकता का अभाव था और वे विदेशी आक्रमणकारियों के विरूद्ध भी एक नहीं हो सके। उसने भारतीय सामाजिक विभाजन, अस्पृश्यता और वैश्य तथा शूद्रों की बुरी स्थिति के बारें में लिखा। उसके अनुसार प्रत्येक कार्य में ब्राह्मण का अधिकार है, जैसे

स्तुति करना, वेद पाठ करना आदि। अगर ये ज्ञात हो जाय कि किसी वैश्य या शूद्र ने वेद–पाठ किया है तो उसकी जीभ काट ली जाती है। उसने अस्पृश्य जाति को अन्त्यज बताया और यह भी बताया कि वे नगर से बाहर रहते थे। अलबरूनी का यह भी कहना है कि भारतीय सामाजिक दृष्टि से बहुत संकीर्ण विचार के हैं। धर्म के सम्बन्ध में अलबरूनी ने लिखा था, हिन्दू एक ईश्वर में विश्वास करते हैं जो शाश्वत है और अनादि–अनन्त है। अलबरूनी ने भारत के वैभवपूर्ण मन्दिरों का भी वर्णन किया है। अलबरूनी ने यह भी लिखा है कि भारतीय विदेशों से कुछ भी सीखना नहीं चाहते तथा उन्हें अपने देश, धर्म ज्ञान, राजा आदि पर गर्व है। इस प्रकार अलबरूनी ने भारतीय जीवन के विविध पहलुओं पर दृष्टिपात किया तथा अपने ग्रन्थ में उनका उल्लेख किया। भारतीय जन–जीवन के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का यह ग्रन्थ एक प्रमुख साधन है।

14.4 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत पर महमूद के आक्रमण एक भीषण झंझावात के समान थे। कभी–कभी यह कहा जाता है कि उसने भारत में विनाश तो किया, परन्तु कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ा। भारतीय थोड़े समय के पश्चात उन दुर्घटनाओं को भूल गए और उन्होंने पुनः अपने नगरों, मंदिरों एवं वैभव का निर्माण कर लिया। निसंदेह भारतीयों ने महमूद के आक्रमणों को भुला दिया जिसका दुष्परिणाम भी उन्हें भुगतना पड़ा, परन्तु यह कहना भूल है कि महमूद के आक्रमणों का भारत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। महमूद ने पंजाब, सिन्ध और मुल्तान को अपने राज्य में सम्मिलित करके अन्य मुस्लिम आक्रमणकारियों के लिए भारत का मार्ग खोल दिया। महमूद गोरी ने गजनी के भारतीयों क्षेत्रों को अपने अधिकार में करने के आशय से भारत पर आक्रमण आरम्भ किये। महमूद ने भारत की सम्पति को लूटकर और उसकी सैनिक शक्ति को नष्ट करके भारत को आर्थिक एवं सैनिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया। निरंतर पराजय के कारण हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध करने के मनोबल में भी कमी आ गई। महमूद किसी भी हिन्दू राजा से पराजित नहीं हुआ, इससे हिन्दू शासकों में मुस्लिम आक्रमणकारियों की शक्ति के प्रति भय उत्पन्न हुआ, जिसका प्रभाव पर्याप्त समय तक रहा। इन सभी ने भारत की भविष्य की राजनीति को प्रभावित किया। मुस्लिम आक्रमणकारियों की दृष्टि से महमूद की सबसे बड़ी देन हिन्दुशाही राज्य का विनाश था, जिसके कारण मुसलमानों के लिए भारत को विजित करना सम्भव हो सका।

14.5 शब्दावली

तहकीक–ए–हिन्द– यह अलबरूनी के द्वारा लिखा गया एक प्रमुख ग्रन्थ है। अलबरूनी महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। उसने अरबी भाषा में 'तहकीक–ए–हिन्द' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है।

शाहनामा– 'शाहनामा' नामक ग्रन्थ की रचना महमूद गजनवी के दरबारी विद्वान फिरदौसी के द्वारा की गई थी। यह फारसी भाषा का ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ में कुल 1000 छन्द हैं। फिरदौसी ने 'शाहनामा' में ईरान के पौराणिक बादशाहों की, जिनके कार्यों से वह अत्यधिक प्रभावित था, उनकी अत्यधिक प्रशंसा की है। बाद के दिनों में 'शाहनामा' की पहचान फारस के राष्ट्रीय महाकाव्य के रूप में हो गयी।

14.6 बोध प्रश्न

- महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण के कारणों पर प्रकाश डालिए?
- महमूद गजनवी के आक्रमण के समय उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति का विवरण दीजिए?
- महमूद गजनवी के सोमनाथ के मंदिर पर किए गए आक्रमण का वर्णन कीजिए?
- महमूद गजनवी के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए?

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयागराज।
- पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर.एन., *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* इण्डिया बुक एजेंसी, प्रयागराज।
- श्रीवास्तव, के.सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाईटेड बुक डिपो, प्रयागराज।
- सिंह, उपिन्दर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा .लि. नई दिल्ली।